वर्द्धमान पूजाञ्जलि

सम्पादक :
अखिल जैन एम. ए.

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

वर्द्धमान पूजाञ्जलि

सम्पादक :
अखिल जैन एम. ए.

प्रकाशक :
श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.)-477227
मो. 9826225580

प्रथम संस्करण : 6000, 25 मई, 2024
द्वितीय संस्करण : 3000, 18 जनवरी, 2025

न्यौछावर राशि : 60 रु.

VARDHMAN POOJANJALI

Edited by :
Akhil Jain M.A.

Published by :
Vardhman Nyas
Amayan, Bhind (M.P.)

First Edition : 6000, 25th May, 2024
Second Edition : 3000, 18th January, 2025

Price : Rs. 60/-

दो शब्द

श्रावकों का प्रथम कर्तव्य 'देव पूजा' की परिपाटी ने समाज की धार्मिक भावना को जागृत रखा है, वर्तमान पीढ़ी भी अंतिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक की इस परंपरा से दैनिक पूजन के माध्यम से जुड़कर स्वयं, परिवार व समाज को बाह्य क्रिया मात्र तक सीमित न रखकर-पूजन का उद्देश्य व स्वलक्ष्य की ओर उन्मुख करती हुई **ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'** की काव्यधारा जो आत्म संवेदन की ओर प्रेरित करती है, आपके भावों को भाषा में निबद्ध करना अनधिकृत चेष्टा है, दीपमालिका पर्व पूजन इसका अपवाद है, जिसका एकत्रीकरण द्वितीय खण्ड में किया है।

आपकी रचनाएँ सर्व प्रथम 'जिनेन्द्र आराधना संग्रह' के रूप में आपके ज्येष्ठ-भ्राता डॉ. पं. अरविन्द कुमार जी 'ज्ञायक' करहल द्वारा एटा (उ.प्र.) से प्रकाशित हुई थी पश्चात् संवर्धन होकर अन्यत्र स्थानों से भी छपी। 'अध्यात्म पूजाञ्जलि', 'वीतराग मञ्जरी' आदि पुस्तकें आई। बानपुर, करहल, भिण्ड, सोनागिर, इन्दौर, देवलाली, मुंबई, दिल्ली आदि विविध स्थानों से उपयोग अनुसार छोटे-बड़े स्तर से छपी और आज भी प्रकाशित हो रही हैं सभी की उपयोगिता है। 'पूजन पाठ प्रदीप', 'अभिनव जिन पूजन सन्दोह' में भी कुछ पूजनें ली गई।

हितकारी शिक्षा देने वाले लुप्त प्रायः पाठ-जकड़ी, सूवा बत्तीसी, बारहमासा आदि के साथ अन्य प्राचीन कवियों की रचनाएँ समाहित कर अनेकता में एकता के साथ अपनी-अपनी पद्धति से स्तवन करते हुए भी निर्दोषता बनी रहे, हमारी भाव विशुद्धि बढ़ती जाये, इसी भावना से **'वर्द्धमान पूजाञ्जलि'** संकलन प्रस्तुत है। लगभग छः माह में पुनः प्रकाशन लोकप्रियता का परिचायक है।

पाठकों के सुझाव आमंत्रित हैं, ताकि अगले संस्करण के समय उस पर विचार किया जा सके। सभी सहयोगियों का हृदय से आभार।

अनिल जैन

श्री वर्द्धमान न्यास अमायन, भिण्ड (म.प्र.)

अपनी बात

जैनधर्म कोई व्यक्तिगत सम्प्रदाय या जाति नहीं अपितु वस्तु का स्वभाव ही है। अतः शाश्वत सत्य है अनेकांतमय वस्तु को स्याद्वाद शैली द्वारा समझने की प्रक्रिया जैनदर्शन की मौलिक विशेषता है।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को न जानकर मात्र बाह्य क्रियाओं में ही धर्म मान लेना तो महान भूल अर्थात् मिथ्यात्व है जिसके दूर हुए बिना धर्म का प्रारंभ भी नहीं होता। धर्म करने से पहले धर्म का वास्तविक स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक है।

साहित्य मानवीय मूल्यों का उन्नयन व सद्मार्ग का प्रेरक है, सभ्यता व संस्कृति संरक्षण में अतुलनीय योगदान है; मानवता से ऊर्ध्व जीव मात्र का पथ प्रदर्शक बनकर जब उसका विकास होता है, तो स्वान्तः सुखाय से सर्वोदय बन जाता है।

हर कालखण्ड में साहित्य सेवियों ने अपनी पहिचान बनाये रखी है, इसलिये नहीं कि वे विलक्षण प्रज्ञा-सम्पन्न थे, वरन् मुख्यतः इसलिये कि जैनदर्शन में हर काल, परिस्थिति में प्राणीमात्र के आत्म उन्नति और सामाजिक उत्थान की पूर्ण सामर्थ्य विद्यमान है, क्योंकि यह जीवन की शाश्वत अनुभूतियों तथा सुख-दुख की समस्याओं के त्रैकालिक समाधान की वज्रभूमि पर आधारित है।

जैन साहित्यकारों में बनारसीदास, भगवतीदास,

भूधरदास, दौलतराम, द्यानतराय, भागचन्द, बुधजन जी जैसे उद्भट विद्वानों की श्रेणी में **ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'** का नाम उनकी अमर काव्य रचनाओं के साथ सदा-सदा के लिये स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया है।

इतिहास की दृष्टि से शोधार्थी जीवों को आपके जीवन व साहित्य का आंकलन करते समय पत्रिकाओं में अथवा आपने हमसे ऐसा कहा था, हमने तो सुना है, कई भाई/बहिनों की चर्चा में आधी-अधूरी जानकारी मात्र को प्रामाणिक न समझ बैठें। तत्संबंधी, अधिकृत प्रमाणों तक पहुँचने का प्रयास करें।

पं. फूलचन्द जी शास्त्री का प्रास्ताविक वक्तव्य आगम के आलोक में दिशा निर्देश दे रहा है, पढ़कर ध्यान देने योग्य है।

परम आदरणीय **ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'** जैन जगत की वह धुरी रहे, जिसके इर्द-गिर्द रुढ़िवाद, कर्तावाद, आडम्बर, कामना व रिझाने (ऐसी रचनायें साहित्य में दोषपूर्ण मानी जाती हैं) की शैली से परे अध्यात्म से सुरभित पद्य को निबद्ध किया, जो चिरकाल तक भव्य जीवों के परिणाम शुद्धि में निमित्त होगें।

हम एक बनें, हम नेक बनें, हम बढ़े सदा ही शिवपथ पर।।
विस्मृत औदायिक भाव रहें, संकीर्ण विचारों को तज कर।।

अखिल जैन
मंत्री, श्री वर्द्धमान न्यास अमायन, भिण्ड (म.प्र.)

नित्य-नैमित्तिक जाप

(प्रतिदिन करने योग्य जाप)

पणतीस-सोल-छप्पण-चदु-दुगमेगं च जवह ज्झाएह।
परमेट्ठि-वाचयाणं अण्णं च गुरुवएसेण।।

परमेष्ठी के वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाले मंत्र का प्रतिदिन जाप और ध्यान करना चाहिए।

- 35 अक्षर का मंत्र-

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

- 16 अक्षर का मंत्र-अरिहन्त-सिद्ध-आइरिय-उवज्झाय-साहू
- 7 अक्षर का मंत्र-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः

अर्थ-ॐ-पंच परमेष्ठी, ह्रीं-चौबीस तीर्थंकर, श्रीं-केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी के धारी, क्लीं-समस्त गणधर महाराज, अर्हं-अ से ह तक वर्णमाला की समस्त द्वादशांगमयी जिनवाणी माँ।

- 6 अक्षर का मंत्र-अरिहन्त-सिद्ध
- 5 अक्षर का मंत्र-अ सि आ उ सा
- 4 अक्षर का मंत्र-अरिहंत
- 2 अक्षर का मंत्र-सिद्ध
- 1 अक्षर का मंत्र-ओम्
- ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।
- ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सर्व शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।
- ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्व शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।
- ॐ ह्रीं मध्यलोक संबंधी शाश्वत जिनालय जिनबिम्बेभ्यो नमः।

''शुद्ध चिद्रूपोऽहम्''

पूजन संबंधी सामान्य नियम

1. अष्ट द्रव्य से पूजन योग्य केवल वीतराग सर्वज्ञ देव, वीतराग मार्ग के दर्शन कराने वाले शास्त्र तथा निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु ही हैं।
2. दर्शन-पूजन मात्र रुढ़ि से न करें, आत्महित की भावना पूर्वक यथाशक्ति, योग्य विधि से करें।
3. शुद्ध छने जल से स्नानकर, शुद्ध एवं स्वच्छ धोती दुपट्टा जिनका प्रयोग सांसारिक कार्यों में नहीं किया गया हो, पहिनना चाहिए।
4. सामान्य वस्त्रों से गन्धकुटी में न जाएँ, वेदी पर न चढ़ें एवं प्रतिमा जी का स्पर्श न करें। धुले द्रव्य से, अष्ट द्रव्य की थाली लगाकर पूजन करें। (रेशमी, ऊनी वस्त्र धुले होने पर भी अशुद्ध ही हैं।)
5. पूजा में प्रयुक्त सामग्री का भली भांति शोधन कर लेना चाहिए।
6. पूजा कार्य में प्रयुक्त कुएँ के जल को मोटे दुहरे साफ छन्ने से छानकर कुन्देदार बाल्टी द्वारा बिलछानी कुएँ में अवश्य पहुँचायें, तत्पश्चात् जल को गर्म कर प्रासुक कर लें। कदाचित् जल को गर्म करने का साधन सुलभ न हो तो लवंग आदि द्वारा प्रासुक कर लेना चाहिए।
7. बाजारू धूप आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
8. प्रक्षाल से पहले वेदी की सफाई करके प्रतिमाजी को भी कोमल कपड़े से पोंछ लें तथा देख लें कि कोई जीव-जन्तु तो नहीं है।
9. प्रतिमाजी का प्रक्षाल कम से कम जल से ही करना योग्य है पश्चात् सूखे स्वच्छ सूती वस्त्र से परिमार्जन (पोंछ) कर यथा स्थान विराजमान करनी चाहिए।

10. प्रक्षाल मात्र पुरुषों द्वारा ही किया जाए। महिलाएँ जिनबिम्ब को स्पर्श न करें।
11. जिन प्रतिमा का परिमार्जन हो जाने के बाद पुनः प्रक्षाल न करें। किसी भी व्यक्ति के इंतजार में प्रतिमाजी को न छोड़ें। समय पर परिमार्जन कर वेदी पर विराजमान करें।
12. जिन प्रतिमा पर इत्र, चन्दन, फूल आदि कोई चीज न लगावें।
13. पूजन जिनेन्द्र भगवान के समक्ष अति विनय पूर्वक खड़े होकर पूर्ण तन्मयता के साथ करें।
14. शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण करते हुए पूजन के भाव को समझते हुए पूजन करें।
15. पूजन करते समय इधर-उधर नहीं देखना चाहिए। सांसारिक विचार, चर्चाएँ, हास्यादि भी नहीं करें।
16. पूजन के समय मुख, नाक, कान, नेत्र का मैल नहीं निकालें।
17. द्रव्यों को तर्जनी अंगुली से न छूते हुये चढ़ावें।
18. पूजन एक धार्मिक अनुष्ठान है, अतः हिंसादिक से बचने के लिए सचित्त फल-फूल, नारियल का प्रयोग नहीं करें।
19. परिक्रमा में अति शीघ्र न चलें। स्तुति-पाठ आदि बोलते हुए सावधानी पूर्वक देखते हुए चलें।
20. दर्शन-पूजन के बाद स्वाध्याय अवश्य करें।
21. पूजन, स्वाध्याय आदि के बाद पूजन की जिनवाणी को शोधकर (चावल आदि निकालकर) चौकी, आसन, माला आदि को भी यथा स्थान व्यवस्थित करके रखें।
22. समय-समय पर पूजन के उपकरण, प्रक्षाल, पानी छन्ने एवं पोंछने के छन्ने आदि विशेष रूप से साफ करते रहें।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड - भाग-1 : जिनवर स्तवन

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	प्रास्ताविक वक्तव्य	पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री	15
2.	प्रभाती-1 (उठो रे सुज्ञानी जीव)	-	31
3.	प्रभाती-2 (उठ भोर भयो)	श्री शिवराम जी	31
4.	प्रभाती-3 (भोर भयो सब)	पं. बुधजन जी	32
5.	मंगल आरति आतमराम	पं. द्यानतराय जी	32
6.	परमात्म आरती	-	33
7.	मंगल पंचक	डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य	33
8.	मंगलाष्टक (संस्कृत)	-	34
9.	मंगलाष्टक (भाषा)	श्री कल्याण कुमार 'शशि'	36
10.	दर्शन पाठ (संस्कृत)	-	37
11.	दर्शन पाठ (हिन्दी)	श्री बाबू 'युगल' जैन	39
12.	आराधना पाठ	पं. द्यानतराय जी	40
13.	जिनेन्द्र स्तवन (जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु)	-	41
14.	दर्शन स्तुति (भटक-भटक भव की)	श्री पन्नालाल जी आर्चीटेक्ट	42
15.	दर्शन स्तुति (पुलकंत नयन)	पं. भूधरदास जी	43
16.	श्री जिन पूजन को हम आये	पं. बुधजन जी	44
17.	प्रभु पै यह वरदान	पं. भागचन्द जी	44
18.	वीतराग जिन महिमा थारी	पं. भागचन्द जी	45
19.	जिनमंदिर दर्शन (बहु पुण्य उदय मम)	ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'	45
20.	मुझे है स्वामी उस बल की	-	47
21.	चौबीस तीर्थंकर विनती	पं. बुधजन जी	48

भाग-2 : श्री जिनेन्द्र पूजन व अर्घ्यावलि

22.	जलाभिषेक पाठ	श्री हरजसराय जी	50
23.	श्री प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	पं. अभयकुमार जी	54
24.	प्रक्षाल पाठ	श्री राजमल जी पवैया	57
25.	विनय पाठ-1(इह विधि ठाड़ो)	श्री नाथूराम जी	58
26.	विनय पाठ-2 (हे नाथ मैं)	-	60
27.	पूजा पीठिका(संस्कृत)	-	61
28	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-1	पं.द्यानतराय जी	65
29.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-2	श्री बाबू 'युगल' जैन	69
30.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-3	डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल	73
31.	श्री समुच्चय पूजन	ब्र. सरदारमल जी	77
32.	श्री पंच परमेष्ठी पूजन	श्री राजमलजी पवैया	81
33	श्री परमात्म पूजन	श्री कपूरचन्द 'इन्दु'	85
34	श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन	पं. चुन्नीलाल जी	89
35.	श्री सीमन्धर पूजन	डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल	94
36	श्री सिद्ध पूजन-1	कवि जौहरीमल जी	98
37	श्री सिद्ध पूजन-2	श्री बाबू 'युगल' जैन	101
38.	श्री सिद्ध पूजन-3	डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल	106
39.	श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन-1	श्री वृन्दावनदास जी	110
40	श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन-2	श्री कुमरेश जी	113
41.	श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजन	पं. द्यानतरायजी	117
42.	श्री पंचमेरु पूजन	पं. द्यानतरायजी	121
43.	श्री सोलहकारण पूजन	पं. द्यानतरायजी	124
44.	श्री दशलक्षण धर्म पूजन	पं. द्यानतरायजी	127
45.	श्री महावीर पूजन	डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल	133

46	श्री बाहुबली पूजन	डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य	137
47.	अर्घ्यावलि	–	141
48.	समुच्चय महार्घ्य	–	153
49.	शान्ति पाठ–1	–	154
50.	शान्ति पाठ–2	–	155
51.	विसर्जन पाठ	–	156
52.	स्तुति पाठ (मैं तुम चरण कमल)	–	156
53.	पुण्याह वाचन	–	158

भाग–3 : विविध पाठ

54.	निर्वाण काण्ड (भाषा)	भैया भगवतीदास जी	159
55.	स्वयंभू स्तोत्र (भाषा)	पं. द्यानतराय जी	161
56.	श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र	पं. द्यानतराय जी	163
57.	महावीराष्टक स्तोत्र	पं. भागचन्द जी	164
58	आलोचना पाठ	श्री जौहरीमल जी	166
59	मेरी भावना	श्री जुगल किशोर जी	169
60.	बारह भावना	पं. भूधरदास जी	171
61.	समाधि भावना (दिन–रात मेरे स्वामी)	श्री शिवराम जी	172
62.	समाधिमरण (भाषा)	श्री शिवलाल जी	173
63.	बाईस परीषह	पं. भूधरदास जी	175
64	बारह मासा बज्रदन्त चक्रवर्ती	श्री नयनसुखदास जी	181
65	जकड़ी–1	पं. भूधरदास जी	191
66.	जकड़ी–2	श्री रामकृष्ण जी	192
67	सूवा बत्तीसी	भैया भगवतीदास जी	194
68.	भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत)	आचार्य मानतुंग स्वामी	198
69	भक्तामर स्तोत्र (भाषा)	श्री गिरधर शर्मा	207

द्वितीय खण्ड :
ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' द्वारा विरचित

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
	भाग-1	
1.	सामान्य श्रावक प्रतिक्रमण	218
	भाग-2 : नित्य नियम पूजन	
2.	मंगलाष्टक (भाषा)	221
3.	श्री जिन प्रतिमा प्रक्षाल पाठ-1	222
4.	श्री जिन प्रतिमा प्रक्षाल पाठ-2	223
5.	विनय पाठ	224
6.	पूजा पीठिका (भाषा)	225
7.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	228
8.	श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन	231
9.	श्री पंच परमेष्ठी पूजन	234
10.	श्री सिद्ध पूजन	237
11.	श्री वीतराग पूजन	241
12.	श्री जिनवाणी पूजन-1	246
13.	श्री जिनवाणी पूजन-2	249
14.	श्री मुनिराज पूजन	251
15.	श्री सीमन्धर पूजन	254
16.	श्री बाहुबली पूजन	257
17.	श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ पूजन	260
18.	श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धर पूजन	263
19.	श्री आदिनाथ-बाहुबली-भरतेश्वर पूजन	266
20.	श्री पंच तीर्थंकर पूजन	270

21. श्री पंच-बालयति तीर्थंकर मण्डल विधान 273
22. श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म पूजन 278
23. श्री निर्वाणक्षेत्र पूजन 284

भाग-3 : नैमित्तिक पूजन

24. श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजन 287
25. श्री पंचमेरु पूजन 290
26. श्री सोलहकारण पूजन 293
27. श्री दशलक्षण धर्म पूजन 296
28. श्री रत्नत्रय पूजन 302
29. श्री क्षमावाणी पर्व पूजन 306
30. श्री अक्षय तृतीया पूजन 309
31. श्री श्रुत पंचमी पूजन 312
32. श्री वीरशासन जयन्ती पूजन 315
33. श्री रक्षाबंधन पूजन 318
34. दीपमालिका पर्व पूजन 322

भाग-4 : श्री चौबीस तीर्थङ्कर मण्डल विधान

35. श्री चौबीस तीर्थङ्कर स्तवन 326
36. श्री चौबीस तीर्थङ्कर पूजन 332
37. श्री आदिनाथ पूजन 335
38. श्री अजितनाथ पूजन 340
39. श्री सम्भवनाथ पूजन 344
40. श्री अभिनंदननाथ पूजन 348
41. श्री सुमतिनाथ पूजन 352
42. श्री पद्मप्रभ पूजन 355
43. श्री सुपार्श्वनाथ पूजन 359
44. श्री चन्द्रप्रभ पूजन 363

45. श्री पुष्पदन्त पूजन 367
46. श्री शीतलनाथ पूजन 370
47. श्री श्रेयांसनाथ पूजन 373
48. श्री वासुपूज्य पूजन 377
49. श्री विमलनाथ पूजन 381
50. श्री अनंतनाथ पूजन 385
51. श्री धर्मनाथ पूजन 388
52. श्री शान्तिनाथ पूजन 393
53. श्री कुन्थुनाथ पूजन 397
54. श्री अरनाथ पूजन 401
55. श्री मल्लिनाथ पूजन 405
56. श्री मुनिसुव्रतनाथ पूजन 409
57. श्री नमिनाथ पूजन 412
58. श्री नेमिनाथ पूजन 416
59. श्री पार्श्वनाथ पूजन 420
60. श्री महावीर पूजन 423

भाग-5 : अर्घ्यावलि, शांति पाठ व विसर्जन पाठ

61. चौबीस तीर्थङ्करों को अर्घ्य 429
62. समुच्चय महाऽर्घ्य 432
63. शान्ति पाठ 433
64. विसर्जन पाठ 434
65. सम्यक् भक्ति 435
66. श्री वर्द्धमान निर्वाण भक्ति 436
67. श्री गौतम गणधर स्तुति 437

प्रास्ताविक वक्तव्य

जैनधर्म निवृत्तिप्रधान धर्म है। इसमें मुक्ति और उसके कारणों की मीमांसा सांगोपांग और सूक्ष्मता के साथ की गयी है। इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें प्रवृत्ति के लिए यत्किंचित् भी स्थान नहीं है। वस्तुतः प्रवृत्ति कथंचित् निवृत्ति की पूरक है। अशुभ और शुभ से निवृत्ति होकर जीव की शुद्ध आत्मस्वरूप में प्रवृत्ति हो, यह इसका अन्तिम लक्ष्य है। यहाँ शुभ से हमारा अभिप्राय शुभ राग से है। राग भी बन्ध का कारण है, इसलिए वह भी हेय है।

इसका अपना दर्शन है जो आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करता है। आचार्य कुन्दकुन्द 'समयसार' में पर से भिन्न आत्मा की पृथक् सत्ता का मनोरम चित्र उपस्थित करते हुए कहते हैं, 'अहो आत्मन्! ज्ञान-दर्शनस्वरूप तू अपने को स्वतन्त्र और एकाकी अनुभव कर। विश्व में तेरे दायें-बायें, आगे-पीछे और ऊपर-नीचे पुद्गल की जो अनन्त राशि दिखलाई देती है, उसमें अणुमात्र भी तेरा नहीं है। वह जड़ है और तू चेतन है। वह विनाशीक है और तू अविनाशीक पद का अधिकारी है। उसके पास सम्बन्ध स्थापित कर तूने खोया ही है, कुछ पाया नहीं। संसार खोने का मार्ग है। प्राप्त करने का मार्ग इससे भिन्न है।'

जैनधर्म एकमात्र उसी मार्ग का निर्देश करता है जो आत्मा के निज स्वरूप की प्राप्ति में सहायक होता है। यद्यपि कहीं-कहीं स्वर्गादि रूप अभ्युदय की प्राप्ति धर्म का फल कहा गया है किन्तु इसे औपचारिक ही समझना चाहिए। धर्म का साक्षात् फल आत्मविशुद्धि है। इसकी परमोच्च अवस्था का नाम ही मोक्ष है। यह न तो शून्यरूप है और न इसमें आत्मा का अभाव ही होता है। संसार में संकल्प-विकल्प और संयोगजन्य जो अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं, मुक्तात्मा में उनका सर्वथा अभाव हो जाता है, इसीलिए जैनधर्म में मुक्ति-प्राप्ति का उद्योग सबके लिए हितकारी माना गया है।

1. मुनिधर्म

दूसरे शब्दों में यह बात यों कही जा सकती है कि जैनधर्म प्रत्येक आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करके व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के आधार पर उसके बन्धन से मुक्त होने के मार्ग का निर्देश करता है। तदनुसार इसमें मोक्षमार्ग के दो भेद किये गये हैं, प्रथम मुनि-धर्म और दूसरा गृहस्थ-धर्म। मुनि-धर्म पूर्ण स्वावलम्बन की दीक्षा का दूसरा नाम है।

अट्ठाईस मूलगुण

इसमें किसी भी प्रकार की हिंसा, असत्य, चोरी और अब्रह्म के लिए तो स्थान है ही नहीं। साथ ही साथ, साधु अन्तरंग और बहिरंगपूर्ण परिग्रह का त्यागी होता है। वह अपना समस्त आचार-व्यवहार यत्नाचारपूर्वक करता है। चलते समय जमीन शोधकर चलता है। बोलने का संयम रखता है। यदि बोलना भी है तो हित, मित और प्रिय वचन ही बोलता है। शरीर द्वारा संयम की रक्षा के लिए अयाचित और अनुद्दिष्ट निर्दोष भोजन दिन में एक बार लेता है। पात्र और आसन को स्वीकार नहीं करता। आहार के ग्रहण की पूर्ति अंजलिबद्ध दोनों हाथों से हो जाती है और खड़े-खड़े ही उपकरणों में आसक्ति किये बिना आहार लिया जा सकता है, इसलिए पात्र और आसन का आश्रय नहीं लेता। संयम की रक्षा और ज्ञान की वृद्धि के लिए वह पीछी, कमण्डलु और शास्त्र को स्वीकार करता है किन्तु उनके उठाने-धरने में किसी को बाधा न पहुँचे, इस अभिप्राय से वह पूरी सावधानी रखता है। मल-मूत्र आदि का क्षेपण भी निर्जन्तु और एकान्त स्थान में करता है। काय और मन की यद्वा तद्वा प्रवृत्ति से विरत रहता है। केश सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति के स्थान हैं, इस अभिप्राय से वह स्वयं अपने हाथ से उनके उत्पाटन का व्रत स्वीकार करता है। इसके लिए किसी से कर्तरी और छुरा आदि की याचना नहीं करता। कोई स्वेच्छा से लाकर देने भी लगे, तो भी वह उन्हें स्वीकार नहीं करता। उनके स्वीकार करने में या उनसे काम लेने में वह अपने स्वावलम्बन व्रत की हानि मानता है।

साधु की परिग्रह आदि के समान शरीर में भी आसक्ति नहीं होती, इसलिए वह न तो शरीर का संस्कार करता है और न स्नान ही करता है। आवरण और परिग्रह का त्याग कर देने से वह नग्न रहता है। आहार उतना ही लेता है जो शरीर के सन्धारण के लिए आवश्यक होता है। उसके मुँह में आहारजन्य दुर्गन्ध आदि के उत्पन्न न होने के कारण उसे दन्तधोवन आदि की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वह अपने पाँचों इन्द्रियों के विषयों से सदा विरक्त रहता है। यह प्रत्येक साधु की जीवन-भर के लिए स्वीकृत चर्या है। इसका वह प्रतिदिन शरीर में आसक्ति किये बिना उत्तम रीति से पालन करता है।

साधु के मूलगुण अट्ठाईस होते हैं: पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों के विषयों का निरोध, सात विशेष गुण और छह आवश्यक। इनमें से बाईस मूलगुणों का विचार पूर्व में कर आये हैं। छह आवश्यक ये हैं-सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव,

वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग। साधु इनका भी उत्तम रीति से पालन करता है। जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु और सुख-दु:ख में समता परिणाम रखना और त्रिकाल देव-वन्दना करना सामायिक है। चौबीस तीर्थंकरों को नाम निरुक्ति और गुणानुकीर्तन करते हुए मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक प्रणाम करना चतुर्विंशति-स्तव है। पाँच परमेष्ठी और जिन-प्रतिमा को कृति-कर्म के साथ मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक प्रणाम करना वन्दना है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आलम्बन से व्रत विशेष में या आहार आदि के ग्रहण के समय जो दोष लगता है, उसकी मन, वचन और काय की सम्हाल के साथ निन्दा और गर्हा करते हुए शुद्धि करना प्रतिक्रमण है तथा अयोग्य नाम, स्थापना और द्रव्य आदि का मन, वचन और काय से त्याग कर देना प्रत्याख्यान है।

विशेष नियम

ये साधु के मूल गुण हैं। इनका वह नियमित रूप से पालन करता है। इनके सिवा उक्त धर्म के पूरक कुछ उपयोगी नियम और हैं जिनको जीवन में उतारने से साधुधर्म की रक्षा मानी जाती है। वे ये हैं- 1. जो अपने से बड़े पुराने दीक्षित साधु हैं, उनके सामने आने पर अभ्युत्थान और प्रणाम आदि द्वारा उनकी समुचित विनय करता है। 2. आगमार्थ के सुनने और ग्रहण करने में रुचि रखता है। 3. गुरु आदि से शंका का निवारण विनयपूर्वक करता है। 4. श्रुत का अभ्यास बढ़ जाने पर न तो अहंकार करता है और न उसे छिपाता है। 5. ज्ञान और संयम के उपकरणों के प्रति आसक्ति नहीं रखता। 6. जिस पुस्तक का स्वाध्याय करता है, उसे स्वाध्याय समाप्त होने तक के लिए ही स्वीकार करता है; अनावश्यक पुस्तकों के संग्रह में रुचि नहीं रखता। अनुसन्धान के लिए अधिक पुस्तकों का अवलोकन करना वर्जनीय नहीं है परन्तु उनके संग्रह में रुचि नहीं रखता। 7. अपने गुरु और गुरुकुल के अनुकूल प्रवृत्ति करता है। 8. संयम के योग्य क्षेत्र, निर्जन वन, गिरि-गुफा या चैत्यालय आदि में निवास करता है। 9. अन्य साधुओं की आवश्यकतानुसार वैयावृत्य करता है। 10. गाँव में एक दिन और शहर में पाँच दिन से अधिक निवास नहीं करता है। 11. पहले अपनी गुरु-परम्परा से आये हुए आगम का विधिपूर्वक अध्ययन करके गुरु की आज्ञा से अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता है। 12. अध्ययन करने के बाद यदि अन्य धर्मायतन आदि स्थान में जाने की इच्छा हो तो गुरु से अनेक बार पृच्छापूर्वक अनुज्ञा लेकर अकेला नहीं जाता है; किन्तु

अन्य साधुओं के साथ जाता है। अकेले विहार करने की गुरु ऐसे साधु को ही अनुज्ञा देते हैं जो सूत्रार्थ का ज्ञाता है। उत्तम प्रकार से तपश्चर्या में रत है, जिसने सहनशक्ति बढ़ा ली है, जो शान्त और प्रशस्त परिणामवाला है, उत्तम संहनन का धारी है, सब तपस्वियों में पुराना है, अपने आचार की रक्षा करने में समर्थ है और जो देशकाल का पूर्ण ज्ञाता है। जो इन गुणों का धारी नहीं है, उसके एकल विहारी होने पर गुरु का अपवाद होने का, श्रुत का विच्छेद होने का और तीर्थ के मलिन होने का भय बना रहता है तथा स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है और भी अनेक दोष हैं, इसलिए हर कोई साधु एकल विहारी नहीं हो सकता। जो इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं, वे भी उक्त दोषों के भागी होते हैं। प्रायः जो गारव दोष से युक्त होता है, मायावी होता है, आलसी होता है, व्रतादि के पूर्णरूप से पालन करने में असमर्थ होता है और पापबुद्धि होता है, वही गुरु की अवहेलना करके अकेला रहना चाहता है। 13. आर्यिका या अन्य स्त्री के अकेली होने पर उनसे बातचीत नहीं करता और न वहाँ ठहरता ही है। 14. यदि बातचीत करने का विशेष प्रयोजन हो तो अनेक स्त्रियों के रहते हुए ही दूर से उनसे बातचीत करता है। 15. आर्यिकाओं या अन्य व्रती श्राविकाओं के उपाश्रय में नहीं ठहरता। 16. अपनी प्रभाववृद्धि के लिए मन्त्र, तन्त्र और ज्योतिष विद्या का उपयोग नहीं करता। 17. तैल-मर्दन आदि द्वारा शरीर का संस्कार नहीं करता और सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग नहीं करता। 18. शीत आदि की बाधा से रक्षा के उपायों का आश्रय नहीं लेता। 19. वसतिका आदि का द्वार स्वयं बन्द नहीं करता तथा वहाँ आनेवाले अन्य व्यक्ति को नहीं रोकता। 20. दीपक या लालटेन की रोशनी को कम-अधिक नहीं करता। बैटरी भी पास में नहीं रखता। 21. उष्णता का निवारण करने के लिए पंखे आदि का उपयोग नहीं करता। 22. अपने साथ नौकर आदि नहीं रखता। 23. किसी के साथ विसंवाद नहीं करता। 24. तीर्थादि की यात्रा के लिए अर्थ का संग्रह नहीं करता और न इसकी पूर्ति के लिए उपदेश देता है। 25. तथा यात्रा के समय किसी प्रकार की सवारी का उपयोग नहीं करता। पैदल ही विहार करता है। इन नियमों के सिवा और भी बहुत-से नियम हैं, जिनका वह संयम की रक्षा के लिए भली प्रकार पालन करता है।

2. आर्यिकाओं के विशेष नियम

उक्त धर्म का समग्र रूप से आर्यिकाएँ भी पालन करती हैं। इसके सिवा उनके लिए जो अन्य नियम बतलाये गये हैं, उनका भी वे आचरण करती हैं। वे अन्य नियम ये

हैं–1. वे परस्पर में एक–दूसरे के अनुकूल होकर एक–दूसरे की रक्षा करती हुई रहती हैं। 2. रोष, बैरभाव और मायाभाव से रहित होकर लज्जा और मर्यादा का ध्यान रखती हुई उचित आचार का पालन करती हैं। 3. सूत्र का अध्ययन, सूत्रपाठ, सूत्र का श्रवण, उपदेश देना, बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन, तप, विनय और संयम में सदा सावधान रहती हैं। 4. शरीर का संस्कार नहीं करतीं। 5. सादा बिना रंगा हुआ वस्त्र पहनती हैं। 6.जहाँ गृहस्थ निवास करते हैं, उस मकान आदि में नहीं ठहरतीं। 7. कभी अकेली नहीं रहतीं । कम–से–कम दो–तीन मिलकर रहती हैं। 8. बिना प्रयोजन के किसी के घर नहीं जातीं। यदि प्रयोजनवश जाना ही पड़े, तो गणिनी से अनुज्ञा लेकर मिलकर ही जाती हैं। 9. रोना, बालक आदि को स्नान कराना, भोजन बनाना, दाई का कार्य और कृषि आदि छह प्रकार का आरम्भ कर्म नहीं करतीं। 10. साधुओं का पाद–प्रक्षालन व उनका परिमार्जन नहीं करतीं। 11. वृद्धा आर्यिका को मध्य में करके तीन, पाँच या सात आर्यिकाएँ मिलकर एक–दूसरे की रक्षा करती हुई आहार को जाती हैं। 12. आचार्य से पाँच हाथ, उपाध्याय से छह हाथ और अन्य साधुओं से सात हाथ दूर रहकर गो–आसन से बैठकर उनकी वन्दना करती हैं। जो साधु और आर्यिकाएँ इस आचार का पालन करते हैं, वे जगत् में पूजा और कीर्ति को प्राप्त करते हुए अन्त में यथानियम मोक्ष–सुख के भागी होते हैं।

3. गृहस्थ–धर्म

मोक्ष–प्राप्ति का साक्षात् मार्ग मुनिधर्म ही है किन्तु जो व्यक्ति मुनिधर्म को स्वीकार करने में असमर्थ होते हुए भी उसे जीवनव्रत बनाने में अनुराग रखते हैं, वे गृहस्थधर्म के अधिकारी माने गये हैं। मुनिधर्म उत्सर्ग मार्ग है और गृहस्थधर्म अपवाद मार्ग है। तात्पर्य यह है कि गृहस्थधर्म से आंशिक आत्मशुद्धि और स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती है, इसलिए यह भी मोक्ष का मार्ग माना गया है।

समीचीन श्रद्धा और उसका फल

जो मुनिधर्म या गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है, उसकी पाँच परमेष्ठी और जिनदेव द्वारा प्रतिपादित शास्त्र में अवश्य श्रद्धा होती है। वह अन्य किसी को मोक्ष प्राप्ति में साधक नहीं मानता, इसलिए आत्मशुद्धि की दृष्टि से इनके सिवा अन्य किसी की वन्दना और स्तुति आदि नहीं करता तथा उन स्थानों को आयतन भी नहीं मानता जहाँ न तो मोक्षमार्ग की शिक्षा मिलती है और न मोक्षमार्ग के उपयुक्त साधन ही

उपलब्ध होते हैं। लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए दूसरे का आदर-सत्कार करना अन्य बात है। वह जानता है कि शरीर मेरा स्वरूप नहीं है, इसलिए शरीर, उसकी सुन्दरता और बल का अहंकार नहीं करता। धन, ऐश्वर्य, कुल और जाति या तो माता-पिता के निमित्त से प्राप्त होते हैं या प्रयत्न से प्राप्त होते हैं। ये आत्मा का स्वरूप नहीं हो सकते, इसलिए इनका भी अहंकार नहीं करता। ज्ञान और तप ये समीचीन भी होते हैं और असमीचीन भी होते हैं। जिसे आत्मदृष्टि प्राप्त है, उनके ये असमीचीन हो ही नहीं सकते, इसलिए इन्हें मोक्षमार्ग प्रयोजक जान इनका भी अहंकार नहीं करता। धर्म आत्मा का निज रूप है, यह वह जानता है, इसलिए अपनी खोयी हुई उस निधि को प्राप्त करने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता है।

पाँच अणुव्रत

इस प्रकार दृढ़ आस्था के साथ सम्यग्दर्शन को स्वीकार करके वह अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थधर्म के प्रयोजक बारह व्रतों को धारण करता है। बारह व्रत ये हैं-पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह का वह एक देश त्याग करता है, इसलिए उसके पाँच अणुव्रत होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह त्रस हिंसा से तो विरत रहता ही है, बिना प्रयोजन के एकेन्द्रिय जीवों का भी वध नहीं करता। ऐसा वचन नहीं बोलता जिससे दूसरों की हानि हो या बोलने से दूसरों के सामने अप्रमाणित बनना पड़े। अन्य की छोटी-बड़ी किसी वस्तु को उसकी आज्ञा के बिना स्वीकार नहीं करता। अपनी स्त्री के सिवा अन्य सब स्त्रियों को माता, बहन या पुत्री के समान मानता है और आवश्यकता से अधिक धन का संचय नहीं करता।

तीन गुणव्रत

इन पाँच व्रतों की वृद्धि के लिए वह दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड-विरतिव्रत इन तीन गुणव्रतों को भी धारण करता है। दिग्व्रत में जीवन भर के लिए और देशव्रत में कुछ काल के लिए क्षेत्र की मर्यादा की जाती है। गृहस्थ का पुत्र, स्त्री और धन-सम्पदा से निरन्तर सम्पर्क रहता है। इस कारण उसकी तृष्णा में वृद्धि होना सम्भव है। ये दोनों व्रत उसी तृष्णा को कम करने के लिए या सीमित रखने के लिए स्वीकार किये जाते हैं। प्रथम व्रत को स्वीकार करते समय वह इस प्रकार की प्रतिज्ञा करता है कि मैं जीवन-भर अपने व्यापार आदि प्रयोजन की सिद्धि इस क्षेत्र के भीतर रहकर ही

करूँगा। इसके बाहर होने वाले व्यापार आदि से या उसके निमित्त से होने वाले लाभ से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। समय-समय पर यथा-नियम दूसरे व्रत को स्वीकार करते समय वह अपने इस क्षेत्र को और भी सीमित करता है और इस प्रकार अपनी तृष्णा पर उत्तरोत्तर नियन्त्रण स्थापित करता जाता है। इतना ही नहीं, वह आजीविका में और अपने आचार-व्यवहार में उन्हीं साधनों का उपयोग करता है जिनसे दूसरे प्राणियों को किसी प्रकार की बाधा नहीं होने पाती। जिनसे दूसरों की हानि होने की सम्भावना होती है, उनका वह निर्माण भी नहीं करता और ऐसा करके वह स्वयं को अनर्थदण्ड से बचाता है।

चार शिक्षाव्रत

वह अपने जीवन में कुछ शिक्षाएँ भी स्वीकार करता है। प्रथम तो वह समता व तत्त्व का अभ्यास कर अपने सामायिक शिक्षाव्रत को पुष्ट करता है। दूसरे, पर्व दिनों में एकाशन और उपवास आदि व्रतों को स्वीकार कर वह प्रोषधोपवास व्रत की रक्षा करता है। शरीर सुखशील न बने और आत्मशुद्धि की ओर गृहस्थ का चित्त जावे, इस अभिप्राय से वह इस व्रत को स्वीकार करता है। वह अपने आहार आदि में प्रयुक्त होनेवाली सामग्री का भी विचार करता है और मन तथा इन्द्रियों को मत्त करनेवाली तथा दूसरे जीवों को बाधा पहुँचाकर निष्पन्न की गयी सामग्री का उपयोग न कर उपभोग-परिभोग परिमाणव्रत को स्वीकार करता है। अतिथि सबका आदरणीय होता है और उससे संयम के अनुरूप शिक्षा मिलती है, इसलिए वह अतिथिसंविभाग व्रत को स्वीकार कर सबकी यथोचित व्यवस्था करता है। ये गृहस्थ के द्वारा करने योग्य बारह व्रत हैं। इनके धारण करने से उसका गृहस्थ जीवन सफल माना जाता है।

4. कृतिकर्म : देवपूजा

हमने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म का सामान्य रूप से दिग्दर्शन कराते समय जिस प्रमुख धर्म का जान-बूझकर उल्लेख नहीं किया है; वह है कृतिकर्म । कृतिकर्म साधु और गृहस्थ दोनों के आवश्यक कार्यों में मुख्य है। यद्यपि साधु सांसारिक प्रयोजनों से मुक्त हो जाता है, फिर भी उसका चित्त भूलकर भी लौकिक समृद्धि, यश और अपनी पूजा आदि की ओर आकृष्ट न हो और गमनागमन, आहारग्रहण आदि प्रवृत्ति करते समय लगे हुए दोषों का परिमार्जन होता रहे, इसलिए साधु कृतिकर्म को स्वीकार करता है। गृहस्थ की जीवनचर्या ही ऐसी होती है जिसके कारण उसकी प्रवृत्ति निरन्तर सदोष बनी रहती है, इसलिए उसे भी कृतिकर्म करने का उपदेश दिया गया है।

पर्यायवाची नाम

कृतिकर्म के 'मूलाचार' में चार पर्यायवाची नाम दिये हैं–कृति–कर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म[1]। इनकी व्याख्या करते हुए वहाँ कहा गया है कि जिस अक्षरोच्चाररूप वाचनिक क्रिया के, परिणामों की विशुद्धि रूप मानसिक क्रिया के और नमस्कारादि रूप कायिक क्रिया के करने से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों का 'कृत्यते छिद्यते' छेद होता है, उसे कृतिकर्म कहते हैं। यह पुण्यसंचय का कारण है, इसलिए उसे चितिकर्म भी कहते हैं। इसमें चौबीस तीर्थंकरों और पाँच परमेष्ठी आदि की पूजा की जाती है, इसलिए इसे पूजाकर्म भी कहते हैं तथा इसके द्वारा उत्कृष्ट विनय प्रकाशित होती है, इसलिए इसे विनयकर्म भी कहते हैं। यहाँ विनय की 'विनीयते निराक्रियते' ऐसी व्युत्पत्ति करके इसका फल कर्मों की उदय और उदीरणा आदि करके उनका नाश करना भी बतलाया गया है। तात्पर्य यह है कि कृतिकर्म जहाँ कर्मों की निर्जरा का कारण है, वहाँ वह उत्कृष्ट पुण्य–संचय में हेतु है और विनय गुण का मूल है, इसलिए उसे प्रमादरहित होकर साधुओं और गृहस्थों को यथाविधि करना चाहिए।

समय–विचार

कृतिकर्म कब किया जाए, इस प्रश्न का समाधान करते हुए लिखा है कि कृतिकर्म तीनों सन्ध्याकालों में करना चाहिए[2]। वीरसेनस्वामी अपनी धवला (कर्म–अनुयोगद्वार, सूत्र 28) टीका में कहते हैं कि यह तीन बार ही करना चाहिए ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। अधिक बार भी किया जा सकता है, पर तीन बार अवश्य करना चाहिए। यह तो हम आगे बतलाने वाले हैं कि तीन सन्ध्याकालों में जो कृतिकर्म किया जाता है, उसमें सामायिक, चतुर्विंशति–स्तव और वन्दना इन तीनों की मुख्यता है। इसलिए आजकल जिन विद्वानों और त्यागियों का यह मत है कि साधु को प्रतिदिन देव–वन्दना करनी ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है–उनका वह मत आगम–संगत नहीं जान पड़ता। तीनों सन्ध्याकालों में किया जानेवाला कृतिकर्म साधु और श्रावक दोनों का एक समान है। अन्तर केवल इतना है कि साधु अपरिग्रही होने से कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि द्रव्य का उपयोग नहीं करता और गृहस्थ उसका भी उपयोग करता है।

1. मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा 79।
2. षट्खण्डागम, कर्म अनुयोगद्वार, 28

गृहस्थ का कृतिकर्म

'मूलाचार' में कृतिकर्म के व्याख्यान के प्रसंग से विनय की व्याख्या करते हुए उसके पाँच भेद किये हैं–लोकानुवृत्तिविनय, अर्थविनय, काम–विनय, भयविनय और मोक्षविनय । अर्थविनय, कामविनय और भयविनय ये संसार की प्रयोजक हैं, यह स्पष्ट ही है। लोकानुवृत्तिविनय दो प्रकार की है। एक वह जिसमें यथावसर सबका उचित आदर–सत्कार किया जाता है और दूसरी वह जो देवपूजा आदि के समय की जाती है। यहाँ देवपूजा अपने विभव के अनुसार करनी चाहिए यह कहा है।[1] (मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा 84) । इससे विदित होता है कि गृहस्थ कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि सामग्री का उपयोग करता है। वह सामग्री कैसी हो, इसके सम्बन्ध में मूलाचार प्रथम अधिकार के श्लोक 24 की टीका में आचार्य वसुनन्दि कहते हैं, 'जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए गन्ध, पुष्प और धूप आदि जिस सामग्री का उपयोग किया जावे, वह प्रासुक और निर्दोष होनी चाहिए।' इससे भी गृहस्थ कृतिकर्म करते समय सामग्री का उपयोग करता है, इसकी सूचना मिलती है।

आलम्बन

कृतिकर्म करने का मुख्य हेतु आत्मशुद्धि है। इसलिए यह विधि सम्पन्न करते समय उन्हीं का आलम्बन लिया जाता है, जिन्होंने आत्मशुद्धि करके या तो मोक्ष प्राप्त कर लिया है या जो अरहन्त अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा जिन–प्रतिमा और जिनवाणी ये भी आत्मशुद्धि में प्रयोजक होने से उसके आलम्बन माने गये हैं।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि देवपूजा आदि कार्य बिना राग के नहीं होते और राग संसार का कारण है, इसलिए कृतिकर्म को आत्मशुद्धि में प्रयोजक कैसे माना जा सकता है? समाधान यह है कि जब तक सराग अवस्था है, तब तक जीव के राग की उत्पत्ति होती ही है। यदि वह राग लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए होता है, तो उससे संसार की वृद्धि होती है किन्तु अरिहन्त आदि स्वयं राग और द्वेष से रहित होते हैं। लौकिक प्रयोजन से उनकी पूजा नहीं की जाती है, इसलिए उनमें पूजा आदि के निमित्त से होनेवाला राग मोक्षमार्ग का प्रयोजक होने से प्रशस्त माना गया है। 'मूलाचार' में भी

1. मूलाचार, षडावश्यकाधिकार, गाथा 79।

कहा है कि जिनेन्द्रदेव की भक्ति करने से पूर्वसंचित सभी कर्मों का क्षय होता है। आचार्य के प्रसाद से विद्या और मन्त्र सिद्ध होते हैं। ये संसार से तारने के लिए नौका के समान हैं। अरिहन्त, वीतराग धर्म, द्वादशांग वाणी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनमें जो अनुराग करते हैं, उनका वह अनुराग प्रशस्त होता है। इनके अभिमुख होकर विनय और भक्ति करने से सब अर्थों की सिद्धि होती है। इसलिए भक्ति रागपूर्वक मानी गयी है किन्तु यह निदान नहीं है। निदान सकाम होता है और भक्ति निष्काम। यही इन दोनों में अन्तर है।

विधि

वन्दना के लिए जाते समय श्री जिनालय के दृष्टिपथ में आने पर 'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि..' पाठ पढ़े। अनन्तर हाथ-पैर धोकर 'णिसही-णिसही-णिसही' ऐसा तीन बार उच्चारण करके जिनालय में प्रवेश करे। भगवान् जिनेन्द्रदेव के दर्शन से पुलकित वदन और आत्मविभोर हो उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो जावे। अनन्तर दोषविशुद्धि के लिए ईर्यापथ शुद्धि करके यथाविधि सामायिक दण्डक, त्थोस्सामि दण्डक, चैत्य-भक्ति और पंच-गुरु-भक्ति पढ़े। अन्त में देव-वन्दना करते समय लगे दोष के परिमार्जन के लिए यथाविधि समाधि-भक्ति पढ़कर देववन्दना कृतिकर्म को सम्पन्न करे।

इस कृतिकर्म को करते समय कहाँ बैठकर अष्टांग नमस्कार करे, कहीं खड़े-खड़े ही नमस्कार करे तथा कहाँ मन, वचन और काय की शुद्धि के सूचक तीन आवर्त करे, आदि सब विधि विविध शास्त्रों में बतलायी गयी है। इस विधि को सूचित करनेवाला एक सूत्र षट्खण्डागम के कर्म अनुयोगद्वार में भी आया है। उसके अनुसार कृतिकर्म के छह भेद होते हैं-उसका प्रथम विशेषण आत्माधीन है। कृतिकर्म पूरी स्वाधीनता के साथ करना चाहिए, क्योंकि पराधीन होकर किये गये कार्य से इष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। दूसरा विशेषण तीन प्रदक्षिणा देना है। गुरु, जिन और जिनगृह की वन्दना करते समय तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करना चाहिए। तीसरा विशेषण तीन बार करना है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रिया तीन-तीन बार करनी चाहिए। या एक दिन में जिन, गुरु और जिनगृह आदि की वन्दना कम से कम तीन बार करनी चाहिए, यह इसका भाव है। चौथा विशेषण भूमि पर बैठकर तीन बार अष्टांग नमस्कार करना है। सर्वप्रथम हाथ-पैर धोकर शुद्धमन से जिन-मन्दिर में जाकर जिनदेव को

बैठकर अष्टांग नमस्कार करे। यह प्रथम नीति है। पुनः उठकर और जिनेन्द्रदेव की प्रार्थना करके बैठकर अष्टांग नमस्कार करना यह दूसरी नीति है। पुनः उठकर सामायिक दण्डक से आत्मशुद्धि करके तथा कषाय रहित होकर शरीर का उत्सर्ग करके जिनेन्द्र देव के अनन्त गुणों का ध्यान करते हुए चौबीस तीर्थंकर जिन, जिनालय और गुरुओं की स्तुति करके भूमि में बैठकर अष्टांग नमस्कार करना, यह तृतीय नीति है। इस प्रकार एक कृतिकर्म में तीन अष्टांग नमस्कार होते हैं। पाँचवाँ विशेषण चार बार सिर नवाना है। सामायिक दण्डक के आदि और अन्त में तथा त्थोस्सामि दण्डक के आदि में और अन्त में इस प्रकार एक कृतिकर्म में सब मिला कर चार बार सिर झुकाकर नमस्कार किया जाता है। छठा विशेषण बारह आवर्त करना है। दोनों हाथों को जोड़कर और कमल के समान मुकुलित करके दक्षिण भाग से प्रारम्भ करके वाम भाग की ओर ले जाकर और वाम भाग से पुनः दक्षिण भाग की ओर घुमाते हुए ले आना आवर्त है। इतनी विधि करने से एक आवर्त होता है। एक कृतिकर्म में ऐसे बारह आवर्त होते हैं। सामायिक दण्डक के आदि में और अन्त में तथा त्थोस्सामिदण्डक के आदि में और अन्त में तीन-तीन आवर्त होते हैं, इसलिए इनका जोड़ बारह हो जाता है।

'मूलाचार' में अन्य सब विधि 'षट्खण्डागम' के अनुसार कही है। मात्र वहाँ अष्टांग नमस्कार दो बार करने का ही विधान है, प्रथम सामायिक दण्डक के प्रारम्भ में और दूसरा त्थोस्सामिदण्डक के प्रारम्भ में। 'हरिवंशपुराण' में भी भूमिस्पर्शरूप दो ही अष्टांग नमस्कारों का उल्लेख है-प्रथम सामायिकदण्डक के प्रारम्भ में और दूसरा त्थोस्सामिदण्डक के अन्त में। इससे प्रतीत होता है कि पूर्व काल में देशभेद से कृतिकर्म के बाह्य आचार में थोड़ा-बहुत अन्तर भी प्रचलित रहा है। इतना अवश्य है कि देववन्दना के समय सामायिकदण्डक, त्थोस्सामिदण्डक, पंच-गुरु भक्ति और यथासम्भव समाधिभक्ति यथाविधि अवश्य पढ़ी जाती रही है।

5. वर्तमान पूजा-विधि

वर्तमान में जो दर्शनविधि और पूजाविधि प्रचलित है, उसमें वे सब गुण नहीं रहने पाये हैं जो 'षट्खण्डागम' आदि में प्रतिपादित क्रिया-कर्म में निर्दिष्ट किये गये हैं। अधिकतर श्रावक और त्यागी जन जिन्हें जितना अवकाश मिलता है, उसके अनुसार इस विधि को सम्पन्न करते हैं। व्रती श्रावकों में और साधुओं में त्रिकाल देववन्दना का नियम तो एक प्रकार से उठ ही गया है, प्रतिक्रमण और आलोचना करने की विधि भी

समाप्तप्राय ही है। यह कृतिकर्म का आवश्यक अंग है। फिर भी समग्र पूजाविधि को देखने से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि उसमें पूर्वोक्त देववन्दना (कृतिकर्म) का समावेश अवश्य किया गया है। इतना अवश्य है कि कुछ आवश्यक क्रियाएँ छूट गयी हैं और कुछ नयी जा मिली हैं। कृतिकर्म प्रारम्भ करने के पूर्व जो ईर्यापथशुद्धि करनी चाहिए, उसे वर्तमान समय में व्रती श्रावक भी नहीं करते, अव्रती श्रावकों की बात तो अलग है। सामायिकदण्डक समग्र तो नहीं, पर उसका प्रारम्भिक भाग पंच नमस्कारमन्त्र और चत्तारिदण्डक पूजाविधि में यथास्थान सम्मिलित कर लिया गया है। मात्र उसे पढ़कर पुष्पांजलि क्षेपण कर देते हैं। त्थोस्सामिदण्डक के स्थान में 'श्रीवृषभो नः स्वस्ति' यह स्वस्तिपाठ और पंचगुरुभक्ति के स्थान में 'नित्याप्रकम्पा... यह स्वस्तिपाठ वर्तमान पूजाविधि में सम्मिलित है जो कृतिकर्म के अनुसार है। अर्थात् पहले 'श्रीवृषभो नः स्वस्ति' यह पढ़कर बाद में पंचगुरुभक्ति पढ़ी जाती है। किन्तु इनके बीच में चैत्यभक्ति नहीं पढ़ी जाती। प्राचीन चैत्यभक्ति दो मिलती हैं–एक लघु चैत्यभक्ति और दूसरी बृहच्चैत्य भक्ति। इनमें से लघु चैत्यभक्ति पूजाविधि में अवश्य सम्मिलित की गयी है, किन्तु वह अपने स्थान पर न होकर देव–शास्त्र–गुरु तथा बीस तीर्थकर की पूजा के बाद में आती है। जिसे वर्तमान में कृत्रिमाकृत्रिम–जिनालय–पूजा कहते हैं, वह लघु चैत्यभक्ति ही है। इसे पढ़कर इसका आलोचना–पाठ भी पढ़ते हैं और अन्त में 'अथ पौर्वाहिनकं....' इत्यादि पढ़कर नो बार णमोकार मन्त्र का जाप भी करते हैं। 'अथ पौर्वाह्निकं ....' इत्यादि पाठ द्वारा पंचगुरुभक्ति का कृत्य विज्ञापन किया गया है, इसलिए इसके आगे पंचगुरुभक्ति करनी चाहिए, इसे कोई नहीं जानता। कृतिकर्म के अन्त में पहले समाधिभक्ति पढ़ी जाती थी, उसे पूजाविधि के अन्त में वर्तमान समय में भी यथास्थान पढ़ते हैं। जिसे आजकल शान्तिपाठ कहा जाता है, वह समाधिभक्ति ही है। अन्तर केवल इतना है कि समाधिभक्ति में 'प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः' यहाँ से लेकर आगे का पाठ पढ़ा जाता था और शान्तिपाठ में 'शान्तिजिनं शशि....' इत्यादि पाठ भी सम्मिलित कर लिया गया है। इससे उद्देश्य में भी अन्तर आ गया है।

इतना सब लिखने का अभिप्राय इतना ही है कि वर्तमान पूजाविधि में यद्यपि पुराने कृतिकर्म का समावेश किया गया है, पर कृत्यविज्ञापन, प्रतिक्रमण और आलोचना–पाठ छोड़ दिये गये हैं। विधि में जो एकरूपता थी, वह भी नहीं रहने पायी

है। देववन्दना के समय हमें क्या कितना करना चाहिए, यह कोई नहीं जानता। द्रव्य की बहुलता और प्रधानता हो जाने से कृतिकर्म देवदर्शन और देवपूजा इस प्रकार दो भागों में विभक्त हो गया है। वस्तुत: इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। गृहस्थ अपने साथ प्रासुक द्रव्य लाकर यथास्थान उसका प्रयोग करे, यह बात अलग है; इसका निषेध नहीं है। पण्डितप्रवर आशाधरजी ने श्रावक की दिनचर्या में त्रिकाल देववन्दना के समय दोनों प्रकार से पूजा करने का विधान किया है। प्रात:कालीन देववन्दना का विधान करते हुए वे लिखते हैं कि श्री जिनमन्दिर में जाते समय गृहस्थ को चार हाथ भूमि शोधकर जाना चाहिए। मन्दिर में पहुँचकर और हाथ-पैर धोकर सर्वप्रथम 'जाव अरहंताणं...' इत्यादि वचन बोलकर पहले ईर्यापथ शुद्धि करनी चाहिए। अनन्तर 'जयन्ति निर्जिताशेष....' इत्यादि पढ़कर या पूजाष्टक पढ़कर देववन्दना करनी चाहिए। सर्वप्रथम जिनेन्द्रदेव की पूजा करे। उसके बाद श्रुत और सूरि की पूजा करे। इसे वे जघन्य (साधारण) वन्दना-विधि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि अष्ट द्रव्य से यदि गृहस्थ देववन्दना करता है, तो सर्वोत्कृष्ट है और यदि अष्ट द्रव्य के बिना करता है तो भी हानि नहीं है।

पूजा-विधि का अन्य प्रकार

साधारणत: देवपूजा का जो पुरातन प्रकार रहा है और उसका वर्तमान समय में प्रचलित पूजा-विधि में जिस प्रकार समावेश किया गया है, उसका हमने स्पष्टीकरण किया है। साथ ही उसमें न्यूनाधिकता हुई है, उस पर भी हम विचार कर आये हैं। यहाँ हम पूजा के उस प्रकार का भी उल्लेख कर देना चाहते हैं, जिसे सोमदेवसूरि ने 'यशस्तिलकचम्पू' (कल्प. 36) में निबद्ध किया है, क्योंकि वर्तमान पूजाविधि पर इसका विशेष प्रभाव दिखलाई देता है। वे लिखते हैं-

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति षड् विधं देवसेवनम्।।

देवपूजा छह प्रकार की है-प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा-फल। इन छह कर्मों का विस्तृत विवेचन करते हुए वे लिखते हैं-जिनेन्द्रदेव का गुणानुवाद करते हुए अभिषेकविधि करने की प्रस्तावना करना प्रस्तावना है। पीठ के चारों कोणों पर जल से भरे हुए चार कलशों की स्थापना करना पुराकर्म है। पीठ पर यथाविधि जिनेन्द्रदेव को स्थापित करना स्थापनाकर्म है। ये जिनेन्द्रदेव हैं, यह पीठ

मेरुपर्वत है, जलपूर्ण ये कलश क्षीरोदधि के जल से पूर्ण कलश हैं और मैं इन्द्र हूँ जो इस समय अभिषेक के लिए उद्यत हुआ हूँ, ऐसा विचार करना सन्निधापन है। अभिषेकपूर्वक पूजा करना पूजा है और सबके कल्याण की भावना करना पूजाफल है।

श्रीसोमदेव सूरि द्वारा प्रतिपादित यह पूजाविधि वही है जो वर्तमान समय में प्रचलित है। मात्र इसमें न तो वर्तमान समय में प्रत्येक पूजा के प्रारम्भ में किये जानेवाले आह्वान, स्थापना और सन्निधीकरण का कोई विधान किया है और न विसर्जन विधि का ही निर्देश किया है। यद्यपि यहाँ पर जिन-प्रतिमा के स्थापित करने को स्थापना और उसमें साक्षात् जिनेन्द्रदेव की कल्पना करने को सन्निधापन कहा है, इसलिए इससे आह्वान, स्थापना और सन्निधीकरण का भाव अवश्य लिया जा सकता है। जो कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है कि इस विधि में उस आचार का पूरी तरह से समावेश नहीं होता, जिसका निर्देश हम पहले कर आये हैं।

विचारणीय विषय

इतना लिखने के बाद हमें वर्तमान पूजाविधि में प्रचलित दो-तीन बातों का संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम बात आह्वान, स्थापना और सन्निधीकरण के विषय में कहनी है। वर्तमान समय में जितनी पूजाएँ की जाती हैं, उनको प्रारम्भ करते समय सर्वप्रथम वह क्रिया की जाती है। जैन परम्परा में स्थापना निक्षेप का बहुत अधिक महत्त्व है; इसमें सन्देह नहीं। पण्डितप्रवर आशाधरजी ने जिनाकार को प्रकट करनेवाली मूर्ति के न रहने पर अक्षत आदि में भी स्थापना करने का विधान किया है।[1] किन्तु जहाँ साक्षात् जिनप्रतिमा विराजमान है और उसके आलम्बन से पंचपरमेष्ठी और चौबीस तीर्थंकर आदि की पूजा की जा सकती है, वहाँ क्या आह्वान आदि क्रिया का किया जाना उपयुक्त है? देववन्दना की जो प्राचीन विधि उपलब्ध होती है, उसमें इसके लिए स्थान नहीं है; यह बात उस विधि के देखने से स्पष्टत: लक्ष्य में आ जाती है।

दूसरी बात विसर्जन के सम्बन्ध में कहनी है। विसर्जन आकर पूजा को स्वीकार करनेवाले का किया जाता है। किन्तु जैनधर्म के अनुसार न कोई आता है और न पूजा में अर्पण किये गये भाग को स्वीकार करता है, अत: विसर्जन की मान्यता को रंचमात्र भी स्थान नहीं है। पाँच परमेष्ठी के स्वरूप का विचार करने से यह बात और

1. सागारधर्मामृत, अध्याय-2, श्लोक-31

भी स्पष्ट हो जाती है। आगम में देववन्दना की जो विधि बतलायी है, उसके अनुसार देववन्दना सम्बन्धी कृतिकर्म अन्त में समाधि भक्ति करने पर सम्पन्न हो जाता है, इसलिए मन में यह प्रश्न उठता है कि पूजा के अन्त में क्या विसर्जन करना आवश्यक है? इस समय जो विसर्जन पढ़ा जाता है, उसके स्वरूप पर भी हमने विचार किया है। उससे मिलते-जुलते श्लोक ब्राह्मणधर्म के अनुसार किये जानेवाले क्रियाकाण्ड में भी पाये जाते हैं। तुलना कीजिए-

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न च जानामि क्षमस्व परमेश्वर।।1।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्व क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।2।।

इनके स्थान में ब्राह्मणधर्म में ये श्लोक उपलब्ध होते हैं-

आह्वानं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजनं नैव जानामि क्षमस्व परमेश्वर।।1।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्ण तदस्तु मे।।2।।

'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि' इत्यादि श्लोक भी ब्राह्मण क्रियाविधि में कुछ हेर-फेर से होना चाहिए, ऐसा हमारा ख्याल है। किन्तु तत्काल उपलब्ध न होने से वह नहीं दिया गया है।

'आहूता ये पुरा देवा:' इत्यादि श्लोक प्रतिष्ठापाठ का है। पंच-कल्याणक की समस्त क्रिया मुख्यतया चतुर्निकाय के देव सम्पन्न करते हैं, इसलिए पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा में उनका आह्वान और स्थापना की जाती है। तथा क्रियाविधि के सम्पन्न होने पर उनका विसर्जन भी किया जाता है। इसलिए वहीं पर इस श्लोक की सार्थकता भी है। देवपूजा में इसकी रंचमात्र भी सार्थकता नहीं है।

तीसरी बात अभिषेक के विषय में कहनी है। सामान्यत: अभिषेक के विषय में दो मत पाये जाते हैं। एक मत यह है कि जिन-प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हो जाती है, इसलिए उसका अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक नहीं हो सकता। दूसरे

मत के अनुसार अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक माना गया है। सोमदेव सूरि इस दूसरे मत के अनुसर्ता जान पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने अभिषेक-विधि का विधान करते समय वह सब क्रिया बतलायी है जो जन्माभिषेक के समय होती है। फिर भी, यह अवश्य ही विचारणीय हो जाता है कि यदि अभिषेक जन्मकल्याणक के समय किये गये अभिषेक का प्रतीक है, तो इसमें पंचामृताभिषेक कहाँ से आ गया? जन्मकल्याणक के समय तो केवल जल से अभिषेक किया जाता है। आगमिक परम्परा के अनुसार इसके ऐतिहासिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। इससे तथ्यों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

निष्कर्ष-

देवपूजा के विषय में इतना ऊहापोह करने से निष्कर्ष के रूप में हमारे मन पर जो छाप पड़ी है, वह यह है कि वर्तमान पूजाविधि में कृतिकर्म का जो आवश्यक अंश छूट गया है, यथास्थान उसे अवश्य ही सम्मिलित कर लेना चाहिए और प्रतिष्ठापाठ के आधार से इसमें जिस तत्त्व ने प्रवेश कर लिया है, उसका संशोधन कर देना चाहिए, क्योंकि पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाविधि में और देवपूजा में प्रयोजन आदि की दृष्टि से बहुत अन्तर है। वहीं अप्रतिष्ठित प्रतिमा को प्रतिष्ठित करना यह प्रयोजन है और यहाँ प्रतिष्ठित प्रतिमा को साक्षात् 'जिन' मानकर उसकी जिनेन्द्रदेव के समान उपासना करना यह प्रयोजन है।

-फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

अष्ट द्रव्य

(सोरठा)

जल-से निर्मल नाथ! चन्दन-से शीतल प्रभो!
अक्षत-से अविनाश, पुष्प-सदृश कोमल विभो!
रत्नदीप-सम ज्ञान, षट्रस व्यंजन-से सुखद।
सुरभित धूप-समान, सरस सु-फलसम सिद्ध पद॥

प्रथम खण्ड :

भाग-1 : जिनवर स्तवन

प्रभाती-1

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिन गुण गावो रे।। टेक।।
निशि तो नशाय गई, भानु को उद्योत भयो।
ध्यान को लगावो प्यारे, नींद को भगावो रे।। उठो. ।। 1।।
भव-वन चौरासी बीच, भ्रमतो फिरत नीच।
मोह जाल फंद फस्यो, जन्म-मृत्यु पावो रे।। उठो. ।। 2।।
आरज पृथ्वी में आय, उत्तम नर जन्म पाय।
श्रावक कुल को लहाय, मुक्ति क्यों न जावो रे?।। उठो. ।।3।।
विषयनि राचि-राचि, बहु विधि पाप साँचि।
नरकनि जाय क्यों, अनेक दु:ख पावो रे।। उठो. ।। 4।।
पर को मिलाप त्यागि, आतम के काज लागि।
सुविधि बतावैं गुरु, ज्ञान क्यों न लावो रे?।। उठो. ।। 5।।

प्रभाती-2

उठ भोर भयो टुक जाग सही, भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।
अब नींद अविद्या त्याग सही,भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।। टेक ।।
जग जाग उठा, तू सोता है,अनमोल समय क्यों खोता है?
तू काहे प्रमादी होता है? भज वीर प्रभु भज वीर प्रभु ।। उठ. ।। 1।।
यह समय नहीं है सोने का,है वक्त पाप-मल धोने का।
अब सावधान थिर होने का,भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।। उठ. ।।2।।
तू कौन कहाँ से आया है, अब गमन कहाँ मन भाया है?
टुक सोच ये अवसर आया है, भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।। उठ. ।।3।।

ओ चेतन चतुर हिसाब लगा, क्या खाया-खरचा लाभ हुआ?
निज ज्ञान जमा तू सम्हाल जिया, भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।। उठ. ।।4।।
गति चार चौरासी लाख रुला, ये कठिन-कठिन 'शिवराम' मिला।
अब भूल कुमार्ग विषै मत जा भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु।। उठ. ।।5।।

प्रभाती-3

भोर भयो सब भविजन मिलकर, जिनवर पूजन आवो।
अशुभ मिटाओ पुण्य बढ़ावो, नैनन नींद गमावो।। टेक।।
तन को धोय धारि उजरे पट, शुद्ध जलादिक लावो।
वीतराग छवि हरखि-निरखिकै, आगमोक्त गुण गावो।। 1।।
शास्तर सुनो भनो जिनवाणी, तप संजम उपजावो।
धरि सरधान देव-गुरु-आगम, सात तत्त्व रुचि लावो।। 2।।
दुखितजनों पर दया ल्याय उर, दान चार विधि देवो।
राग-रोष तजि भजि जिनपद को, 'बुधजन' शिवपद पावो।।3।।

मंगल आरति आतमराम

मंगल आरति (पूजन) आतमराम, तन मंदिर मन उत्तम ठान।
समरस जल-चन्दन आनन्द, तन्दुल तत्त्व स्वरूप अमन्द।। 1।।
समयसार फूलन की माल, अनुभव सुख नैवज भर थाल।
दीपक ज्ञान-ध्यान की धूप, निर्मल भाव महाफल रूप।। 2।।
सुगुण भविकजन निजरस लीन, निहचै नवधा भक्ति प्रवीन।
धुनि उत्साह सु अनहद गान, परम समाधि निरत परधान।। 3।।
बाहिज आतम भाव बहावे, अन्तर ह्वै परमातम ध्यावे।
साहब-सेवक भेद मिटाय, निहचै एक मेक हो जाय।। 4।।

परमात्म आरती

ओम् जय-जय अविकारी, स्वामी जय-जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्व विहारी।। टेक।।
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेश हारी।। ओम्.।। 1।।
हे स्वभावमय जिन तुम चीना, भव संतति टारी।
तुम भूलत भव भटकत, सहत विपत भारी।। ओम्.।। 2।।
पर सम्बन्ध बन्ध दु:ख कारण, करत अहित भारी।
परम ब्रह्म का दर्शन चहुँगति दु:ख हारी।। ओम्.।। 3।।
ज्ञान मूर्ति हे सत्य सनातन मुनिमन संचारी।
निर्विकल्प शिवनायक शुचि गुण भण्डारी।। ओम्.।। 4।।
बसो बसो हे सहज ज्ञान घन सहज शान्ति चारी।
टलें-टलें सब पातक पर बल बलधारी।। ओम्.।। 5।।

मंगल पंचक

(हरीगीतिका)

गुणरत्नभूषा विगतदूषा: सौम्यभावनिशाकरा:
सद्बोध-भानुविभा-विभाषितदिक्चया विदुषांवरा:।
नि:सीमसौख्यसमूह मण्डितयोगखण्डितरतिवरा:
कुर्वन्तु मंगलमत्र ते श्री वीरनाथ जिनेश्वरा:।। 1।।
सद्ध्यानतीक्ष्ण-कृपाणधारा निहतकर्मकदम्बका,
देवेन्द्रवृन्दनरेन्द्रवन्द्या: प्राप्तसुखनिकुरम्बका:।
योगीन्द्रयोगनिरूपणीया: प्राप्तबोधकलापका:
कुर्वन्तु मंगलमत्र ते सिद्धा: सदा सुखदायका।। 2।।

आचारपंचकचरणचारणचुंचवः समताधराः
नानातपोभरहेतिहापितकर्मकाः सुखिताकराः।
गुप्तित्रयीपरिशीलनादिविभूषिता वदतांवराः
कुर्वन्तु मंगलमत्र ते श्री सूरयोऽर्जित शंभराः।। 3।।
द्रव्यार्थ-भेद-विभिन्न-श्रुतभरपूर्णतत्त्वनिभालिनो,
दुर्योगयोगनिरोधदक्षाः सकलवरगुणशालिनः।
कर्तव्यदेशनतत्परा विज्ञानगौरवशालिनः
कुर्वन्तु मंगलमत्र ते गुरुदेवदीधितिमालिनः।। 4।।
संयमसमित्यावश्यकापरिहाणि-गुप्ति-विभूषिताः
पंचाक्षदान्तिसमुद्यताः समतासुधापरिभूषिताः।
भूपृष्ठविष्टरसायिनो विविधर्द्धिवृन्दविभूषिता
कुर्वन्तु मंगलमत्र ते मुनयःसदा शमभूषिताः।। 5।।

मङ्गलाष्टकम्

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।1।।
श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा,
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।2।।
सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति-श्री-नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।

धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।3।।
नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतु-र्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।4।।
ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्ग-महानिमित्तकुशला येऽष्टैर्विधाश्चारणाः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।5।।
कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।6।।
ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।7।।
यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा सम्भावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्।।8।।
इत्थं श्री जिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।। 9।।

मंगलाष्टक (भाषा)

ऋद्धि-सिद्ध धारक परमेष्ठी, मंगलमयी महासुखधाम।
योगीश्वर जिनको ध्याते हैं, ध्यान मग्न होकर निशियाम।।
सुर-सुरेन्द्र-इन्द्रादि भक्ति युत, जिनको नमते नित अभिराम।
ऐसे पूज्य पंच-परमेश्वर हो मंगलमय करूँ प्रणाम।। 1।।
सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित ये, पावन रत्नत्रय अविकार।
सूक्ति सुधा, जिनबिम्ब, जिनालय, शुभ्र लक्ष्मी का आकार।।
संकटहारी, सुख विस्तारी, श्री सम्पन्न महान उदार।
ऐसे मुक्ति नगर के वासी, मंगलमय शिव सुख दातार।।2।।
श्री नाभेय आदि चौबीस तीर्थंकर त्रिलोक में ज्ञात।
भरत आदि जो द्वादश चक्री, इनमें गर्भित ज्ञान प्रभात।।
श्री नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्रादि जगत विख्यात।
ये शुभ मंगल करें निरन्तर, त्रेसठ महापुरुष दिन-रात।।3।।
जिसके शुभ प्रभाव से फणधर, बन जाता है मुक्ताहार।
क्रूर खंग[1] भी इसी धर्म से, पुष्प माल बनती साकार।।
विष बनता है दिव्य रसायन, नेही बनते, शत्रु महान।
ऐसा धर्म सुरेन्द्रोपासित, मंगलमय हो पुण्य प्रधान।। 4।।
उत्तम तप से ऋद्धि प्राप्त कर, की सर्वोषधि ऋद्धि प्रसन्न।
चारण आदि ऋद्धियाँ धारी, पञ्चज्ञान द्वारा सम्पन्न।।
सप्त ऋद्धियों के अधिपति, अष्टांग निमित्तों से आसन्न।
ऐसे भव जल सेतु मुनीश्वर, सदा करें मंगल उत्पन्न।।5।।
ऊर्जयंत, सम्मेदशिखर, कैलाश शृंग, श्री पावापुर।
करे ऋषभ नेमीश वीर, की ये निर्वाण भूमि दुख चूर।।

1.तलवार

वासुपूज्य की चम्पानगरी, करे प्राणियों के दुख दूर।
पुण्य भूमियाँ रहें अमर ये, होवें मंगलमय भरपूर।। 6।।
व्यंतरवासी भवन ज्योतिषी, वैमानिक निवास सुख खान।
जम्बुवृक्ष गिरराज कुलाचल, चैत्य शाल्मलि विटप महान।।
कुण्डल नगर दीप नंदीश्वर, गिरि विजयार्द्ध आदि छविमान।
सकल मानुषोत्तर के पर्वत, मंदिर मंगल करे महान।। 7।।
गर्भ-जन्म अभिषेक महोत्सव तीर्थंकर का क्रम निर्वाण।
परि निष्क्रमण महोत्सव, केवलज्ञान महोत्सव अरु निर्वाण।।
ऐसे पुण्य महोत्सव फूंके, मम परिणति में जीवन प्राण।
ये महिमेष पंच कल्याणक, करें सदा मंगल कल्याण।।8।।
महिमामयी पंच कल्याणक, मंगल-अष्टक परम विशाल।
पढ़ते, सुनते, जपते हैं जो भक्ति सहित यह मंगल माल।।
अर्थ-काम-पुरुषार्थ युक्त, सुख सम्पतिधारी उन्नत भाल।
सहज मोक्ष लक्ष्मी पाकर के, बनते हैं समृद्धि-निहाल।।9।।

दर्शन पाठ (संस्कृत)

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्।। 1।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्।। 2।।
वीतराग-मुखं दृष्ट्वा पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति।। 3।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थप्रकाशनम्।। 4।।

दर्शनं जिन-चन्द्रस्य सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाहविनाशाय वर्धनं सुख-वारिधेः।। 5।।
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणाश्रयाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।6।।
चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।। 7।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य-भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर।। 8।।
नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।। 9।।
जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति र्दिने-दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।।10।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः।। 11।।
जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात्।। 12।।

अद्याभवत्सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्।। 13।।

दर्शन पाठ (हिन्दी)

दर्शन श्री देवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है।। 1।।
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वन्दन से।
अधिक देर अघ नहीं रहैं, जल छिद्र सहित कर में जैसे।।2।।
वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग-सम शांत प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हो शांत विदा।।3।।
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधि-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश।।4।।
दर्शन श्री जिनेन्द्र-चन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता।।5।।
सकल तत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर।।6।।
चिदानन्दमय एकरूप, वन्दन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को।।7।।
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्ही शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी।। 8।।
रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता।। 9।।
दिन-दिन पाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति।।10।।
नहीं चाहता जैनधर्म के बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैनधर्म से सहित, दरिद्री भी होना।।11।।
जन्म-जन्म के किये पाप औ बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ जरा रोग, सब कट जाते जिन दर्शन से।।12।।
आज 'युगल' दृग हुए सफल, तुम चरण कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक, आज लगता भव सागर चुल्लूभर।।13।।

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सूर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ।। 1।।
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदितैं पातक नसैं।।
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चम्पापुर पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी।। 2।।
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासों भय हरों।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव नहीं कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा।। 3।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों।। 4।।
मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवश लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।। 5।।
भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।

प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना।।6।।
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करूँ।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, सर्व आरंभ परिहरूँ ।।
इस दुखद पंचमकाल माहीं, कुल श्रावक मैं लह्यौ।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ।।7।।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना नाथ जी।।
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरण, सुभक्ति चरनन दीजिये।।8।।

जिनेन्द्र स्तवन

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, तुमको मैं शीस झुकाता हूँ।
अज्ञान तिमिर के हरण हेतु, जिन चरण-शरण में आता हूँ।।1।।
तुमने अनंत सुख प्राप्त किया, रागादि विकार हटाया है।
ज्ञायक स्वभाव में तन्मय हो, अनुपम निज वैभव पाया है।।2।।
मैं उस वैभव को भूला था, निज-पर का कुछ भी ज्ञान न था।
पर में सुख मान भटकता था, निज आतम सुख का भान न था।।3।।
निज-पर को कर्त्ता मान जान, प्रतिपल अनुकूल बनाने में।
चिरकाल से व्यस्त रहा फिर भी, असमर्थ रहा अपनाने में।।4।।
शुभ राग को धर्म समझता था, जो चिद्विकार दु:खकारी है।
अज्ञात था ज्ञायक भाव मुझे, जो सहज सिद्ध सुखकारी है।।5।।
मन-वच-काया की परिणति को, निज परिणति मैंने मानी थी।
ये भव के भाव मिटा न सका तो, भव की कौन कहानी थी?।।6।।

अब शान्ति छवि लख जिनवर की, मैंने यह निश्चित जाना है।
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, जो भूला था पहिचाना है।। 7।।
जिसने प्रभु को पहिचान लिया, उसने अपने को जान लिया।
निज आतम में परमात्म दशा का, शान्ति सुधारस पान किया।।8।।
आत्म 'हितैषी' को मिले, जिनसे आतमज्ञान।
ऐसे जिनवर देव को, शत् शत् करूँ प्रणाम।।9।।

दर्शन स्तुति

भटक-भटक भव की गलियों में, दुख ही दुख मैंने पाया।
पा करके कुछ बाह्य वस्तुयें, निकट नहीं तेरे आया।। 1।।
कोटि-कोटि सत्कृत्यों से ही, आ पहुँचा जिनमन्दिर में।
देख-देख प्रतिमा प्रभु तेरी, हर्ष उमड़ता अन्दर में।। 2।।
आँखों का मिल गया मुझे फल, शान्तमूर्ति दर्शन करके।
रहूँ आपके चरणों में ही, काम-काज तज कर घर के।।3।।
दीर्घ-भ्रमण की लम्बी-चौड़ी, मेरी दुखद कहानी है।
त्रिभुवन नाथ जिनेश्वर तुमसे, नहीं कभी वह छानी है।।4।।
यों तो मैं अनादि से दुखिया, पर अब दुख विसराया है।
मानव भव में मिली तुम्हारे, पद-पंकज की छाया है।।5।।
तेरे दर्शन के प्रभाव से, मोह-ग्रन्थि सारी छूटी।
और मानसिक ममता साँकल, क्षण भर में मेरी टूटी।।6।।
वीतराग प्रभु के दर्शन से, पर-परिणति सत्वर भागी।
सम्प्रति कोई अहो अपरिमित, परमशान्ति मन में जागी।।7।।
तुच्छ इन्द्र-चक्री वैभव को, प्रभु तुम दर्शन के आगे।
अस्थिर जल बुद-बुद सम धन को, कौन मुमुक्षु अब माँगे?।।8।।

सफल उसी का है नर जीवन, जो तुमको अपनाता है।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, तू ही जग का त्राता है।। 9।।
दिव्य आपके स्वच्छ ज्ञान में, लोकालोक झलकता है।
निजस्वरूप में रहे लीन अति, तू न उसे अपनाता है।। 10।।
बिन आयुध ही देव आपने, महामोह क्षण में मारा।
त्रिभुवन विजयी कामदेव भी, नाथ आप से ही हारा।। 11।।
यद्यपि राग-द्वेष इस जग में, नहीं किसी से तुम करते।
निन्दक जन पाते दुख अतिशय, भव्य भक्ति द्वारा तिरते।। 12।।

दर्शन स्तुति

(छन्द-गीतिका)

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदी वरो।
दुर्बुद्धि चकवी विलख बिछुरी, निविड़ मिथ्यातम हरो।।
आनंद अंबुधि उमगि उछर्‌यो, अखिल आतप निरदले।
जिनवदन पूरनचंद निरखत,सकल मनवांछित फले।। 1।।
मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया।
संसार सागर नीर निवड्‌यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया।।
अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये।
दु:ख जर्‌यो दुर्गति वास निवड्‌यो, आज नव मंगल भये।। 2।।
मनहरन मूरति हेरि प्रभु की, कौन उपमा लाइये?
मम सकल तन के रोम हुलसे, हर्ष ओर न पाइये।।
कल्याण काल प्रतच्छ प्रभु को, लखैं जे सुरनर घने।
तिह समय की आनंद महिमा, कहत क्यों मुख सों बने?।। 3।।

भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही।
मन उठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानों निधि लही।।
अब होउ, भव-भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये।
कर जोर 'भूधरदास' विनवै, यही वर मोहि दीजिये।। 4।।

श्री जिन पूजन को हम आये

श्री जिन पूजन को हम आये,पूजत ही दुखदुन्द मिटाये।। टेक।।
विकलप गयो प्रगट भयो धीरज, अद्भुत सुख समता बरसाये।
आधि-व्याधि अब दीखत नाहीं,धरम कल्प तरु आँगन थाये।। 1।।
इत मैं इन्द्र चक्रवर्ती इत मैं, इत मैं फनिंद खरे सिर नाये।
मुनिजन वृंद करैं थुति हरषत,धनि हम जनमे पद परसाये।। 2।।
परमौदारिक में परमातम, ज्ञानमयी हमको दरसाये।
ऐसे ही हम हैं हम जानैं, 'बुधजन' गुन मुख जात न गाये।। 3।।

प्रभु पै यह वरदान सु पाऊँ

प्रभु पै यह वरदान सु पाऊँ, फिर जग कीच बीच नहिं आऊँ।। टेक।।
जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक, दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊँ।
आनंद जनक कनक भाजन धरि,अर्घ-अनर्घ बनाय चढ़ाऊँ।। 1।।
आगम के अभ्यास माँहि पुनि, चित एकाग्र सदैव लगाऊँ।
संतन की संगति तजि के मैं, अंत कहूँ इक छिन नहिं जाऊँ।। 2।।
दोष-वाद में मौन रहूँ फिर, पुण्य पुरुष गुन निशदिन गाऊँ।
मिष्ट स्पष्ट सबहि सों भाषों,वीतराग निज भाव बढ़ाऊँ।। 3।।
बाहिज दृष्टि ऐंच के अन्दर, परमानन्द स्वरूप लखाऊँ।
'भागचन्द' शिव प्राप्त न जौलों, तौलों तुम चरणाम्बुज ध्याऊँ।। 4।।

वीतराग जिन महिमा थारी

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवन में?।। टेक।।
तुमरे अनंत चतुष्टय प्रगट्यो, नि:शेषावरनच्छय छिन में।
मेघ पटल विघटनतें प्रगटत, जिमि मार्तण्ड प्रकाश गगन में।। 1।।
अप्रमेय ज्ञेयन के ज्ञायक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयन में।
देखत नयन अनेक रूप जिमि, मिलत नहीं पुनि निज विषयनि में।।2।।
निज उपयोग आपने स्वामी, गाल दिया निश्चल आपन में।
है असमर्थ बाह्य निकसन कों, लवन घुला जैसे जीवन में।। 3।।
तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनंत दु:खन में।
जैसो मुख देखो तैसो ह्वै, भासत जिम निर्मल दरपन में।। 4।।
तुम कषाय बिन परम शांत हो, तदपि दक्ष कर्मारि हनन में।
जैसे अति शीतल तुषार पुन, जार देत द्रुम भार गहन में।। 5।।
अब तुम रूप जथारथ पायो, अब इच्छा नहिं उन कुमतन में।
'भागचन्द्र' अमृत रस पीकर, फिर को चाहे विष निज मन में?।।6।।

जिनमंदिर दर्शन

बहु पुण्य उदय मम आयो, सुन्दर जिन-भवन लखायो।
भव्यों को सुख का कारण, करता भव ताप निवारण।। 1।।
जो समवशरण सम राजै, जिन सम जिन चैत्य विराजै।
जहाँ गंधकुटी सम वेदी, सिंहासन छत्र सफेदी।। 2।।
शशि द्युति से अधिक उजाले, जहाँ यक्ष चमर बहु ढोलें।
अति उन्नत शिखर बनी है, जिस पर शुभ्र ध्वजा लगी है।।3।।

फहरे दे शुभ सन्देशा, यहाँ दुःख का नहीं अन्देशा।
हे सुख इच्छुक! यहाँ आओ, दुःख कारण पाप भगाओ।।4।।
यहाँ खुद ही भाव बदलते, सब बहु विधि पुण्य सु करते।
सुन्दर स्तोत्र उचारें, ध्वनि मगन होंहि गुँजारें।। 5।।
कोई शुभ पूजन करिकै, कोई ध्यान प्रभु का धरिकै।
जग की सब सुधि बुधि खोते, निज सुख में मग्न सु होते।।6।।
जहाँ शास्त्र सभा है होती, जिससे मिथ्यामति भगती।
कोई लीन धर्म चर्चा में, देखत उठती शुभ लहरें।। 7।।
मधि मारबाड़ संसार, यह वृक्ष है छायादार।
भव वन में पथिक भटकते, अकुलाते धैर्य न धरते।। 8।।
उन सबको आश्रय दाता, जिनमंदिर जग में त्राता।
प्रभु हर्ष प्रसंग महा है, जिनमंदिर दर्श मिला है।। 9।।
सत् देव-शास्त्र-गुरु पाये, रोमांच काय में आये।
शुभभाव हृदय में जागा, अज्ञान प्रमाद सु भागा।। 10।।
अब मैं चाहूँ जगदीश, निज चैत्य बनाऊँ ईश।
परिणति करूँ मैं मंदिर, ध्रुव ज्ञान चैत्य उस अन्दर।। 11।।
अरु करूँ प्रतिष्ठा भारी, मेटूँ आरति संसारी।
प्रभु भेद भक्ति को त्यागूँ अरु निज अभेद में पागूँ।। 12।।

मुझे है स्वामी उस बल की

मुझे है स्वामी, उस बल की दरकार।
जिस बल को पाकर के स्वामी आप हुये भव पार।। टेक।।
अड़ी खड़ी हों अमिट अड़चनें, आड़ी अटल अपार।
तो भी कभी निराश निगोड़ी, फटक न पावे द्वार।।1।।
सारा ही संसार करे यदि मुझसे दुर्व्यवहार।
हटे न तो भी सत्य मार्ग से, श्रद्धा किसी प्रकार।।2।।
धन वैभव की जिस आँधी से अस्थिर सब संसार।
उससे भी न जरा डिग पाऊँ, मन बन जाये पहार।।3।।
असफलता की चोटों से नहिं मन में पड़े दरार।
अधिक-अधिक उत्साहित होऊँ, मानूँ कभी न हार।।4।।
दुख दरिद्रता रोगादिक से, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरूद्यम हो नहिं, बैठूँ जगदाधार।।5।।
देवांगना खड़ी हों सन्मुख, करती अंग विकार।
सेठ सुदर्शन सा मैं होऊँ, लगे नहीं अतिचार।।6।।
जिसके आगे तन बल-धन बल, तृणवत् तुच्छ असार।
पाऊँ प्रभु आत्म बल ऐसा, महामहिम सुखकार।।7।।

जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमही को माना है।
तुमरे ही शासन का स्वामी, हमको शरना सरधाना है॥
जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है।
यह सुजस तुम्हारे सांचे का, सब गावत वेद पुराना है॥

चौबीस तीर्थंकर विनती

(दोहा)

पूजों पद अरहंत के, सिद्धन शीस नवाय।
उवज्झाय आचार्य के, साधु चरण चित लाय।।

(तर्ज- अहो जगत गुरुदेव.....)

अहो आदि जिन देव, पूजों चरण तिहारे,
अजितनाथ जू की सेव, मन-वच-तन उर धारे।
संभव नाथ जिनेन्द्र, मैं तुम्हरे गुण गाऊँ,
अभिनंदन महाराज, चरनन शीस नवाऊँ।।
सुमतिनाथ भगवान सुमति करो मति मेरी,
पद्मप्रभु जिनराय, आऊँ शरणा तेरी।
नाथ सुपारस देव, निर्मल बुद्धि के धारी,
चंद्रप्रभु बड़देव, चंद्रपुरी अवतारी।।
पुष्पदंत महाराज, सब राजन के राजा,
शीतलनाथ जिनेन्द्र, तारण-तरण जिहाजा।
श्रेयांसनाथ भगवान, गुण की पार न पावें,
वासुपूज्य जिनराय, भवदधिपार लगावें।।
विमलनाथ जिनदेव, विमल बुद्धि मोहि दीजे,
अनंतनाथ भगवान, सेवक अपनों कीजे।
धर्मनाथ बड़देव, धर्म बुद्धि के धारी,
शांतिनाथ जिनराय, तीनई पदवी धारी।।
कुंथुनाथ महाराज, कुंथ जिया व्रत पालें,
अरहनाथ भगवान, देखत सब दुख टालें।

मल्लिनाथ जिनदेव, काम मल्ल दल भूरे,
मुनिसुव्रत महाराज, गुण अनंतमय पूरे।।
नमिनाथ बड़देव, महिमा अगम अपारी,
नेमिनाथ जू की सेव, तप कीन्हा तज नारी।
पारसनाथ जिनेन्द्र, नाग युगल तुम कीन्हें,
महावीर जिनराय, सुरपति अचरज कीन्हें।।
चौबीसों भगवान, सबही नामी नामी,
सबही हैं गुणवंत, जीते जोधा कामी।
कल्याणक ये पाँच सब ही के सम जानो,
दर्शन-ज्ञान अनंत सुख अनंत कर मानों।।
नमत भए सुर ईश, अरु गणधर से ज्ञानी,
हम क्या पावें पार, 'बुध' थोड़ी उर आनी।
चौबीसों जिनदेव, गुण अनंत के धारी,
करों विविध पद सेव, मेटो व्यथा हमारी।।
तुम सम जग में कौन, जाकी शरण गहीजे,
यासों माँगों नाथ, भव-भव दर्शन दीजे।

(दोहा)

हे जिनवाणी गुण भरी, सदा करो कल्याण।
चौबीसों भगवान तुम्हें, बारम्बार प्रणाम।।

प्रभु को हृदय बसायें हम,
तत्त्व भावना भावें हम।
जग की बातों में नहीं आयें,
अपना लक्ष्य भूल नहीं जायें॥

भाग-2: श्री जिनेन्द्र पूजन व अर्घ्यावलि

जलाभिषेक पाठ

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान।।

(अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी।।
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है।।
पै निज प्रयोजनसिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है।। 1।।

ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में।।
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठि सुरनयुत वंदत भयौ।
तुम पुण्य को प्रेर्‌यौ हरि ह्वै मुदित धनपति सौं कह्यो।।
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ।। 2।।

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति।।
वीतराग छवि देखि शब्द जय-जय कह्यो।
देय प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ।।
अति भक्ति भीनो नम्रचित ह्वै समवशरण रच्यो सही।
ताकी अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोऊ नहीं।।
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं।। 3।।
सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्भुत दिपै।
ता पर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।।
तीन छत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी।।
प्रभु तरनतारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि, भविजन सुख लिया।।
मुनि आदि द्वादश सभा के, भवि जीव मस्तक नायकैं।
बहुभाँति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं।। 4।।
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिन्ता भय गद दूषण नहीं।।
जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसैं।
राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसैं।।
श्रम बिना श्रम जलरहित पावन, अमल ज्योति स्वरूप जी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूप जी।।

ऐसे प्रभु की शांतमुद्रा को नह्वन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं, हम भानु ढिंग दीपक धरैं।।5।।

तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यौ।
महामलिन तन में वसु विधिवश दुख सह्यौ।।

बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही, भरहु वांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, दोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तैं, उद्धार शिववासा करौ।। 6।।

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये।।
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय-प्रमाण तैं जानि महा साता लही।।

पापाचरण तजि नह्वन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानो नह्वन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबन्ध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभ बन्धतैं ह्वै शर्म सबविधि तासतैं।।7।।

पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं।
पावन पाणि भये तुम चरननि परस तैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रसना मानी, तुम गुण गान तैं।।

पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी।।
धनि धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीर सागर आदि जल मणि-कुम्भभरी भक्ति करी।।8।।

विघन-सघन-वन-दाहन दहन प्रचण्ड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मार्तण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो।।

आनन्दकारण दुख निवारण, परममंगलमय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुन्यो नहीं।।
चिंतामणि पारस कलपतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही।।9।।

तुम भवदधि तैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार।।10।।

(निम्न श्लोक बोलकर गन्धोदक ग्रहण करें)

निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनम्।
जिनचरणोदकं वंदे कर्माष्टक-विनाशनम्।।

यद्यपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना है।
चिनमूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है॥
तद्यपि भक्तन की पीर हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है।
यह शक्ति अचिंत तुम्हारी का, क्या पावे पार सयाना है॥

श्री प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता के निमित्त जिनबिम्ब।
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज प्रतिबिम्ब।।
पंच प्रभु के चरण में, वंदन करूँ त्रिकाल।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल।।

अथ पौर्वाह्निक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तवन-वन्दनासमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे।।
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ ।
जिन में निज का, निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ।।
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का।
यह भाव सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का।।

ॐ ह्रीं प्रक्षाल-प्रतिज्ञायै पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(रोला)

अन्तरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित।
जिनकी मंगल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित।।
श्री जिनवर सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति।
हे जिन! श्री लिख पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति।।

(थाली की चौकी पर श्री लिखें)

(दोहा)

अन्तर्मुख मुद्रा सहित शोभित श्री जिनराज।
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।

(प्रक्षाल हेतु थाली स्थापित करें)

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन।
भेद-ज्ञान जल से क्षालित भावों का आसन।।
स्वागत है जिनराज तुम्हारा सिंहासन पर।
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथभगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया।
दृग-सुख-वीरज-ज्ञान-स्वरूपी आतम पाया।।
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हं कलशस्थापनं करोमि।

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया।।
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित।।

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(पीठ स्थित जिन प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित हे जिनवर।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर।।

कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ-क्षालक का।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का।।
भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता।
है किसका अभिषेक भ्रान्त चित् खाता गोता।।
नाथ! भक्तिवश जिनबिम्बों का करूँ न्हवन मैं।
आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं।।

(दोहा)

क्षीरोदधि सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल।
श्री जिनवर की भक्ति से, जानूँ निज पर चाल।।
तीर्थंकर का नह्वन शुभ, सुरपति करें महान।
पंचमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान।।
करता हूँ शुभ भाव से, प्रतिमा का अभिषेक।
बचूँ शुभाशुभ भाव से, यही कामना एक।।

ॐ ह्रीं श्री श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थंकर परमदेव माद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.... नाम्निनगरे मासानामुत्तमे.... मासे..... पक्षे..... दिने मुन्यार्यिका-श्रावक-श्राविकाणां सकलकर्म-क्षयार्थं पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि।

जल फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज।
हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज।।

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री जिनवर का धवल यश, त्रिभुवन में है व्याप्त।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृत-सम जल कण अति शोभित।
आत्म-गगन में गुण अनन्त तारे भवि मोहित।।
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन।
शुद्ध वस्त्र से जल कण का करता परिमार्जन।।

(प्रतिमा जी को शुद्ध वस्त्र से पोंछें)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्यकुमार।।

(जिन-प्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें तथा निम्न छन्द बोलकर अर्घ्य चढ़ायें)

जल गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज।
पूर्ण अर्घ्य अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुणखान।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान।।

(मस्तक पर गन्धोदक लगावें।)

प्रक्षाल पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को, भाव से वन्दन करूँ।
मन-वचन-काय त्रियोग पूर्वक, शीश चरणों में धरूँ।। 1।।
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी, की सुछवि उर में धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग, महान की जय उच्चरूँ।। 2।।
उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन, कर हृदय आनन्द भरूँ।
अतिविनय पूर्वक नमन करके, सफल यह नरभव करूँ।। 3।।
मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के, पूज्य मस्तक पर करूँ।
जल धार देकर हर्ष से, अभिषेक प्रभु जी का करूँ।। 4।।
मैं न्हवन प्रभु का भाव से, कर सकल भवपातक हरूँ।
प्रभु चरण कमल पखारकर, सम्यक्त्व की सम्पति वरूँ।। 5।।

विनय पाठ-1

(दोहा)

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढैं जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ।। 1।।
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सरताज।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज।। 2।।
तिहुँ जग की पीड़ा-हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव-सुख के करतार।। 3।।
हरता अघ अँधियार के, करता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निजगुण रास।। 4।।
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ-जग भूप।। 5।।
मैं वंदौं जिनदेव को, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछू उपाव।। 6।।
भविजन कों भव-कूप तें, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार।। 7।।
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव-गैल।।8।।
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय।। 9।।
चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप।। 10।।
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।। 11।।
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव।। 12।।
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।। 13।।

राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यौ अबै, मेटो राग कुटेव।।14।।
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अजान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।। 15।।
तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति, नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।। 16।।
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव-सिन्धु में, खेव लगाओ पार।। 17।।
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजै आप समान।। 18।।
तुम्हरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूब्यो जात हौं, नेक निहार निकार।।19।।
जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटै उर-झार।
मेरी तो तोसौं बनी, यातैं करौं पुकार।। 20।।
वन्दौं पाँचों परमगुरु सुर-गुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश।।21।।
चौबीसौं जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यौ पाठ सुखदाय।।22।।

(मंगल पाठ)

(दोहा)

मंगल मूरति परमपद, पंच धरों नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान।। 1।।
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंतदेव।
मंगलकारी सिद्धपद, सो वन्दौं स्वयमेव।। 2।।
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवज्झाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दौं मन-वच-काय।। 3।।
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करण, हरो असाता कर्म।। 4।।
या विधि मंगल करनतैं, जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह, भव सागर दृढ़ पोत।। 5।।

विनय पाठ-2

हे नाथ! मैं मिथ्यात्व वश, संसार में फिरता रहा।
इक बोधि लाभ बिना अनन्तों, व्यर्थ भव धरता रहा।। 1।।
देव पूजा ना करी नहीं, पात्र दान कभी दिया।
जिन-बैन भी ना सुने कभी, चारित्र भी नहिं रख सका।। 2।।
है निर्विकल्प स्वभाव सिद्ध, अद्वैत केवल आत्मा।
भूलकर उसको सदा, मैं ठोकरें खाता रहा।। 3।।
अस्थि मज्जा चाम से निर्मित अथिर संसार में।
रमता रहा, भ्रमता रहा, नहिं शरण कोई पा सका।। 4।।
आज मेरा पुण्य जागा, आपके दर्शन हुए।
पाई शरण आलोक सा, सहसा हृदय पर छा गया।। 5।।
नाचने-गाने लगा, यह नाद-सा आने लगा।
अन्य शरण कुछ है नहीं, शरण एक परमात्मा।। 6।।
काललब्धि आज जागी, शांति-पथ मुझको मिला।
आज निश्चय हो गया, पाऊँगा जीवन की कला।। 7।।
आज इस जग कीट को भी, जिनेन्द्र पद मिल जायेगा।
आज इस विक्षिप्त-सर में भी, कमल खिल जायेगा।। 8।।

क्रोध मान मद लोभ मोह वश, होते यहाँ निरंतर पाप।
एक दूसरे का घातक बन, भोग रहे सब ही संताप॥
तुमने उत्तम क्षमा भाव का, फैलाया सिखलाया ज्ञान।
जग को प्रेम पंथ दिखलाया, किया आपने कार्य महान॥

पूजा पीठिका (संस्कृत)

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु!!
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्व-पापैः प्रमुच्यते।। 1।।
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।2।।
अपराजित-मंत्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः।। 3।।
एसो पंच-णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होई मंगलं।।4।।
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्।। 5।।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।। 6।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।।7।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

उदक–चन्दन–तन्दुलपुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूप–फलार्घ्यकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले जिन–गृहे जिननाथमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

उदक–चन्दन–तन्दुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले जिन–गृहे जिनकल्याणमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी अर्घ्य

उदक–चन्दन–तन्दुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले जिन–गृहे परमेष्ठिमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी अर्घ्य

उदक–चन्दन–तन्दुल–पुष्पकैश्चरु–सुदीप–सुधूपफलार्घ्यकैः।
धवल–मंगल–गान–रवाकुले जिन–गृहे जिनसूत्रमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्र–मभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद– नायकमनन्त– चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ– सुदृशां सुकृतैकहेतु–
र्जैनेन्द्र–यज्ञ–विधिरेष मयाऽभ्यधायि।।1।।

स्वस्ति त्रिलोक–गुरवे जिन–पुङ्गवाय,
स्वस्ति स्वभाव–महिमोदय–सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश–सहजोर्जित–दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न–ललिताद्भुत–वैभवाय।।2।।

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकवितैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय।।3।।
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।4।।
अर्हन् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।।5।।

ॐ ह्रीं यज्ञविधिप्रतिज्ञायै जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल पाठ

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।।
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान्सः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(प्रत्येक श्लोक के बाद पुष्प क्षेपण करें)

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 1।।
कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 2।।
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 3।।
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।4।।
जङ्घानल-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु-प्रसून-बीजाङ्कुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैर-विहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।5।।
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्निशक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 6।।
सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 7।।
दीप्तं च तप्तं च महत्तथोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणंचरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 8।।
आमर्ष - सर्वौषधयस्तथाशीर्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखेल-विड्-जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः।। 9।।
क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।। 10।।

(इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानं, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-1

(छन्द-अडिल्ल)

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निर्ग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू।।
तीन रतन जगमाहिं सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये।।

(दोहा)

पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(हरिगीतिका एवं दोहा)

सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा।।
वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे।।
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।

चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम पावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही।।
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य:अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं।।
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान हैं।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान हैं।।
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाशज्योति प्रभावली।।
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
स्व-पर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह-सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हँसै।।
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव ज्वलन माहिं नहिं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ।।

इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
वसुविधि अर्घ्य संजोय के, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।। 1।।

(छंद-पद्धरि)

चउ कर्मसु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छ्यालिस गुणगंभीर।। 2।।
शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्त देव, वन्दौं मन-वच-तन कर सुसेव।। 3।।
जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत।। 4।।
सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय।। 5।।
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध।
संसार देह वैराग धार, निरवांछि तपै शिव-पद निहार।। 6।।
गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय।। 7।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै।। 8।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-2

केवल-रवि किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अंतर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम-आगम, गुरु को, शत-शत वंदन, शत-शत वंदन।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

इन्द्रिय के भोग मधुर-विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्या-मल धोने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें, प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अंतर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।

चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ, जो अन्तर का कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छा सागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अंधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।
अतएव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती है जड़ की।।
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम-गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।

अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।1।।

(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर हैं, क्षण-भंगुर पल में मुरझायें।।2।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?।।3।।
संसार महा दु:ख सागर के, प्रभु दु:खमय सुख-आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनि प्रासादों में।।4।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।5।।
मेरे न हुए ये, मैं इन से, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ।।6।।
जिसके शृंगारों में मेरा, यह मँहगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़-काया से, इस चेतन का कैसा नाता?।।7।।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।8।।

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।। 9।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।। 10।।
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या।।11।।
जागे मम-दुर्लभ बोधि प्रभु! दुर्नय-तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे।। 12।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।। 13।।

(देव-स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।। 14।।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा-ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला।। 15।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।16।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक मोती सारे।। 17।।

(शास्त्र-स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।। 18।।

(गुरु-स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है।। 19।।

जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।।20।।
हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।।21।।
करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।22।।
अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ।।23।।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।।24।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन-3

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमों जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृग तृष्णा में भटका।
जल समझ विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्य दृष्टि तेरी प्रभुवर, समता रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इस को लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार ताप से तप्त हृदय, संताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अब तक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहिचाना।
'मैं जड़ का हूँ' 'जड़ मेरा है' यह, सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अब तक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुमको पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन-रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गमाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प-बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटाना चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन-रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम-भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहिले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद-ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-कर्म कमाऊँ सुख होगा, अब तक मैंने यह माना था।
पाप-कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझकर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृत फल जाना, विषयों में निश-दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त-त्रस्त-अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़ फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहूमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अब तक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।

प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।
मैं समझ न पाया था अब तक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अब तक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अब तक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हमको जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु-सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रगट हो रहा अन्तर्मन ।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी ध्यानी समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।

चलते-फिरते सिद्धों से गुरु, चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर-वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदौ धरि ध्यान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री समुच्चय पूजन

(श्री देव-शास्त्र-गुरु, विद्यमान बीस तीर्थंकर एवं श्री सिद्ध पूजन)

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्करानन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

अनादिकाल से जग में स्वामिन् जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक्, रत्नत्रय निधि को नहिं पहचाना।।
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है।।
चन्दन-सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद बिन फिरा जगत की, लख चौरासी योनि में।
अष्टकर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।।
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से विंध करके, चहुँगति दुख उपजाया है।।
स्थिरता निज में पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शांत हुई।
आतमरस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई।।
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निजगुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अंधियारा।।
यह दीप समर्पित करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु- विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर- अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग-द्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु- विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर- अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम, श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया।।
अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
ये अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।

(छन्द-भुजंगप्रयात)

नसे घातिया कर्म जु अर्हन्त देवा,
करें सुर-असुर-नर मुनि नित्य सेवा।
दरश-ज्ञान-सुख-बल-अनन्त के स्वामी,
छियालीस गुण युत महा-ईश नामी।।
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी,
महा-मोह विध्वंसिनी मोक्ष दानी।
अनेकांतमय द्वादशांगी बखानी,
नमो लोक माता श्री जैनवाणी।।
विरागी अचारज उवज्झाय साधु,
दरश ज्ञान भण्डार समता अराधूँ।
नगन वेशधारी सु एका विहारी,
निजानन्द मण्डित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें,
विहरमान वंदूँ सभी पाप भाजें।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी,
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु-विद्यमानविंशतितीर्थङ्कर-अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति. स्वाहा।

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच परमेष्ठी पूजन

(वीरछन्द)

अर्हन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन।।
मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन।।
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्धरूप का हो दर्शन।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ।।
मैं जन्म-जरा-मृत, नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार-ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दु:ख पाए हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं।।
शीतल चंदन हैं भेंट तुम्हें, संसार-ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दु:खमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भँवरो में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही।।

तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया।।
मैं कामभाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ,चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ।।
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु , भव दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ , निर्जरा सुरभि महके पल-पल।।
मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु , भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज-आत्मतत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का।।

उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महा फल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु , भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु , भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-पद्धरि)

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यानलीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अर्हन्त देव को नमस्कार।। 1।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार।। 2।।
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार।। 3।।
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार।। 4।।
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार।। 5।।
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरणदर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन।। 6।।
निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ।
अब भेद ज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ।। 7।।

निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्व को ही जानूँ।।8।।
जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अर्हन्त महापद पाऊँगा।। 9।।
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव में आऊँगा।। 10।।
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।
तब तक चरणों में ध्यान रहे, जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन।। 11।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मन्त्र का ध्यान करूँ।।12।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

अरे जिया कासों नेह करे?॥ टेक॥
यह संसार शरीर भोग सब, नित मिल-मिल बिछुरें।
काया माया की है जननी, आधि-व्याधि भरे॥1॥
जाकी शरण गहे तू सो ही, तेरो अहित करे।
स्वारथ के सब साथी जग में, किम विश्वास धरे?॥2॥
जासों तेरी प्रीत उचित है, तासो रहत परे।
चोरन के संग में रुचि राखे, क्यों नहिं जेल परे?॥3॥
श्री जिनचन्द्र देशना ज्योति, जामन गेह जरे।
सो ही ज्ञानी शांत सुखी फिर, आवागमन हरे॥4॥

श्री परमात्म पूजन

है परम सौभाग्य प्रभुवर! आज यह अवसर मिला।
आप से अनुभूति निज, पाने हृदय शतदल खिला।।
ध्यान पथ से हृदय मन्दिर, में बुलाता हूँ तुम्हें।
आओ विराजो सन्निकट कृतकृत्य अब करिये हमें।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जन्म जरा-मृत्यु से पीड़ित, मैं अनादि से हूँ हे नाथ।
उन्हें जलांजलि अतः दे रहा, प्रभु मैं भाव भक्ति के साथ।।
मैंने शरण आपकी ली प्रभु, भव सागर से पार करो।
मुझे बचाओ पापों से, दुःख तापों से उद्धार करो।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रोग शोक गुस्सा भय चिन्ता, आदि जलाते हैं भगवन्।
भवाताप मेरा मिट जाये, क्षेपण करता हूँ चन्दन।। मैंने शरण.।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपद भूलकर पद-पद पर, आपद आई हे शिवगामी।
भेंट कर रहा अक्षत प्रभु मैं, अक्षय पद पाऊँ स्वामी।। मैंने शरण.।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम वासना दुस्सह दुष्कर, विषधर से भी विषकारी।
पुष्प उवारूँ मिटे वेदना, मेरी ये कल्मषहारी।। मैंने शरण.।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा ग्रसित प्राणी बन जाता, दीन हीन सा करुणामय।
मिटे विकार भयंकर ये, नैवेद्य चढ़ाता हूँ सविनय।।
मैंने शरण आपकी ली प्रभु, भव सागर से पार करो।
मुझे बचाओ पापों से, दु:ख तापों से उद्धार करो।।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ज्ञान शून्य मोहान्धकार में भटक रहा हूँ दुख भर-भर।
दीप उजालूँ मैं प्रकाश पाने को, मोक्षमार्ग हितकर।। मैंने शरण.।।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
दुष्ट कर्म ये मुझे नचाते, चतुर्गति में तरसाकर।
उन्हें होमने धूप दाहता, श्री चरणों में सुख सागर।। मैंने शरण.।।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
लौकिक फल अब नहीं चाहिए, सफल हो गया दर्शनकर।
केवल मुक्ति फल पाने को, फल अर्पण है क्षेमंकर।। मैंने शरण.।।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
उपादेय सब द्रव्य संजोकर, अर्घ उतार रहा प्रभुवर।
अनर्घ्य पद मैं भी पाऊँ, जो तुमने पाया है जिनवर।। मैंने शरण.।।
ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

हे प्रभुवर तेरी महान महिमा कैसे मैं गा सकता हूँ?
मन ही मन में सोच-सोच, आनन्द मगन हो जाता हूँ।।
पूजा तथा पूज्य का मैंने, तत्त्व नहीं अब तक जाना।
प्रभु के दर्शन से मैंने, अपना स्वरूप अब पहिचाना।।
कितने दु:ख भोगे मैंने, यह सोच-सोच घबराता हूँ।
नहीं मिले भवत्रास मुझे, मैं सविनय शीश झुकाता हूँ।।

प्रभुवर इस दुनियाँ का चक्कर, कर विचार जी घबड़ाता।
कैसे इससे निकल सकूँ, यह नहीं समझ में है आता।।
इतनी मुझ में शक्ति नहीं मैं घर परिकर का त्याग करूँ।
सर्दी गर्मी भूख-प्यास सह, वनवासी होकर विचरूँ।।
ज्ञान-विराग न पास कहीं, कैसे व्यवहार क्लेश तजूँ।
निज-पर का करने अनर्थ क्यों, ढोंग कपट का भेष सजूँ।।
थिरता इतनी परिणामों में, नहीं कि अपना ज्ञान करूँ।
है विराग इतना न पास, कि अपने स्वरूप का ध्यान धरूँ।।
हे प्रभु! मैं तो केवल लेकर, भक्ति भावना आया हूँ।
पूजा का तो किया बहाना, चरण-शरण में आया हूँ।।
निर्बल तन है विनय क्रिया, विधि पूर्वक नहिं पल पाती है।
तथा समल होने से शुद्धि, विधि भी नहीं सध पाती है।।
मैंने जो-जो द्रव्य आपके, सम्मुख देव चढ़ाये हैं।
नहीं यथा विधि शुद्ध, काल्पनिक प्रायः सभी बनाये हैं।।
आठ द्रव्य ही फिर क्यों यों तो अनेक भेंटें हैं प्रभुवर।
किन्तु न तुमको आवश्यकता रही एक की भी जिनवर।।
भक्ति भाव जोड़ने को यह, मैंने उपक्रम ठाना है।
पाप मैल धोने को मैंने, यह सब किया बहाना है।।
मैं घरवासी मोह की फांसी, पाप भार नित ढोता हूँ।
लोक लाज व कमजोरी से क्या-क्या नहीं कर पाता हूँ।।
मैं कुसंग में पड़कर फिर, उसके रंग में रंग जाता हूँ।
झूठ साँच का भेद भूलकर, मैं विमूढ़ बन जाता हूँ।।

कर्म उदय के विकट थपेड़े, अब तो नहीं सहे जाते।
बड़ी बेवशी अनेक झंझट, आकर मन को दहलाते।।
हे प्रभु! यही कामना, जब तक घर में मेरा वास रहे।
तेरे चरणों की भक्ति बस, सदा हमारे साथ रहे।।
नहीं चाहिए देव इन्द्र पद, अब भोगों की चाह नहीं।
नहीं चाहिए चक्रवर्ती पद, अब प्रभुता की दाह नहीं।।
नहीं चाहिए पुण्य कि जिससे, बढ़ता अब संसार रहे।
नहीं चाहिए पाप कि जिससे, दूर मुक्ति का द्वार रहे।।
यही चाह है तव भक्ति से, स्वपर भेद का ज्ञान करूँ।
यही चाह है निज शक्ति से, चिद् स्वरूप का ध्यान करूँ।।
बचूँ पाप से विषय कषायों में, न अधिक अब भरमाऊँ।
समरस पी समता धारूँ प्रभुवर मैं सच्चा सुख पाऊँ।।
देव प्रार्थना है मेरी, कल्याण मार्ग पर आ जाऊँ।
पर परिणति से बचकर मैं अब अपने पद को पा जाऊँ।।
हे प्रभु तेरे चरणों को मैं बार-बार सिर नाता हूँ।
जिनकी छाया में अपूर्व अपनेपन का सुख पाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री परमात्मने नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु रक्षा कीजिए, भव से हो उद्धार।
मुझ दुखियारे 'इन्दु' का कीजे बेड़ा पार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)



श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

श्री क्षेत्र विदेह सुथान, जिनवर बीस खरे।
सीमंधर आदि महान, तिन गुण हम सुमरे।।
तुम गुण पूजा से लाभ, पूजक मन विकसे।
परमाद क्रिया भय आश, भ्रम तम दूर नसे।।
तिष्ठो तिष्ठो जिनराज, सुगुण विकास करूँ।
मैं पाय भेद-विज्ञान, झट निर्वाण वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् सन्निधिकरणम्।

छना हुआ प्रासुक जल उत्तम, लाया हूँ मैं भर झारी,
राग-द्वेष की लगी बीमारी, जन्म-मरण फल दुःखकारी।
सुन्दर प्रासुक जल निर्मल नहिं, कर्म पङ्क धोने वाला,
समता सम जल निर्मल धारा, धोती कलिमल की माला।।
सीमंधर आदिक जिनवर की, करूँ भक्ति मंगलकारी,
जा प्रसाद से शिवपुर पाकर, सदा रहूँ ज्ञायक धारी।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमंधर-युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येतिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन शीतल परम सुगन्धित, अग्निदाह मेटन हारी,
भवाताप अन्तर हरने को, चन्दन नहिं शीतल कारी।
निष्कषाय प्रगटे स्वभाव वह, भाव-दाह हनने वारी,
परम समाधि थिरता पाकर, पाऊँगा पद अविकारी।। सीमंधर.।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल सम स्वच्छ सुगन्धित, लाया मैं अक्षत ढेरी,
गुण विकसित हों जिनवर मेरे, नष्ट बीज हों भव केरी।
कोटि-कोटि भव की ज्वाला, कर शान्त अनाकुल पदधारी,
अक्षय पद-पाने आया हूँ, आश पूर्ण कर दो मेरी।।
सीमंधर आदिक जिनवर की, करूँ भक्ति मंगलकारी,
जा प्रसाद से शिवपुर पाकर, सदा रहूँ ज्ञायक धारी।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धित कोमल सुन्दर, निजपद में शोभा बारा,
पर पद में अपनत्व बुद्धि से बना भिखारी बेचारा।
भाव पुष्प की उज्ज्वल माला, करे नाश दुख संसारी,
पाऊँगा थिरता निज पद में, मिटे काम कृत बीमारी।। सीमंधर. ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्य:कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु विधि खाद्य पदारथ खाते, हार गये हम संसारी,
भरा पेट फिर खाली होता, पुनः भरा यह बीमारी।
क्षुधा वेदनी के मेंटन को, आया हूँ तुमरे द्वारे,
चेतन रस का स्वाद चखा दो, क्षुधा रोग मेटन हारे।। सीमंधर. ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तस्तल तम हरने की नहिं, शक्ति सु दीपक ने धारी,
सहज ज्ञान का अंश प्रकाशी, सकल लोक तम क्षयकारी।
मोह तिमिर को नाश करो प्रभु, ज्ञान दशा प्रगटे मेरी,
ज्ञान रतन की उज्ज्वलता में लेश रहे नहिं अंधियारी।। सीमंधर. ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मेन्धन दहन के कारण, खेऊँ धूप महक कारी,
ध्यान अनल से अष्टकर्म को, नष्ट किया तुमने भारी।
हो एकाग्र ध्यान को धारूँ, जगे शक्ति अन्तर मेरी,
निज स्वरूप में रमण करूँ, तब भेद मिटे मेरी तेरी।। सीमंधर. ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपमीति स्वाहा।

कर्मों का फल बहु पाया मैंने, भोगे बन भ्रष्टाचारी,
घूम रहा परतन्त्र हुआ प्रभु! सकल सहा दुख लाचारी।
शिवपुर की अभिलाष मिटे प्रभु! ऐसी परिणति हो मेरी,
निज पद में बस शान्त रहूँ मैं आश पूर्ण कर दो मेरी।। सीमंधर. ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अतिशय भक्ति सहित मैं आया, दोष रहित गुण के धारी,
तव प्रसाद से बन जाऊँ मैं, निज पद का प्रभु! अधिकारी।
पूजक का मन विकसित होता, देखे छवि गुण भंडारी,
भव्य जनों के दु:ख को हरती, यह पूजा मंगलकारी।।
गुण पूजा प्रभु की कर देती, शांत राग की चिनगारी,
बढ़ती है परिणाम विशुद्धि, संवर निर्जर हितकारी।
कर्म निरोध होय संवर से, हो विशुद्धि की बढ़वारी,
संयम है परिणाम विशुद्धि शुद्ध भाव का सहचारी।।
इस आशा से अर्घ बनाके, आया हूँ तेरे द्वारे,
सदृश्य बनूँ निश्चय मैं तेरे, आश पूर्ण कर दो मेरी।
सीमंधर आदिक जिनवर की, करूँ भक्ति मंगलकारी,
जा प्रसाद से शिवपुर पाकर, सदा रहूँ ज्ञायक धारी।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

सीमंधर तीर्थेश सब, चिदानन्द रस सार।
किंचित् गुणमाला कहूँ, कह न सकूँ विस्तार।।

तुम तरण-तारण मैं अपावन, ज्ञात सब तुम गुण भयो।
अविकल्प निश्चल मूर्ति ज्ञायक, दृष्टि अन्तर लख लियो।। 1।।
प्रभु आपकी त्रैलोक्य व्यापक, ज्ञान की है स्वच्छता।
युगपत् प्रकाशक शक्तिमय की क्या कहूँ मैं अतुलता।। 2।।
प्रभु आपका सर्वज्ञ रूप, अनूप इस त्रैलोक्य में।
निष्क्रिय अकम्प स्वरूप है, व्यक्त लोकालोक में।। 3।।
प्रभु तुम निरंजन हो जगत में निराकार स्वभाव से।
नहिं आदि अन्त न सादि शांत, त्रिलोक को दरशावते।। 4।।
प्रभु वीतरागी साम्य भावी, गुण अनन्त प्रकाशता।
अद्भुत अरूप विकासमय, अमूर्त रवि परकाशता।। 5।।
प्रभु आप चेतनमय प्रकट, है ज्योति केवलज्ञान की,।
विज्ञानघन महिमा अपूर्व, परम अन्तर भाव की।। 6।।
प्रभु शान्त रूप अबाध सुन्दर, सहज सुक्ख स्वभावता।
तुम शान्ति नायक वीतरागी, भव्यजन मन भावता।। 7।।
प्रभु आप दर्शन ज्ञानमय, अर्हंत पद को पा लिया।
कर नाश शेष अघातिया, कृत कृत्य पद तब पा लिया।। 8।।
प्रभु आपके जु अनन्त गुण की अतुल शोभा पाय के।
इन्द्रादि करते सेव भारी, चरण तल में आय के।। 9।।
उपशम क्षयोपशम और क्षायिक, भेद सब व्यवहारता।
हो एक ज्ञायक भाव के स्वामी सदा निर्लेपता।। 10।।

प्रभु आपकी चैतन्य मूरति, एक ज्ञायक आकृति।
मैं करूँ बारम्बार प्रणमन, दूर हो मम विकृति।। 11।।
दरशन करत मिट जाय मेरी, परिणति मिथ्यात्व की।
संशय विमोहादिक मिटें, हो उदय सम्यग्ज्ञान की।। 12।।
मैं चल विभावन भाव को, जाना अनादिकाल से।
किन्तु नहिं जाना अचल पद, परम भाव त्रिकाल से।। 13।।
निक्षेप भंग प्रमाण नय से, वस्तु रूप पिछानता।
नय पक्ष से व्यवहार माँहि, कथित बँधा बँधता।। 14।।
सद्द्रव्य आत्मिक दृष्टि में नहिं, भेद शुद्धाशुद्धता।
लख एक ज्ञायक भाव में, नहिं दीखता जु अबद्धता।। 15।।
दृष्टि सम्यक् से पिछाना, सत्यासत्य स्वरूपता।
मैं हूँ चतुष्टय आत्मस्वामी, शक्ति से मम भासता।। 16।।
प्रभु आप तीर्थ स्वरूप तारक, देख भविजन ध्यावते।
जब द्वैत से अद्वैत में थिर हो परम पद पावते।। 17।।
पूज्य-पूजक, साध्य-साधक, भाव जब मिट जायेगा।
अन्तर मुहूरत श्रेणि चढ़, तव सादृश मैं बन जाऊँगा।। 18।।
निज आत्म अरु परमात्म में नहिं भेद, तुम सिखला दिया।
तब से जगी है ज्योति 'चुन्नी' मोक्ष धाम दिखा दिया।। 19।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(अडिल्ल)

विद्यमान महाराज तीर्थपद जहँ धरे।
आवें सुर-नर पूज भाव-भक्ति भरे।।
शक्तिहीन मैं नाथ! भक्तिभाव यहँ से करूँ।
पाऊँ शिवपुर थान, आश मैं उर धरूँ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सीमन्धर पूजन

(कुण्डलिया)

भव-समुद्र सीमित कियो, सीमन्धर भगवान।
कर सीमित निजज्ञान को, प्रगट्यो पूरण ज्ञान।।
प्रगट्यो पूरण ज्ञान-वीर्य-दर्शन सुखधारी।
समयसार अविकार विमल चैतन्य-विहारी।।
अंतर्बल से किया प्रबल रिपु-मोह पराभव।
अरे भवान्तक! करो अभय हर लो मेरा भव।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

प्रभुवर तुम जल से शीतल हो, जल से निर्मल अविकारी हो।
मिथ्यामल धोने को जिनवर, तुम ही तो मल-परिहारी हो।।
तुम सम्यग्ज्ञान जलोदधि हो, जलधर अमृत बरसाते हो।
भविजन मनमीन प्राणदायक, भविजन मन जलज खिलाते हो।।
हे ज्ञान पयोनिधि सीमन्धर! यह ज्ञानप्रतीक समर्पित है।
हो शान्त ज्ञेय निष्ठा मेरी, जल से चरणाम्बुज चर्चित है।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन-सम चन्द्रवदन जिनवर, तुम चन्द्रकिरण से सुखकर हो।
भव-ताप निकंदन हे प्रभुवर! सचमुच तुम ही भव-दुख-हर हो।।
जल रहा हमारा अन्तःस्थल, प्रभु इच्छाओं की ज्वाला से।
यह शान्त न होगा हे जिनवर, रे विषयों की मधुशाला से।।
चिर-अंतर्दाह मिटाने को, तुम ही मलयागिरि चंदन हो।
चंदन से चरचूँ चरणाम्बुज, भव-तप-हर! शत-शत वंदन हो।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! अक्षतपुर के वासी हो, मैं भी तेरा विश्वासी हूँ।
क्षत-विक्षत में विश्वास नहीं, तेरे पद का प्रत्याशी हूँ।।
अक्षत का अक्षत-सम्बल ले, अक्षत-साम्राज्य लिया तुमने।
अक्षत विज्ञान दिया जग को, अक्षत-ब्रह्माण्ड किया तुमने।।
मैं केवल अक्षत-अभिलाषी, अक्षत अतएव चरण लाया।
निर्वाण-शिला के संगम-सा, धवलाक्षत मेरे मन भाया।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम सुरभित ज्ञान-सुमन हो प्रभु, नहिं राग-द्वेष दुर्गन्ध कहीं।
सर्वांग सुकोमल चिन्मय तन, जग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
निज अन्तर्वास सुवासित हो, शून्यान्तर पर की माया से।
चैतन्य-विपिन के चितरंजन, हो दूर जगत की छाया से।।
सुमनों से मन को राह मिली, प्रभु कल्पबेलि से यह लाया।
इनको पा चहक उठा मन-खग, भर चोंच चरण में ले आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंद रसामृत के द्रह हो, नीरस जड़ता का दान नहीं।
तुम मुक्त-क्षुधा के वेदन से, षट्रस का नाम-निशान नहीं।।
विध-विध व्यंजन के विग्रह से, प्रभु भूख न शांत हुई मेरी।
आनंद-सुधारस-निर्झर तुम, अतएव शरण ली प्रभु तेरी।।
चिर-तृप्ति-प्रदायी व्यंजन से, हो दूर क्षुधा के अंजन ये।
क्षुत्पीड़ा कैसे रह लेगी? जब पाये नाथ निरंजन ये।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चिन्मय-विज्ञान-भवन अधिपति, तुम लोकालोक-प्रकाशक हो।
कैवल्य किरण से ज्योतित प्रभु! तुम महामोहतम नाशक हो।।
तुम हो प्रकाश के पुँज नाथ! आवरणों की परछाँह नहीं।
प्रतिबिंबित पूरी ज्ञेयावलि, पर चिन्मयता को आँच नहीं।।
ले आया दीपक चरणों में, रे! अन्तर आलोकित कर दो।
प्रभु तेरे मेरे अन्तर को, अविलंब निरन्तर से भर दो।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धू-धू जलती दुख की ज्वाला, प्रभु त्रस्त निखिल जगती तल है।
बेचेत पड़े सब देही हैं चलता फिर राग प्रभंजन है।।
यह धूम-घूमरी खा-खाकर, उड़ रहा गगन की गलियों में।
अज्ञान-तमावृत चेतन ज्यों, चौरासी की रंग रलियों में।।
संदेश धूप का तात्त्विक प्रभु, तुम हुए ऊर्ध्वगामी जग से।
प्रगटे दशाङ्ग प्रभुवर तुम को, अन्तःदशांग की सौरभ से।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-अशुभ वृत्ति एकांत दुःख, अत्यन्त मलिन संयोगी है।
अज्ञान विधाता है इनका, निश्चित चैतन्य विरोधी है।।
काँटों-सी पैदा हो जाती, चैतन्य सदन के आँगन में।
चंचल छाया की माया-सी, घटती क्षण में बढ़ती क्षण में।।
तेरी फल-पूजा का फल प्रभु! हों शांत शुभाशुभ ज्वालायें।
मधुकल्प फलों सी जीवन में, प्रभु! शांति-लतायें छा जावें।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चंदन-सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति प्रसून लगे खिलने।
क्षुत् तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।
फल हुआ प्रभो! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वैदेही हो देह में, अतः विदेही नाथ।
सीमंधर निज सीम में, शाश्वत करो निवास।।
श्री जिन पूर्व विदेह में, विद्यमान अरहंत।
वीतराग सर्वज्ञ श्री, सीमंधर भगवंत।।

(छन्द-पद्धरि)

हे ज्ञान स्वभावी सीमंधर! तुम हो असीम आनन्दरूप।
अपनी सीमा में सीमित हो, फिर भी हो तुम त्रैलोक्य भूप।।
मोहान्धकार के नाश हेतु, तुम ही हो दिनकर अति प्रचण्ड।
हो स्वयं अखंडित कर्म शत्रु को, किया आपने खंड-खंड।।
गृहवास राग की आग त्याग, धारा तुमने मुनिपद महान।
आतम स्वभाव साधन द्वारा, पाया तुमने परिपूर्ण ज्ञान।।
तुम दर्शन ज्ञान-दिवाकर हो, वीरज मंडित आनंदकन्द।
तुम हुए स्वयं में स्वयं पूर्ण, तुम ही हो सच्चे पूर्णचन्द।।
पूरव विदेह में हे जिनवर! हो आप आज भी विद्यमान।
हो रहा दिव्य उपदेश भव्य, पा रहे नित्य अध्यात्मज्ञान।।
श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव को, मिला आपसे दिव्यज्ञान।
आत्मानुभूति से कर प्रमाण, पाया उनने आनन्द महान।।
पाया था उनने समयसार, अपनाया उनने समयसार।
समझाया उनने समयसार, हो गये स्वयं वे समयसार।।
दे गये हमें वे समयसार, गा रहे आज हम समयसार।
है समयसार बस एक सार, है समयसार बिन सब असार।।
मैं हूँ स्वभाव से समयसार, परिणति हो जावे समयसार।
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समयसार।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

समयसार है सार, और सार कुछ है नहीं।
महिमा अपरम्पार, समयसारमय आपकी।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सिद्ध पूजन-1

(छन्द : नाराच)

तीन लोक ईश तनुवातवलै शीश तहाँ,
राजै जगदीश जु समूह सिद्धरूप है।
एक रूप वसुरूप गुण हैं अनंत,
अवगाहना जघन्य उत्कृष्ट जु स्वरूप है।।
पद्मासन-खड्गासन लोकालोक ज्ञायक जे,
अजर-अमर जु अमूरति अनूप हैं।
आय तिष्ठ इष्टदेव मैं करूँ पदाब्ज सेव,
बंदूँ मैं त्रिकाल ऐसे सिद्ध शिवभूप हैं।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये!सिद्धपरमेष्ठिन्!अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

निज मन मणिमय भृंगार समरस नीर भरा।
पूजूँ दुःख त्रिविध निवार जामन-मरण जरा।।
श्री सिद्ध समूह अनंत गुणातम शुद्ध सही।
तुम ध्यावत मुनिजन संत पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज सहजहिं शुद्ध स्वभाव, चंदन घसि लायो।
पूजूँ तुम पद धरि चाव, भव तप विनसायो।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल निज सहज स्वभाव, तंदुल शुद्ध लिये।
गुण अक्षय पद दरसाव तुम पद भेंट किये।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चेतन निज भाव सु सार, पुष्प सुगंध भरे।
मनमथ के नाशनहार, तुम पद भेंट धरैं।।
श्री सिद्ध समूह अनंत गुणातम शुद्ध सही।
तुम ध्यावत मुनिजन संत पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आतमरस पूरित मिष्ट, शुद्ध नैवेद्य लिये।
पूजूँ परमातम इष्ट, दोष क्षुधादि गये।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध चेतन में रुचिभाव, दीप प्रकाश रह्यो।
पूजूँ निजगुण दरसाव, शांत स्वरूप गह्यो।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मन की घातक रूप, धूप सुगंध करी।
खेवत हूँ हे शिवभूप, आठों कर्म जरी।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय शुद्ध स्वभाव, निजगुण फल लीने।
पूजत शिवफल सरसाव, आतम रस भीने।।श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चिंतामणि सम शुद्ध भाव, आठों द्रव्य लिये।
पूजत अरिगण जु नसाव, निज गुण प्रकट किये।। श्री सिद्ध.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र तीनूँ करि पूजा पाई।
ऐसे तीरथ नाथ नमैं तुम त्रिभुवन राई।।
सिद्ध शुद्ध पद ध्याय, मुक्ति-लक्ष्मी को पावें।
सुख सत्ता चैतन्य बोध निज गुण प्रकटावें।।

(छन्द : नारायण)

सु वीतराग शांत रूप, बोध के निधान हो।
निरामये सु निर्भये निरंश हो सुधाम हो।।
प्रसन्न हो समूह सिद्ध आप ही विशुद्ध हो।
करो विशुद्ध मोहि नाथ, अनंतज्ञान बुद्ध हो।।
तुम्हीं विमोह हो निरंग, साम्यभाव रूप हो।
अमूर्तीक पूर्ण बुद्ध, आप ही स्वरूप हो।। प्रसन्न हो.।।
अबन्ध निष्कषाय हो जु कर्मपाश ना रही।
जु संग को प्रसंग नाहिं शुद्ध रूप आप हो।। प्रसन्न हो.।।
अनंत सौख्य के समुद्र अनंत ज्ञानधीर हो।
दु:कर्म को निवारि, आप कामखण्ड वीर हो।। प्रसन्न हो.।।
कलंक कर्म धूलि को समीर के समान हो।
नहीं जो शोक, ना विकार शब्द ना अमान हो।। प्रसन्न हो.।।
सुज्ञान नेत्र तेज देख लोक वा अलोक को।
जो भिन्न-भिन्न जान जीव द्रव्य आदि थोक को।। प्रसन्न हो.।।
जु मोह हीन अंग ना सदा उदय स्वरूप हो।
जुवर्ण गंध रूप नाहिं, आप ही अरूप हो।। प्रसन्न हो.।।
मुनीन्द्र इन्द्र वा नरेन्द्र पाद वृन्द पूजि हैं।
सु शुद्ध सिद्ध ध्यावते जु दुष्ट कर्म धूजि हैं।। प्रसन्न हो.।।
भये जु जन्म-मरण नाशि के जु त्रिपुरारि हो।
सुशुद्ध काज माँहि आप ही जिनेश सार हो।। प्रसन्न हो.।।
जु और चाह नाहिं मोहि, सिद्ध पद दीजिये।
जु आप हो कल्याण रूप, मो कल्याण कीजिये।। प्रसन्न हो.।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह सिद्ध समूहतनी जयमाला जो भवि पढ़ि निज ध्यान धरै।
सब कर्म नशावै शिव पद पावै, 'जौहरि' परमानंद वरै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सिद्ध पूजन-2

(हरिगीतिका)

निज वज्र पौरुष से प्रभो ! अन्तर-कलुष सब हर लिये।
प्रांजल[1] प्रदेश-प्रदेश में, पीयूष निर्झर झर गये।।
सर्वोच्च हो अतएव बसते लोक के उस शिखर रे।
तुम को हृदय में स्थाप, मणि-मुक्ता चरण को चूमते।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

शुद्धातम-सा परिशुद्ध प्रभो ! यह निर्मल नीर चरण लाया।
मैं पीड़ित निर्मम ममता से, अब इसका अन्तिम दिन आया।।
तुम तो प्रभु अंतर्लीन हुए, तोड़े कृत्रिम सम्बन्ध सभी।
मेरे जीवन-धन तुमको पा, मेरी पहली अनुभूति जगी।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य-सदन में प्रभु ! धू-धू क्रोधानल जलता है।
अज्ञान-अमा[2] के अंचल में, जो छिपकर पल-पल पलता है।।
प्रभु ! जहाँ क्रोध का स्पर्श नहीं, तुम बसो मलय की महकों में।
मैं इसीलिये मलयज लाया क्रोधासुर भागे पलकों में।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अधिपति प्रभु ! धवल भवन[3] के हो, और धवल तुम्हारा अन्तस्तल।
अन्तर के क्षत सब विक्षत कर, उभरा स्वर्णिम सौंदर्य विमल।।

---

1. शुद्ध 2. अमावस्या 3. सिद्धशिला, निर्मल चैतन्य-भवन

मैं महामान से क्षत-विक्षत, हूँ खण्ड-खण्ड लोकांत-विभो।
मेरे मिट्टी के जीवन में, प्रभु! अक्षत की गरिमा भर दो।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य-सुरभि की पुष्प वाटिका, में विहार नित करते हो।
माया की छाया रंच नहीं, हर बिन्दु सुधा की पीते हो।।
निष्काम प्रवाहित हर हिलोर, क्या काम काम की ज्वाला से?
प्रत्येक प्रदेश प्रमत्त हुआ, पाताल-मधु-मधुशाला[4] से।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह क्षुधा देह का धर्म प्रभो! इसकी पहिचान कभी न हुई।
हर पल तन में ही तन्मयता, क्षुत-तृष्णा अविरल पीन[5] हुई।।
आक्रमण क्षुधा का सह्य नहीं, अतएव लिये हैं व्यंजन ये।
सत्वर[6] तृष्णा को तोड़ प्रभो! लो, हम आनंद-भवन पहुँचे।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विज्ञान नगर के वैज्ञानिक, तेरी प्रयोगशाला विस्मय।
कैवल्य-कला में उमड़ पड़ा, सम्पूर्ण विश्व का ही वैभव।।
पर तुम तो उससे अति विरक्त, नित निरखा करते निज निधियाँ।
अतएव प्रतीक प्रदीप लिये, मैं मना रहा दीपावलियाँ[7]।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरा प्रासाद महकता प्रभु! अति दिव्य दशांगी[8] धूपों से।
अतएव निकट नहिं आ पाते, कर्मों के कीट-पतंग अरे।।
यह धूप सुरभि-निर्झरणी, मेरा पर्यावरण[9] विशुद्ध हुआ।
छक गया योग-निद्रा[10] में प्रभु! सर्वांग अमी[11] है बरस रहा।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

4.शुद्ध अन्तस्तत्त्व का आनन्द भवन 5.पुष्ट 6.अविलम्ब
7.महोत्सव 8.दशधर्मों की 9.अन्तरंग प्रदूषण 10.आनन्द समाधि 11. अमृत

निज लीन परम स्वाधीन बसो, प्रभु! तुम सुरम्य शिव-नगरी में।
प्रति पल बरसात गगन[12] से हो, रसपान करो शिव-गगरी में।।
ये सुरतरूओं के फल साक्षी, यह भव-संतति का अंतिम क्षण।
प्रभु! मेरे मंडप में आओ, है आज मुक्ति का उद्घाटन।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरे विकीर्ण[13] गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूत अनुभूति लिये।।
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण, निज अंतर-वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति *स्वाहा।*

जयमाला

दोहा- चिन्मय हो, चिद्रूप प्रभु! ज्ञाता मात्र चिदेश।
शोध-प्रबन्ध चिदात्म के[14],सृष्टा तुम ही एक।। 1।।

(छन्द-रेखता)

जगाया तुमने कितनी बार! हुआ नहिं चिर-निद्रा का अन्त।
मदिर[15] सम्मोहन ममता का, अरे! बेचेत पड़ा मैं सन्त।। 2।।
घोर तम छाया चारों ओर, नहीं निज सत्ता की पहिचान।
निखिल जड़ता दिखती सप्राण, चेतना अपने से अनजान।। 3।।
ज्ञान की प्रतिफल उठे तरंग, झाँकता उसमें आतमराम।
अरे! आबाल सभी गोपाल, सुलभ सबको चिन्मय अभिराम।। 4।।

---

12. शून्य चैतन्य 13.बिखरे हुये
14. आत्मा के शुद्धि-विधान की शोध 15.मादक

किंतु पर सत्ता में प्रतिबद्ध, कीर-मर्कट-सी[16] गहल अनन्त।
अरे! पाकर खोया भगवान, न देखा मैंने कभी बसन्त।। 5।।
नहीं देखा निज शाश्वत देव, रही क्षणिका पर्यय की प्रीति।
क्षम्य कैसे हों ये अपराध? प्रकृति की यही सनातन रीति।। 6।।
अतः जड़ कर्मों की जंजीर, पड़ी मेरे सर्वात्म प्रदेश।
और फिर नरक निगोदों बीच, हुए सब निर्णय हे सर्वेश।। 7।।
घटा घन विपदा की बरसी, कि टूटी शंपा[17] मेरे शीश।
नरक में पारद-सा तन टूक, निगोदों मध्य अनंती मीच[18]।। 8।।
करें क्या स्वर्ग सुखों की बात, वहाँ की कैसी अद्भुत टेव।
अन्त में बिलखे छह-छह मास, कहें हम कैसे उसको देव।। 9।।
दशा चारों गति की दयनीय, दया का किन्तु न यहाँ विधान।
शरण जो अपराधी को दे, अरे! अपराधी वह भगवान।। 10।।
''अरे! मिट्टी की काया बीच, महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर, पराया ज्ञान वहाँ परकीय।। 11।।
अहो! 'चित्' परम अकर्तानाथ, अरे! वह निष्क्रिय तत्त्व विशेष।
अपरिमित अक्षय वैभव-कोष'', सभी ज्ञानी का यह परिवेश[19]।। 12।।
बताये मर्म अरे! यह कौन, तुम्हारे बिन वैदेही नाथ?
विधाता शिव-पथ के तुम एक, पड़ा मैं तस्कर दल के हाथ।। 13।।
किया तुमने जीवन का शिल्प[20], खिरे सब मोह, कर्म और गात[21]।
तुम्हारा पौरुष झंझावात[22],झड़ गये पीले-पीले पात।। 14।।

---

16. तोता और बन्दर जैसी 17. बिजली 18.मृत्य
19. अनुभूति 20. सुन्दर रचना 21.शरीर 22. तूफान

नहीं प्रज्ञा-आवर्त्तन[23] शेष, हुए सब आवागमन अशेष।
अरे प्रभु! चिर-समाधि में लीन, एक में बसते आप अनेक।। 15।।
तुम्हारा चित्-प्रकाश कैवल्य, कहें तुम ज्ञायक लोकालोक।
अहो! बस ज्ञान जहाँ हो लीन, वही है ज्ञेय, वही है भोग।। 16।।
योग चांचल्य[24] हुआ अवरुद्ध, सकल चैतन्य निकल निष्कंप।
अरे! ओ योग रहित योगीश! रहो यों काल अनन्तानन्त।। 17।।
जीव कारण-परमात्म त्रिकाल, वही है अंतस्तत्त्व अखण्ड।
तुम्हें प्रभु! रहा वही अवलम्ब, कार्य परमात्म हुए निर्बन्ध।। 18।।
अहो! निखरा कांचन चैतन्य, खिले सब आठों कमल[25] पुनीत।
अतीन्द्रिय सौख्य चिरंतन भोग, करो तुम धवल-महल के बीच।। 19।।
उछलता मेरा पौरुष आज, त्वरित टूटेंगे बंधन नाथ।
अरे! तेरी सुख-शैय्या बीच, होगा मेरा प्रथम प्रभात।। 20।।
प्रभो! बीती विभावरी[26] आज, हुआ अरुणोदय शीतल छाँव।
झूमते शांति-लता के कुंज, चलें प्रभु! अब अपने उस गाँव।। 21।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

चिर-विलास चिद्ब्रह्म में, चिर-निमग्न भगवंत।
द्रव्य[27]-भाव[28] स्तुति से प्रभो! वंदन तुम्हें अनंत।।22।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

---

23. ज्ञप्ति-परिवर्तन 24. आत्म प्रदेशों का कम्पन 25. आठों गुण
26.रात 27.उत्कृष्ट भक्ति परिणाम 28.निज शुद्धात्म-संवेदन

श्री सिद्ध पूजन-3

दोहा- चिदानन्द स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के, परम सिद्ध भगवान।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

ज्यों-ज्यों प्रभुवर जल पान किया, त्यों-त्यों तृष्णा की आग जली।
थी आश कि प्यास बुझेगी अब, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा-तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणों में आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

तन का उपचार किया अब तक, उस पर चंदन का लेप किया।
मल-मलकर खूब नहा करके, तन के मल का विक्षेप किया।।
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो।।
ले शालिकणों का अवलम्बन, अक्षयपद! तुमको अपनाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के बैरी की, क्यों नहिं आनन्द बढ़े सबका?।।
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है?।।
तुम भोजन बिन अक्षय सुखमय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आलोक ज्ञान का कारण है, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता है।
यह मान रहा था पर क्यों कर, जड़-चेतन-सर्जन करता है?।।
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हरषाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमें जड़ की कुछ गंध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चिद्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।
यह धूप नहीं, जड़-कर्मों की रज आज उड़ाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा।।
रागादि विभाव किये जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की।
पहनीं तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की।।
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मों का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया?।।

जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझको स्वभाव का भान हुआ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ।।
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- आलोकित हो लोक में, प्रभु परमात्म-प्रकाश।
आनन्दामृत पानकर, मिटे सभी की प्यास।।

(छन्द-पद्धरि)

जय ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड।।
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द्व निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार।।
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु-शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार।।
प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थ भान, शिवपद दाता जो तत्त्वज्ञान।।
पाया नहीं मैं उसको पिछान, उल्टा ही मैंने लिया मान।
चेतन को जड़मय लिया जान, तन में अपनापा लिया मान।।
शुभ-अशुभ राग जो दु:खखान, उसमें माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय।।

जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको माना मैं दु:ख स्वरूप।
मनवांछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग।।
इच्छा-निरोध की नहीं चाह, कैसे मिटता भव-विषय-दाह?
आकुलतामय संसार सु:ख, जो निश्चय से है महा-दु:ख।।
उसकी ही निश-दिन करी आश, कैसे कटता संसार पाश?
भव-दुख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान।।
मैं दान दिया अभिमान ठान, उसके फल पर नहिं दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माँग, कैसे मिटता संसार स्वाँग?।।
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रगट्यो प्रभु भेदज्ञान, मैंने तुमको लीना पिछान।।
तुम पर के कर्त्ता नहीं नाथ, ज्ञाता हो सबके एक साथ।
तुम भक्तों को कुछ नहीं देत, अपने समान बस बना लेत।।
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुम को बस पिछान।
वह पाता है कैवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान।।
विपदामय परपद है निकाम, निजपद ही है आनन्द धाम।
मेरे मन में बस यही चाह, निजपद को पाऊँ हे जिनाह।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पर का कुछ नहिं चाहता, चाहूँ अपना भाव।
निज-स्वभाव में थिर रहूँ, मेटो सकल विभाव।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन-1

(वीरछन्द)

ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द्र पुहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय।।
विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशति जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा।।
चौबीसौं श्री जिनचन्द्र, आनन्द-कन्द सही।
पद-जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी।। चौबीसौं.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सितसोम-समान, सुन्दर अनियारे।
मुक्ताफल की उनमान पुञ्ज धरौं प्यारे।। चौबीसौं.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वर-कंज कदंब कुरण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन-अग्र धरौं गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे।। चौबीसौं.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-मोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने।।
चौबीसौं श्री जिनचन्द्र, आनन्द-कन्द सही।
पद-जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगै।
सब तिमिर मोहक्षय जाय, ज्ञान-कला जागै।। चौबीसौं. ।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु! खेवत हों।
मिस-धूम करम जर जाहिं, तुम पद सेवत हों।। चौबीसौं. ।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो।। चौबीसौं. ।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।। चौबीसौं. ।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर-अमर पद देत।।

(छन्द-त्रिभंगी)

जय भव-तम भंजन, जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि, स्वच्छ करा।
शिव-मग-परकाशक, अरिगन-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा।।

(छन्द-पद्धरि)

जय ऋषभदेव ऋषि-गन नमन्त, जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द पूर।।

जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म दुति तन रसाल।
जय जय सुपार्श्व भव-पासनाश, जय चन्द्र, चन्द्र-तन दुति प्रकाश।।

जय पुष्पदन्त द्युति-दन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुननिकेत।
जय श्रेयनाथ नुत-सहस भुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्य।।

जय विमल विमल-पद देनहार, जय जय अनन्त गुन-गण अपार।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करेत।।

जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अरजिन वसु-अरि छय करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल।।
जय नमि नित वासवनुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिवनगर साथ।।

(छन्द-त्रिभंगी)

चौबीस जिनन्दा, आनन्द कन्दा, पाप निकन्दा, सुखकारी।
तिन पद-जुगचन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा हितकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तेभ्य: चतुर्विंशतिजिनेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

भुक्ति-मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराजवर।
तिन पद मन-वच-धार, जो पूजै सो शिव लहै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन-2

भव भोगों से होकर विरक्त, प्रभु हुए स्वयं तुम आत्ममगन,
प्रगटा तब केवलज्ञान सूर्य, फिर रहे नहीं विधि के बन्धन।
तीर्थंकर हो जग त्राण किया, तुमने पाया नव अभिनन्दन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, शत-शत प्रणाम, शत-शत वंदन।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

भव-भव में भटक रहा भगवन्, जीवन भारी दुखदायी है,
कर दर्शन नाथ तुम्हारा यह, मुझको मेरी सुधि आई है।
मिट जाये मेरा जन्म-मरण, जल से करता हूँ मैं अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवताप कहूँ क्या प्रभु! तुमसे, मुझसे न सहन अब होता है,
इसलिए शरण में आया हूँ, तव पूजन भव दुख खोता है।
जग का सन्ताप मिटे मेरा, चन्दन से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय न यहाँ कुछ वसुधा पर, जो कुछ है सब क्षय हो जाता,
इस दुख से बहुत व्यथित व्याकुल, मैं त्राण नहीं किंचित् पाता।
अक्षय पद मैं अब पा जाऊँ, अक्षत से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर आदर्श रहो मेरे प्रतिक्षन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह काम बड़ा बलशाली है, तन-मन को आकुल कर देता,
विषयों के वश में कर प्राणी, उसकी बुद्धि को हर लेता।
तुम कामजयी हो इसीलिये पुष्पों से करता हूँ अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

है क्षुधा जगत में महारोग, जिसका न अन्त हो पाया है,
युग युग से इसके वश होकर, मैंने अखाद्य सब खाया है।
तुम इस पर विजयी हुए नाथ, नैवेद्य चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुछ सरल बात है नहीं मोह-तम प्राणों से यह कढ़ जाये,
तुम सा वैरागी बनकर ही अपने स्वरूप को पा जाये।
तुम वीतराग हो निर्मोही, मैं दीपक से करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह कर्मों की माया सारी, भव-भव में इसने भरमाया,
कुछ शुभ संयोग मिला मुझको मैं शरण तुम्हारी हूँ आया।
तुमने कर्मों को जीत लिया, मैं धूप चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवन की उलझन ने मुझको, उलझन में इतना उलझाया,
सुलझा न सका उसको अब तक कब शिवफल तुमसा प्रभु पाया।
तुम मुक्त हुए इस उलझन से फल से करता हूँ मैं अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर, आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मिट जावे मेरा जन्म-मरण, सन्ताप न हो, अक्षय पद हो,
निष्काम रहूँ, न विभुक्षा हो, न मोह, न यह विधि भयप्रद हो।
बन जाऊँ जीवन मुक्त नाथ, यह अर्घ्य चढ़ा करता अर्चन,
ऋषभादि चतुर्विंशति जिनवर आदर्श रहो मेरे प्रतिछन।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मैं उर में लेकर भक्ति भाव से, प्रभुवर! करता हूँ प्रणाम,
मिथ्यातम से मैं दूर रहूँ बन जाऊँ सम्यक् ज्योति धाम।
तुम दर्शन पूजन से भगवन् हो जाये निज दर्शन ललाम,
तुम सा बन जाऊँ, इसीलिए करता हूँ मैं सादर प्रणाम।।
हे ऋषभनाथ, हे आादिनाथ, मुझ पर अब तो करुणा कर दो,
प्रभु अजितनाथ मेरे उर का, चिर संचित सब संशय हर दो।
संभव जिन मुझ पर हो दयालु, सब काम असंभव बन जावे,
भज अभिनंदन प्रभु को निशदिन, नवजीवन अभिनंदन पावे।।
श्री सुमति सुमति मेरी कर दो, मिथ्या मति हो न कभी मेरी,
भव पार करो प्रभु पद्मप्रभु, अब और न हो पावे देरी।
भगवन सुपार्श्व मेरे भव के, सब पाप नाश कर दो सत्वर,
चन्द्र प्रभु मेरे इस उर का, सव शाप ताप हरलो अघहर।।
श्री सुविधिनाथ दो सुविधि बता, मेरे टूटें सब विधि बंधन,
संतप्त हृदय शीतल करदो, शीतल जिन मेरा सुन क्रन्दन।
हे श्रेयनाथ दो मुझे श्रेय, भव बाधा का कर दूँ भंजन,
मेरे उर के दृग खुल जावें, हे वासुपूज्य दो वह अंजन।।

श्री विमल विमल पद दो मुझको, युग-युग से भूला भटका हूँ,
कर दो अनन्त सब कष्ट अन्त, भव-भव में आ अटका हूँ।
पथ धर्मनाथ अब बतलादो, शाश्वत सुख मुझको मिल जाये,
प्रभु शांतिनाथ मेरे उर में, आ शान्ति निराकुल छा जाये।।
हे कुन्थनाथ होकर कृपालु, मुझ पर भी तनिक कृपा कर दो,
श्री अरहनाथ अब तो मेरे, वसु अरि का बल विक्रम हरदो।
मेरे मन से यह मोह मल्ल, हे मल्लिनाथ अब दूर करो,
मुनिसुव्रतनाथ सुनो विनती, तृष्णा मेरी चकचूर करो।।
नमिनाथ तुम्हारे चरणों में, मैं नमन कर रहा दुखियारा,
हे नेमिनाथ अब बाँह गहो, उद्धार करो मैं हूँ हारा।
तुम नाथ अनाथों के अपने ही, पारसनाथ सुनो मेरी,
शिवधाम मुझे दो वर्द्धमान, मेटो मेरी भव-भव फेरी।।
'कुमरेश' तुम्हारा दास प्रभो, अब तो मुझपर करूणा कर दो,
बन जाये यह जीवन सुखमय, मुझको प्रभुवर ऐसा वर दो।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो भक्ति भाव से प्रेरित हो, पूजन करता है जिनवर की।
उसको सुधि आ जाती अपनी ममता विसरा जाती पर की।।
जग का जंजाल न भाता है, तृष्णा मिट जाती है उर की।
वह मजिंल अपनी पा जाता, या गैल यहाँ से शिवपुर की।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

पापोदय में नहीं भटकें, पुण्योदय में नहीं अटकें।
निशदिन ज्ञानाभ्यास करें, शुद्धातम पर दृष्टि धरें॥

श्री नन्दीश्वरद्वीप पूजन

(छन्द-अडिल्ल)

सरब परव में बड़ो अठाई परव है।
नन्दीश्वर सुर जाँहिं लेय वसु दरब है।।
हमें सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना।
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालय-स्थजिनप्रतिमा-समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

कंचन-मणि-मय-भृङ्गार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुँ धार दई निरवार, जामन मरन जरा।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुँज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेपूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।
प्रभु यह गुन कीजै साँच, आयो तुम ठाहीं।। नन्दी. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुँज धरे सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज-तुम सम अरु को है?।।
नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुँज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंद-भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिन-बिम्बेभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलन सों।
लहूँ शील-लक्ष्मी एव, छूटों शूलन सों।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहै सार, अचरज है पूरा।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माहिं लसै।
टूटे करमन की राशि, ज्ञान-कणी दरसे।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरे।
अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्य करे।।नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जांचत हैं।। नन्दी.।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिन-बिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों।। नन्दी. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिन-बिम्बेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- कार्तिक फाल्गुन साढ़ के, अन्त आठ दिन माहिं।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाहिं।। 1।।

(छन्द-लक्ष्मीधरा)

एक सौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा,
लाख चौरासिया एक दिश में लहा।
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 2।।
चार दिशि चार अंजनगिरी राजहीं,
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुन्दरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 3।।
एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी,
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी।
चहुँ दिशि चार वन लाख जोजन वरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 4।।
सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं,
सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं।
बावरी कौन दो माहि दो रतिकरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 5।।

शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे,
चार सोलह मिलै सर्व बावन लहे।
एक-इक सीस पर एक जिन मन्दिरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 6।।
बिम्ब अठ एकसौ रतनमयी सोहही,
देव देवी सरव नयन मन मोहही।
पाँचसौ धनुष तन पद्म-आसन परं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 7।।
लाल नख-मुख नयन श्याम अरु स्वेत हैं,
श्याम रंग भोंह सिर-केश छवि देत हैं।
वचन बोलत मनों हँसत कालुष हरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 8।।
कोटि-शशि-भान-दुति-तेज छिप जात है,
महा-वैराग-परिणाम ठहरात है।
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यक्धरं,
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं।। 9।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यः अनर्घपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नन्दीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनों नाम, यही भगति शिव-सुख करै।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंचमेरु पूजन

(छन्द-गीता)

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीप में सब-गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहिं सुख-दुख भाजहीं।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिन-प्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीति-जिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चौपाई-आँचलीबद्ध)

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिन-चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्ड सुगन्ध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करौं प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन-वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तम हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस सुवर्ण सुगन्ध सुहाय, फलसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।। पाँचों.।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रगट।।

(छन्द-वेसरी)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भू पर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
ऊपर पाँच शतक पर सौहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
ऊँचा जोजन सहस-छत्तीसं, पाण्डुक-वन सोहै गिरि-सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
चारों मेरु समान बखाने, भू पर भद्रसाल चहुँ जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।
उच्च अठाइस सहस बताये, पाण्डुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन-वचन-तन वन्दना हमारी।।
सुर नर चारन वन्दन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं?
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन-वच-तन वन्दना हमारी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पंचमेरु की आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सोलहकारण पूजन

(छन्द–अडिल्ल)

सोलह कारण भाय तीर्थङ्कर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहुचाव सौं।
हमहु षोडश कारन भावैं भावसौं।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द–चौपाई–आँचलीबद्ध)

कंचन–झारी निरमल नीर, पूजों जिनवर गुण गम्भीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर–पद–पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्धि–विनयसंपन्नता–शीलव्रतेष्वनतिचार–अभीक्ष्णज्ञानोपयोग–संवेग–शक्तिस्त्याग–तपः–साधुसमाधि–वैयावृत्त्यकरण–अर्हद्भक्ति–आचार्यभक्ति–बहुश्रुतभक्ति –प्रवचनभक्ति–आवश्यकापरिहाणि–मार्गप्रभावना–प्रवचनवात्सल्येति तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्म–जरा–मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जग भूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार, पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर-पद-पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सदनेवज बहुविधि पकवान, पूजौं श्री जिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार, पूजूँ श्रीजिन केवलधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजौं जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश.।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप-पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश।।

(चौपाई)

दरशविशुद्धि धरै जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी।।
शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरन की आपद टाले।
ज्ञानाभ्यास करे मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं।।
जो संवेग-भाव विस्तारे, सुरग-मुकति-पद आप निहारे।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस पर भव सुख देखे।।
जो तप तपे खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे।।
निश-दिन वैयावृत्त्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत भगति मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने।।
जो आचारज-भगति करे है, सो निर्मल आचार धरे है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई।।
प्रवचन-भगति करे जो ज्ञाता, लहे ज्ञान-परमानन्द-दाता।
षट् आवश्यक काल जो साधे, सो ही रत्नत्रय आराधे।।
धरम-प्रभाव करे जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावे, सो तीर्थंकर पदवी पावे।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

ये ही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर वंद्य पद, 'द्यानत' शिवपद होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री दशलक्षण धर्म पूजन

(छन्द-अनुष्टुप)

उत्तमक्षान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य-सुलक्षणम्।
स्थापय दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम्।।

(छन्द-अडिल्ल)

उत्तम क्षमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(सोरठा)

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येति दश-लक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौ सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशधर्मों के अर्घ्य

(सोरठा, चौपाई एवं हरिगीतिका)

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा।।

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस, पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहे अयानो।।
कहि है अयानो वस्तु छीने, बाँध मार बहुविधि करै।
घरतें निकारै तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरै।।
तैं करम पूरब किये खोटे सहै क्यों नहिं जीयरा?
अति क्रोध अग्नि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा।।
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना?
बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया।।
रूंकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया।।
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा?
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजे कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा।।
उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये।।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगार-सी।।
नहिं लहै लक्ष्मी अधिक, छल करि, करम-बन्ध-विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।
उत्तम सत्य-बरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहिं कीजे।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।।
पेखो तिहायत पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये।।
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निर्दोष, धरम बड़ो संसार में।।
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दु:खदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी।।
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतैं।।
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै?
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधु लहै।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संयम-रतन सँभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं।।
उत्तम संयम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं।।
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम-मुख बीच में।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम।।
उत्तम तप सब माँहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
बस्यो अनादि निगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा।।
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता।।

अति महादुर्लभ त्याग विषय-कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुरी उनहार, नर-भव लाहो लीजिए।।

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान सँभारै।।
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया।।
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए।।

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानों।
फाँस तनक-सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुःख भालै।।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं।।
घर माँहि तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमाकिञ्चन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा।।

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकैं न नैन-बान लखि कूरे।।

कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहिं, काग ज्यों चोंचैं भरै।।
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैंड़ि चढ़िकैं, शिव-महल में पग धरा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

दोहा- दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय।।

(छन्द-चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै।।
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै।।
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता।।
उत्तम तप निरवाँछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई।।
उत्तम आकिंचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्येतिदशलक्षण-धर्माय अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर-अमर पद को लहै, 'द्यानत' सुख की राशि।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री महावीर पूजन

(हरिगीतिका)

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

जिनके गुणों का स्तवन पावन करन अम्लान है।
मल-हरन निर्मल-करन भागीरथी नीर-समान है।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लिपटे रहें विषधर तदपि-चन्दन विटप निर्विष रहें।
त्यों शान्त शीतल ही रहो-रिपु विघन कितने ही करें।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं।
पर-गन्ध से विरहित तदपि निज-गन्ध से भरपूर हैं।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन! क्यों तुम्हें उनसे प्रीति हो?।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

युगपद्-विशद् सकलार्थ झलकें नित्य केवलज्ञान में।
त्रैलोक्य-दीपक वीर-जिन दीपक चढ़ाऊँ क्या तुम्हें?।।
संतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणों के गान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म ईन्धन दहन पावक पुंज पवन समान हैं।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हैं।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एवं पाप का।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने।
उस परम पद को पा लिया हे पतितपावन आपने।। संतप्त.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

सित छठवीं आषाढ़, माँ त्रिशला के गर्भ में।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभु।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति

स व ा ह ा ।

दशमी मंगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित दशमी वैशाख, पायो केवलज्ञान जिन।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य, प्रभुपद पूजा करें हम।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक मावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाँय हम।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर।
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर।।

(छन्द-पद्धरि)

हे मोह-महादलदलन वीर, दुद्धर-तप संयम धरण धीर।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद।।
अघकरन करन-मन हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुख अपार।
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव।।
मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वयं तुम वीतराग।।
षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष।

सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचाने विशेष।।
वे पहिचानें अपना स्वभाव, वे करें मोह-रिपु का अभाव।
वे प्रगट करें निज-पर विवेक, वे ध्यावें निज शुद्धातम एक।।
निज आतम में ही रहें लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण।
उनका हो जावे क्षीण राग, वे भी हो जावें वीतराग।।
जो हुए आज तक अरीहंत, सबने अपनाया यही पंथ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार।।
जो तुमको नहिं जानें जिनेश, वे पावें भव भव-भ्रमण क्लेश।
वे माँगें तुमसे धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज।।
जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हें मानते हैं महान।
उनमें ही निशदिन रहें लीन, वे पुण्य-पाप में ही प्रवीन।।
प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पावें संताप।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार।।
तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हो जायें परमात्मरूप।।
उनको ना कोई रहे चाह, वे अपना लेवें मोक्ष राह।
वे करें आत्मा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होंय सिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्तमान।
वर्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री बाहुबली पूजन

(छन्द-मुक्तक)

ध्यानानल की प्रबल ज्वलन में, झोंक दिया कर्मेन्धन को,
चिदानन्द को प्राप्त किया है, दूर हटा भवबंधन को।
जिनने नश्वर लक्ष्मी को तज, अविनाशी पद पाया है,
उन बाहुबली की पूजा को, मेरा भी मन हुलसाया है।।
चञ्चल मन को निश्चल कर, मैं पूजा करने आया हूँ,
अर्पित करने हेतु आपको, मात्र भक्ति ही लाया हूँ।
चाह नहीं है स्वर्ग सौख्य की, इस पूजा के फल से,
छूट जाऊँ मैं यही भाव है, इस भव के दावानल से।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

विषय तृषा से पीड़ित हो मैं, भवसागर में मग्न रहा,
जन्म-मरण की आवर्तों में, मैंने भारी कष्ट सहा।
बाहुबलि जिनेन्द्र आपने, विषय तृषा को दूर किया,
इसीलिए जल कर में लेकर, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप महादुखकारी, इससे मैं अति ग्रस्त हुआ,
चारों गतियों में फिर-फिर कर, तीव्र तपन से त्रस्त हुआ।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, भवाताप को दूर किया,
इसीलिए चन्दन को लेकर, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

कभी स्वर्ग में कभी श्वभ्र[1] में, कभी पशु मानव तन में,
क्षत-विक्षत हो सहा निरन्तर, महाकष्ट इस भव वन में।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, अक्षय पद को प्राप्त किया,
इसीलिए अक्षत लेकर, मैंने तेरा शरण लिया।।

1.नरक

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामानल की तीव्र तपन को, सह न सका मैं भव वन में,
इसीलिए आसक्त रहा नित, नारी के नश्वर तन में।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, कामानल को दूर किया,
इसीलिए पुष्पावलि लेकर, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक मैंने खाया कितना, कह सकता है कौन विभो?
फिर भी तृप्त हुआ नहिं मेरा हृदय आज तक रञ्च प्रभो।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, क्षुधा महागद दूर किया,
इसीलिए चरु लेकर कर में, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महा मोह के सघन तिमिर में, मार्ग भ्रष्ट हो कष्ट सहा,
अब तक कितना-कितना स्वामिन् कहने को नहिं शक्त रहा।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, महा मोह को जीत लिया,
इसीलिए दीपक से अर्चा करने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म महारिपुओं ने मुझको, लूट-लूट कर रंक किया,
चिदानन्द से दूर हटाकर मुझे घोर तम दुःख दिया।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, कर्म शत्रु को भस्म किया,
इसीलिए ले धूप हाथ में, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मोदय से जनित फलों में, सुख की कांक्षा कर मन में,
सुख प्राप्ति की मृगतृष्णा में, दौड़ रहा हूँ भव वन में।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, उस फल को है दूर किया,
इसीलिए फल लेकर मैंने, भगवन् तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक जो पद पाया मैंने, उसका कुछ भी अर्थ नहीं,
दमरी के रुकँन में बिक कर, पाया कितना कष्ट नहीं।
बाहुबली जिनेन्द्र आपने, वह अनर्घ पद प्राप्त किया,
इसीलिए अर्घावलि लेकर, मैंने तेरा शरण लिया।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कर्म भूमि की आदि में हुए वृषभ जिनराज।
उनही के तुम हो तनुज बलशाली ऋषिराज।।

(वीरछन्द)

अग्रज भरत चक्रधर ने जब, त्रिविध युद्ध में पाकर हार।
चला दिया था चक्र आप पर, तब जाना भव को निःसार।।
राज्य विभव अब जीरण तृणवत्, छोड़ दिया वन में जाकर।
जिनदीक्षा धर सत्वर सुख कर लिया योग-कर्म क्षयकर।।
एक वर्ष तक खड़े रहे तुम, अचल महाबल के धारक।
क्षुधा तृषादिक घोर परीषह रिपुगण के होकर बारक।।
शीत उष्ण वर्षा झंझानल कर न सके तुमको विचलित।
बारी-बारी से आकर वे स्वयं हुए तुम से विदलित।।
सर्पादिक लिपटे शरीर से खगदल ने भी वास किया।
भांति-भांति की बल्लरियों ने, लिपट-लिपट कर त्रास दिया।।
नर सुर असुर खगादिक तप को देख-देख आश्चर्य चकित।
करते नमन आपको भगवन अतुल भक्ति से हो विलसित।।
सांप नकुल मृग पञ्चानन भी बैरभाव अपना तज कर।

पादमूल में होते प्रमुदित, करने केलि विविध जी भर।।
शुक्लध्यान की प्रबल अनल में, कर्मशत्रु को दग्ध किया।
पाकर केवलज्ञान अनूपम, लोकत्रय को जान लिया।।
वीतराग वाणी से सब को हितकारी उपदेश दिया।
शिवनगरी का मार्ग बताकर, सब जीवों को सुखी किया।।
अपने इस आदर्श त्याग से, आप विश्व में पूज्य हुए।
कर्म शत्रु को शीघ्र नष्ट कर, मुक्तिरमा के नाथ हुए।।
हे अनन्त बल के धारक, हे ज्ञान ज्योति के पुञ्ज प्रभो।
हे अनन्त दर्शन से शोभित, हे सुखमय गुणराशि विभो।।
बाहुबली जिनेन्द्र आपके, गौरवमय शुभ दर्शन से।
रोम-रोम है हर्षित मेरा, चरण युगल स्पर्शन से।।
हृदय भक्ति से फूल रहा है, तेरे दर्शन से प्रभुवर।
टूट जायें मेरे भव बंधन, कृपा करो ऐसी सत्वर।।
राज्य विभव स्वर्गादिक की कुछ चाह नहीं है हे भगवन।
एक चाह बस एक लक्ष्य है, आत्म निष्ठ होऊँ भगवन।।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, अब तो मैं निज घर आऊँ।
दिव्य मन्त्र ऐसा प्रभु दीजे, निज में ही निज को ध्याऊँ।।
पर पद का सब मोह क्षोभ तज, शुद्ध निजातम को पाऊँ।
'पन्नालाल' जाल से छूटूँ, स्वात्म सुखद घर को पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाहुबलि जिनेन्द्र प्रार्थना है मेरी।
देकर शिवथल वास हरो मेरी भव फेरी।।
ऊब चुका हूँ जन्म-मरण के घोर त्रास से ।

शीघ्र निकालो अब मुझको संसार वास से।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

अर्घ्यावलि

देव-शास्त्र-गुरु

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन-बल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच-परमेष्ठी

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपंच-परमेष्ठिभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध भगवान

तेरे विकीर्ण गुण सारे प्रभु! मुक्ता-मोदक से सघन हुए।
अतएव रसास्वादन करते, रे! घनीभूत अनुभूति लिये।।
हे नाथ! मुझे भी अब प्रतिक्षण निज अन्तर वैभव की मस्ती।
है आज अर्घ्य की सार्थकता, तेरी अस्ति मेरी बस्ती।।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।
चौबीसौं श्री जिनचन्द्र, आनन्द-कन्द सही।

पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये।।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः श्रीअनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकर

जल फल आठों दर्व अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनि-हूतैं थुति पूरी न करी है।।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी) बीस विदेह मँझार।।
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जिहाज श्री महाराज हो।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

सीमन्धर भगवान

निर्मल-जल सा प्रभु निज स्वरूप, पहिचान उसी में लीन हुए।
भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये।।
अभिराम-भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।
क्षुत्-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने।।
मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।

फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदिनाथ भगवान

शुचि निर्मल नीरं गन्ध सु अक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।
श्री आदिनाथजी के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मनवचकाय।
हे करुणानिधि भव-दु:ख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पांय।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रप्रभ भगवान

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य मनोरम, हर्षित होकर लाया हूँ।
चिदानन्द चिन्मय पद पाने, प्रभु चरणों में आया हूँ।।
चन्द्र जिनेश्वर चन्द्रनाथ, चन्द्रेश्वर चन्द्रप्रभ स्वामी।
राग-द्वेष परिणति के नाशक, मंगलमय अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतलनाथ भगवान

आत्मानुभूति की प्रीति निज में है जागी।
पाऊँ अनर्घ्य पद नाथ मिथ्यामति भागी।।
हे शीतलनाथ जिनेश शीतलता धारी।
हे शील-सिन्धु शीलेश सब संकट हारी।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वासुपूज्य भगवान

जल-फल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई।।
वासुपूज्य वसुपूज तनुज पद, वासव सेवत आई।

बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनाथ भगवान

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।।
श्री शान्ति जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेमिनाथ भगवान

जल-फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय,
अष्टमथिति के राजकरन कों, जजों अंग वसु नाय।
दाता मोक्ष के, श्री नेमिनाथ जिनराय, दाता मोक्ष के।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेमिनाथ भगवान

आतम हित का दुर्लभ अवसर, महाभाग्य से पाया है।
प्रभो! आप सम निज पद पाने, चित मेरा हुलसाया है।।
भक्तिभाव से अर्घ चढ़ाकर, पूजूँ नेमीश्वर स्वामी।
भाऊँ नित वैराग्य भावना, ज्ञानमयी अन्तर्यामी।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ भगवान

नीर गन्ध अक्षतान्, सु पुष्प चारु लीजिए।
दीप धूप श्रीफलादि, अर्घ्य तैं जजीजिये।।
पार्श्वनाथ देव सेव, आपकी करूँ सदा।

दीजिए निवास मोक्ष, भूलिए नहीं कदा।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ भगवान

पथ की प्रत्येक विषमता को मैं समता से स्वीकार करूँ,
जीवन विकास के प्रिय पथ की, बाधाओं का परिहार करूँ।
अष्ट कर्म आवरणों का प्रभुवर आतंक हटाने को,
वसु द्रव्य संजोकर लाया हूँ, चरणों में नाथ चढ़ाने को।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान

जल-फल वसु सजि हिम-थार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि तार, पूजत पाप हरों।।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति-दायक हो।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचबालयति भगवान

सजि वसु विधि द्रव्य मनोज्ञ, अर्घ्य बनावत हैं।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नसावत हैं।।
श्री वासु पूज्य-मल्लि-नेमि, पारस वीर अति।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयतितीर्थंकरेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदिनाथ-भरत-बाहुबली भगवान

सम्यक् अर्घ्य चढ़ाकर स्वामी, पद अनर्घ्य निश्चित पाऊँ।
मेरी यही प्रार्थना है प्रभु, फिर न लौट भव में आऊँ।।
आदिनाथ प्रभु भरत बाहुबलि की, पूजन कर हर्षाऊँ।

निज स्वरूप की प्राप्ति करूँ मैं, नित नूतन मंगल गाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-भरत-बाहुबलिजिनेन्द्रायः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाहुबली भगवान

पुण्यभाव से स्वर्गादिक पद, बार-बार पा जाता हूँ।
निज अनर्घ्यपद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढ़ाता हूँ।।
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभुवर, चरणों में शीश झुकाता हूँ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को, नाथ शरण में आता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गौतम गणधर स्वामी

वीरनाथ के पहले गणधर, गौतम स्वामी को वन्दूँ।
भक्तिभाव मय अर्घ चढ़ाकर, निज शुद्धातम अभिनन्दूँ।।
विषयाशा आरंभ परिग्रह, तज निर्ग्रन्थ दशा पाऊँ।
ध्याऊँ सहज सिद्ध परमातम, परम सिद्ध पद प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीगौतमगणधरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी

जल चंदन अक्षत फूल चरु चत, दीप धूप अतिफल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।.
सो जिनवर-वानी, शिव-सुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूत-सरस्वतीदेव्यै नमोऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्त-ऋषि मुनिराज

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ्य कीजे पावना।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमनु-सुरमनु-श्रीनिश्चय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस-जयमित्र-सप्त ऋषिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्दकुन्दाचार्य देव

श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव का दर्शन मंगलकारी है।
श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव की वाणी जग हितकारी है।।
चिर का भूला शुद्धातम, शुद्ध नय से शुद्ध दिखाया है।
अर्घ-चढ़ाते आराधन का, भाव हृदय उमगाया है।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थ सूत्र

श्री उमास्वामी रचित तत्त्वार्थसूत्र महान है।
सप्त तत्त्वों का सही देता हमें सद्ज्ञान है॥
अतएव श्री उमास्वामी एवं ग्रंथ को बहुमान से।
पूजूँ समझ हिय में धरूँ, छूटूँ जगत दुख खान से॥

ॐ ह्रीं श्रीउमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्रशास्त्राय नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समवशरण

अद्भुत रचना समवशरण की, प्रभु स्वरूप अविकार है।
दिव्यध्वनि में ध्वनित हो रहा, अहो समय का सार है।।
वीतराग प्रभु के दर्शन से, खुला मुक्ति का द्वार है।
भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ, आनन्द अपरम्पार है।।

ॐ ह्रीं समवशरणमध्यविराजमान श्रीजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानस्तंभ

देखत मान गले मानी का, मानस्तंभ सार्थक नाम।
चतुर्मुखी जिनबिम्ब विराजे, भक्ति सहित मैं करूँ प्रणाम।।
द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाकर, भाऊँ भावना मंगलकार।

ज्ञानमयी निर्मान अवस्था, हे जिनवर! पाऊँ अविकार।।

ॐ ह्रीं मानस्तम्भेषु विराजमान श्रीजिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थक्षेत्र

तीर्थ तत्त्वमय है सदा, ज्ञायक शाश्वत तीर्थ।
अभेद ज्ञायक भावना, है व्यवहार सुतीर्थ।।
ज्ञायक भावना भावते, संत जहाँ तिष्ठाय।
ते ही क्षेत्र सु जगत में, तीर्थक्षेत्र कहलाय।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदादिसर्वतीर्थक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र

जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगत सौं, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाश कों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाण भूमि निवास कों।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकर-निर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोनागिर सिद्धक्षेत्र

पंच महाव्रत, पंच समिति, त्रय गुप्ति न धारण कर पाया।
निज आत्मानुभूति पाने को, भाव अर्घ्य हे प्रभु लाया।।
सिद्धक्षेत्र सोनागिर वन्दूँ, वन्दूँ चन्द्रप्रभ जिनराज।
नंग-अनंग कुमार सु पूजूँ, साढ़े पाँच कोटि मुनिराज।।

ॐ ह्रीं श्रीसोनागिरसिद्धक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रोणगिरी सिद्धक्षेत्र

श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर, गुरुदत्तादिक परम मुनीश्वर।
आत्म साधना कर सुखकारी, पाई पंचमगति अविकारी।।
भक्ति भाव से अर्घ चढ़ाते, सम्यक् तत्त्व भावना भाते।

मोहादिक दुष्कर्म नशावें, आप समीप सु हम भी आवें।।

ॐ ह्रीं श्रीद्रोणगिरीसिद्धक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भविष्यकालीन चौबीस तीर्थंकर

भरतक्षेत्र की भावी चौबीसी को, सविनय है वन्दन।
महापद्म आदि तीर्थंकर चौबीसी को करूँ नमन।।
परम पंचकल्याण विभूषित, तीर्थंकर चौबीस महान।
शुद्धभाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ, करूँ आत्मा का कल्याण।।

ॐ ह्रीं श्रीभविष्यकालीनचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर द्वीप

यह अरघ कियो निज हेतु तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों।।
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुँज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तर-दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-प्रतिमाभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु जिनालय

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करहुँ प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरु-सम्बन्ध्याशीतिजिन-चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण

जलफल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परमगुरु हो जय-जय नाथ परमगुरु हो।।
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।

परमगुरु हो जय-जय नाथ परमगुरु हो।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्म

आठों दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।
भव-आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय धर्म

आठ दरव निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीस चौबीसी भगवान

दरब आठों जु लीना है, अर्घ्य कर में नवीना है।
पूजते पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है।।
द्वीप अढ़ाई सरस राजे, क्षेत्र दश ता विषैं छाजे।
सात शत बीस जिनराजे, पूजते पाप सब भाजे।।

ॐ ह्रीं श्री पञ्चभरतपञ्चैरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिंशतचतुर्विंशते: विंशत्यधिकसप्तशत-तीर्थङ्करेभ्य: नम: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रिकाल चौबीसी

अहो त्रिकाल सम्बन्धी जिनवर, भक्ति भाव से नमन करूँ।
निज त्रैकालिक परम भाव का, मैं भी नित अनुभवन करूँ।।
द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाते, यही भावना भाता हूँ।

साधन-साध्य स्वयं में लखकर, प्रभुवर अति हर्षाता हूँ।

ॐ ह्रीं भूत-भविष्य-वर्तमान-जिनतीर्थंकरेभ्यो-अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय

तीन लोक में अकृत्रिम चैत्यालय अरु जिनबिम्ब महा।
जिनके दर्शन से निज दर्शन, होते हैं सुखदाय अहा।।
उन सब अकृत्रिम जिनबिम्बों, को मैं अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
निज अकृत्रिम भाव लखूँ, बस यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिलोकसम्बन्ध्यकृत्रिम-चैत्य-चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृत्रिम जिनबिम्ब

जिस प्रकार पाषाण खण्ड में, शिल्पी बिम्ब प्रगटाता है।
मंत्र विधि से होय प्रतिष्ठा, त्रिजग पूज्य बन जाता है।।
उस प्रकार मैं निज परिणति में, ज्ञायक का प्रतिबिम्ब धरूँ।
रत्नत्रय से होय प्रतिष्ठा, त्रिजग पूज्य पद प्राप्त करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री कृत्रिमजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय

तीन लोक में राजते, जिनमंदिर अविकार।
अकृत्रिम-कृत्रिम महा, नमहुँ त्रियोग संभार।।
उनमें जो प्रतिबिम्ब हैं, चित्स्वरूप दर्शाय।
करें परम उपकार नित, पूजूँ चित हर्षाय।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिम-चैत्य-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भूत भविष्यत् वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीत्रिकालसम्बन्धित्रिंशत्चतुर्विंशतिभ्य: त्रिलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिम चैत्यचैत्यालयेभ्यश्चार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वसुकोटि छप्पन लाख ऊपर, सहस्र संतानवे मानिये।
शतच्यार पै गिनले इक्यासी, भवन जिनवर जानिये।।
तिहुँलोक भीतर राजते, सुर-असुर नर पूजा करें।
तिन भवन को हम अर्घ्य लेकै, पूजि हैं जग दुख हरैं।।

ॐ ह्रीं श्रीत्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्रचतुश्शतैकाशीति (८, ५६, ९७, ४८१) अकृत्रिम-जिन-चैत्यालयेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्य भक्ति आलोचन चाहूँ, कायोत्सर्ग अघ नासन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीन लोक में, राजत हैं जिनबिंब अनेक।।
चतुर्निकाय के देव जजैं, ले अष्ट द्रव्य निजभक्ति समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूँ मैं, कर समाधि पाऊँ शिवखेत।।

ॐ ह्रीं श्रीकृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिम्बेभ्य:अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से, सकल कर्म की नाशनहार।।
पंच महागुरु सुमिरन करके, कायोत्सर्ग करूँ सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊँगा मैं अब भव पार।।

प्रभु उपकार
आप मिले मानों मिली, मुक्ति ही साक्षात्।
नित्य मुक्त शुद्धात्मा, अन्तर हुआ प्रत्यक्ष॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर कायोत्सर्ग करें)

समुच्चय महाऽर्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवज्झाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशाङ्ग रची गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय, होय पति शिवगेह के।।

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहुविधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं भावपूजा भाववन्दना, त्रिकालपूजा-त्रिकालवन्दना, कर्तव्याकारयितव्या, भावना-भावयितव्या श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः, प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग-द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः, दर्शनविशुद्धयादि-षोडशकारणेभ्यो नमः, उत्तमक्षमादि दशलाक्षणिक-धर्माय नमः, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः, जलमध्ये, स्थलमध्ये, आकाशमध्ये, गुहासु-पर्वतेषु नगर-नगरीषु, ऊर्ध्वलोके-मध्यलोके अधोलोके विराजमानेभ्यः कृत्रिमाकृत्रिम- जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो नमः, विदेहक्षेत्रे विराजमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यो नमः, नन्दीश्वरद्वीपस्थ-द्विपञ्चाशत् जिनचैत्यालयेभ्यो नमः, पंचमेरु- संबन्धि-अशीति-जिनचैत्यालयेभ्यो नमः, श्रीसम्मेदशिखर-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-गिरनार पावागढ़, तुंगीगिरी, गजपंथ, मुक्तागिर, सिद्धवर कूट, ऊन, बड़वानी, पावागिरि, सोनागिर, राजगृही, मन्दारगिरी, द्रोणागिरी, अहारजी शत्रुंजयगिरीत्यादि-सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः, अयोध्या, हस्तिनापुर, कुण्डलपुर, राजगृही-त्यादि तीर्थक्षेत्रेभ्यो नमः, जैनबद्री-मूडबद्रीत्यादि-अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः,

चारणऋद्धिधारि-सप्त परमर्षिभ्यो नमः, इत्यादयेभ्यः सर्व-पूज्यपदेभ्यो नमः, अनर्घ्यपद-प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ-1

(चौपाई)

शान्तिनाथ मुख शशि-उनहारी शील-गुण-व्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजै।।
पंचम चक्रवर्ती पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन-नायक, नमो शांति हित शांति विधायक।।
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तव प्रातिहार्य मनहारी।।
शांति-जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजै हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को।।

(बसन्ततिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट-हार-किरीट लाके।
इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।।
सो शांतिनाथ वर-वंश जगत प्रदीप।
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप।।

(इन्द्रवज्रा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों औ यतिनायकों को।
राजा-प्रजा-राष्ट्र-सुदेश को ले, कीजै सुखी हे जिन! शांति को दे।।

(स्रग्धरा)

होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहे, व्याधियों का अंदेशा।।
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं, जिनवर-वृष को, जो सदा सौख्यकारी।।

(दोहा)

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।

(मन्दाक्रान्ता)

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्संगति का।
सद्वृत्तों का, सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौलौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।

(आर्या)

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं न पाया मुक्ति-पद मैंने।।
अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भव-दुख से।।
हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप कर कायोत्सर्ग करें)

शान्ति पाठ-2

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपति चक्री करें?
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा करें।।
धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जानें, रीति पूजन नाथ जी।
हम भक्ति-वश तुम चरण आगे, जोड़ लीने हाथ जी।। 1।।
दुख-हरण मंगल-करण आशा-भरन, जिन-पूजा सही।
यों चित्त में सरधान मेरे, भक्ति है स्वयमेव ही।।
तुम सारिखे दातार पाए, काज लघु जाचूँ कहा?
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी, यही इक वाँछा महा।। 2।।

संसार भीषण विपिन में, वसुकर्म मिल आतापियो।
तिस दाह तें आकुलित चिर तैं शान्ति-थल कहुँ ना लियो।।
तुम मिले शान्तिस्वरूप शान्ति सु करन समरथ जगपति।
वसु-कर्म मेरे शान्त कर, दो शान्तिमय पंचमगति।। 3।।
जबलौं नहीं शिव लहूँ तबलौं, देह यह नर पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत-अभ्यास आतम-भावना।।
तुम बिन अनन्तानन्त काल, गयौ रुलत जगजाल में।
अब शरण आयो नाथ युग कर जोड़ नावत भाल मैं।। 4।।
कर प्रमाण के मान तैं, गगन नपै किहिं भंत?
त्यौं तुम गुण-वर्णन करत, कवि पावे नहिं अंत।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

विसर्जन पाठ

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय।। 1।।
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करहु भगवान।।2।।
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव।। 3।।
तुम चरणन ढिंग आयके, मैं पूजूँ अति चाव।
आवागमन रहित करो, रमूँ सदा निज भाव।। 4।।

स्तुति पाठ

(चौपाई)

मैं तुम चरण कमल गुण गाय, बहुविधि भक्ति करौं मन लाय।
जनम-जनम प्रभु पाऊँ तोहि, यह सेवा-फल दीजे मोहि।।

कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय।
बार-बार मैं विनती करूँ, तुम सेवा भव सागर तरूँ।।
नाम लेत सब दुख मिट जाय, तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करूँ चरण की सेव।।
मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊँ शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश।।

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लीज्यो भगवान।।
पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावैं मोक्ष निधान।।
जैसी महिमा तुम विषैं, और धरैं नहिं कोय।
जो सूरज में ज्योति है, नहिं तारागण होय।।
नाथ तिहारे नाम तैं, अघ छिन माँहि पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय।।
बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जानूँ नहीं, शरण राखि भगवान।।

धर्म प्रेम वश भक्तिभाव से कीन्ही विधि यह जान अजान।
तुम प्रसाद से पूर्ण हुई अब, जय जय श्री जिनवर गुण गान।।
हीन मंत्र और क्रिया द्रव्य से, शरण गही अब तेरी आन।
भूल हुई हो जो कुछ मुझसे, क्षमा करो हे श्री भगवान।।
तुम चरणन ढिंग आय के, मैं पूजौं अति चाव।
आवागमन रहित करो, रमूँ सदा निज भाव।।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।
(समस्त वीतरागी जिनेन्द्र भगवंतों की जय)

पुण्याह वाचन

(सभी साधर्मी शान्तिधारा करते हुये निम्नानुसार पुण्याहवाचन करें।)

ॐ पुण्याहं पुण्याहं लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाता निर्वाण-सागरप्रभृतयः चतुर्विंशतिः परमदेवाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**(धारा)**

ॐ सम्प्रतिकालसंभवाः वृषभादिवीरान्ताः चतुर्विंशतिः परम जिनेन्द्राः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**(धारा)**

ॐ भविष्यकालअभ्युदयप्रभवाः महापद्मादि चतुर्विंशतिः भविष्यत् परम देवाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**(धारा)**

ॐ विंशति परमदेवाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**(धारा)**

ॐ वृषभसेनादिगणधर देवाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।**(धारा)**

ॐ सप्तर्द्धिविशोभिताः कुन्दकुन्दादि अनेकदिगम्बरसाधुचरणाः वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।

इह वान्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे जिनधर्मपरायणाः भवन्तु। दानतपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु। सर्वे जिनधर्मभक्तानां धनधान्यैश्वर्य बलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्तन्ताम्।

तुष्टिरस्तु, पुष्टिरस्तु, कल्याणमस्तु, अविघ्नमस्तु, आयुष्यमस्तु, आरोग्यमस्तु, कर्मसिद्धिरस्तु, इष्टसम्पत्तिरस्तु, काममांगल्योत्सवाः सन्तु, पापानि शाम्यन्तु, घोराणि शाम्यन्तु, पुण्यं वर्धताम्, धर्मवर्धताम्, श्रीवर्धताम्, कुलं गोत्रं चाभिवर्धताम्। स्वस्तिभद्रं चास्तु, क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः

भाग-3 : विविध पाठ

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

(दोहा)

वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिर नाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार।।
चरम तीर्थंकर चरम शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखर समेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वन्दौं निश-दीस।।
वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वन्दौं भाव सहित कर जोड़ि।।
श्री गिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्भु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय।।
रामचन्द्र के सुत द्वय वीर, लाड़नरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि वन्दौं निरधार।।
पाण्डव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के शीश, भाव सहित वन्दौं निश-दीश।।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँकाल।।
राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणवे मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान।।
नंग-अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईस।।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वय चक्री दश काम कुमार, ऊठ[1] कोडि वन्दौं भव पार।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव सागर तर्ण।।
सुवरण भद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वरशिखर मँझार।
चेलना-नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास।।
फलहोड़ी बड़ग्राम अनूप पश्चिम दिशा द्रोणगिरी रूप।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गये वन्दौं नित तहाँ।।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत संभार।।
अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय।।
वंसस्थल वनके ढिंग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान।।
समवशरण श्री पार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज।।
सेठ सुदर्शन पटना जान, मथुरा से जम्बू निर्वाण।
चरम केवली पंचम काल, ते वन्दौं नित दीन दयाल।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन वच काय सहित सिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुण गाय।।
संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल।।

---

1. साढ़े तीन

स्वयंभू स्तोत्र (भाषा)

(छन्द-चौपाई)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राजत्याग भवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, वन्दौं आदिनाथ गुणखान।।
इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन विनाशक सुखकरतार, वन्दौं अजित अजितपदकार।।
शुक्ल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुक्तिपद सुख अविकार, वन्दौं सम्भव भव-दुःखटार।।
माता पच्छिम रयनि मँझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दौं अभिनन्दन मनलाय।।
सब कु-वादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वामि, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रनाम।।
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं पदमप्रभु सुख की रास।।
इन्द्र फनिन्द्र नरिंद्र त्रिकाल, वाणी सुनि-सुनि होहिं खुस्याल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं सुपारसनाथ निहार।।
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं चन्द्रप्रभ राख समीप।।
द्वादशविधि तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, वन्दौं पुहुपदंत मन आन।।
भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुखदेय, वन्दौं शीतल धर्म-सनेह।।
समता सुधा कोप विषनाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चार संघ-आनन्द-दातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वर सार।।
रत्नत्रय शिर मुकुट विशाल, शोभै कण्ठ सुगुण मणि माल।
मुक्ति-नार-भरता भगवान, वासुपूज्य वन्दौं धरि ध्यान।।

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश।
कर्म नाशि शिव सुख विलसन्त, वन्दौं विमलनाथ भगवन्त।।
अन्तर बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि।
सर्व जीव-हित राह दिखाय, नमौं अनन्त वचन-मन लाय।।
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, अरथ नवो छः दरब बहु भाय।
लोक अलोक सकल परकाश, वन्दौं धर्मनाथ अविनाश।।
पंचम चक्रवर्ति निधिभोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ वन्दौं हरषाय।।
बहु थुति करै हरष नहिं होय, निंदे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वन्दौं कुन्थुनाथ शिवभूप।।
द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, वन्दौं अर जिनवरपद दोय।।
पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह-भव ब्याह समय वैराग।
बाल-ब्रह्म पूरन व्रत धार, वन्दौं मल्लिनाथ जिनसार।।
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करै पग लाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं।।
श्रावक विद्यावंत निहार, भगति-भाव सौं दियो अहार।
बरसी रतन-राशि तत्काल, वन्दौं नमिप्रभु दीनदयाल।।
सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वै बन्धन तोर।
रजमति तजि शिवतिय सों मिले, नेमिनाथ वन्दौं सुख निले।।
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठशठ मुख कर श्याम, नमों मेरु सम पारस स्वामि।।
भव-सागर तैं जीव अपार, धरम पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान वन्दौं बहुबार।।

दोहा- चौबीसों पद-कमल जुग, वन्दौं मन-वच-काय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय।।

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र

(छन्द-भुजंगप्रयात)

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं, नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं।। 1।।
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै।
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै, महारोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै।। 2।।
दुखीदु:खहर्ता सुखीसुक्खकर्ता, सदा सेवकों को महानंदभर्त्ता।
हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं।।3।।
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनकौं तूं भले पुत्र कीने।
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता।। 4।।
महाचोर को वज्र का भय निवारै, महापौन के पुंजतैं तू उबारै।
महाक्रोध की अग्नि को मेघ-धारा, महालोभ शैलेश को वज्र भारा।।5।।
महामोह अन्धेर को ज्ञान भानं, महाकर्मकांतार को द्वौ प्रधानं।
किये नाग नागिन अधोलोकस्वामी, हर्‌यो मान तू दैत्य को हो अकामी।।6।।
तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं।
पशू नर्क के दु:खतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग में मुक्ति में तू बसावै।। 7।।
करे लोह को हेमपाषाण नामी, रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।
करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा।। 8।।
जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे।। 9।।

(दोहा)

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान।। 10।।

महावीराष्टक स्तोत्र

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।। 1।।
अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्द-रहितं,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः)।। 2।।
नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।3।।
यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुखसमाजं किमु तदा,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।4।।
कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत - तनुर्ज्ञान - निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः।

अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोऽद्भुत-गतिः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।5।।
यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।6।।
अनिर्वारोद्रेक -स्त्रिभुवनजयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पदराज्याय स जिनः,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।7।।
महामोहातङ्क - प्रशमन - पराकस्मिन्भिषग्[1],
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तमगुणो,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ।।8।।

(अनुष्टुप)

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्।।9।।

आत्म संयम

सदा संयमी पुरुष बिताते है कठोर अपना जीवन।
सतत किया करते हैं अपनी इच्छाओं का घोर दमन॥
सुख विलासताओं से उनको कभी न होता है अनुराग।
नित्य साधनाओं में ही जीवन का जाता है बहुभाग॥

1. उत्कृष्ट वैद्य

आलोचना पाठ

(दोहा)

वंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज।।1।।

(छन्द-सखी)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काज, तुम सरन लही जिनराज।। 2।।
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।। 3।।
समरंभ, समारंभ, आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।। 4।।
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।। 5।।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने।। 6।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो।। 7।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर-वनितासों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीने, पन पाप जु या विधि कीने।। 8।।
सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने।। 9।।
फल पंच उदंबर खाये, मधु माँस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसनन सेये दुखकारे।। 10।।
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो।। 11।।

अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये।। 12।।
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।। 13।।
निद्रावश शयन करायो, सुपने मधि दोष लगायो।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विषफल खायो।। 14।।
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई।। 15।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुध बुध नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय रही है।। 16।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान-विषैं सब पइये।। 17।।
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करूणा नहिं लीनी।। 18।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जाँगा चिनाई।
विन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन विलोल्यो।। 19।।
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।। 20।।
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अग्नि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये।। 21।।
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जाँगा बुहारी, चिंउटी आदिक जीव बिदारी।। 22।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हूँ पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।। 23।।
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।। 24।।

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारै धूप डराया।। 25।।
पुनि द्रव्य कमावन काज, बहु आरंभ हिंसा साज।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।। 26।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई।। 27।।
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै?।। 28।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।। 29।।
इक गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अंतरजामी।। 30।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीताप्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अंतरजामी।। 31।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटो अंतरजामी।। 32।।
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै।। 33।।

(दोहा)

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।।34।।
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिए, चरण शरन आनन्द।।35।।

मेरी-भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।। 1।।
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।। 2।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ।। 3।।
अहंकार का भाव न रक्खूँ , नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।। 4।।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।। 5।।
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।। 6।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।। 7।।
होकर सुख में मग्न न फूलें, दुख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे।। 8।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे।। 9।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे।। 10।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करे।। 11।।

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।। 1।।
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ न राखन हार।। 2।।
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।। 3।।
आप अकेला अवतरे, मरे अकेलो होय।
यों कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।। 4।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।। 5।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन गेह।। 6।।
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।। 7।।
सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं।। 8।।
ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर।। 9।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।। 10।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।। 11।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।। 12।।
जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।। 13।।

समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ ।।
शत्रु अगर कोई हो सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊँ।।
त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ ।।
जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुम से ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ ।।
आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ ।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊँ ।।
धर्मात्मा निकट हों, चरचा धरम सुनावें।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ।।
जीने की हो न वाञ्छा मरने की हो न इच्छा ।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ ।।
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ ।।
रत्नत्रय का हो पालन हो अन्त में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ।।

समाधिमरण (भाषा)

परम पंच परमेष्ठी का ध्यान धर, परं ब्रह्म का रूप आया नजर।
परं ब्रह्म की मुझको आई परख,हुआ उर में सन्यास का अब हरष।।1।।
लगन आत्मा राम सों लग गई, मेरी मोह निद्रा सभी भग गई।
खुली दृष्टि चैतन्य चिद्रूप पर, टिकी आन कर ब्रह्म के रूप पर।।2।।
परम रस की अब तो गटागट मेरे, शुद्धातम रहस की रटारट मेरे।
यहाँ आज रोने का क्या शोर है,मेरे हर्ष आनंद का जोर है।। 3।।
निरंजन की कथनी सुनाओ मुझे, न कुछ और बतियां बताओ मुझे।
न रोओ मेरे पास इस वक्त में, मैं तिष्ठा हूँ खुशहाल खुश वक्त में।।4।।
जरा रोने का अब तअम्मुल करो, नजर मेहरवानी की मुझ पर धरो।
उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब, तजो मोह मिथ्यात्व का भय विडम्ब।।5।।
जरा आत्मा भाव उर आने दो, परं ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो।
मुझे ब्रह्म चर्चा में वर्ते हुलास,करो और चर्चा न तुम मेरे पास।। 6।।
जो भावे तुम्हें सो न भावे मुझे, न झगड़ा जगत का सुहावे मुझे।
ये काया पे पुटकी पड़ी मौत की, निदा[1] आई शिवलोक के नाथ की।।7।।
कि ये देह चिरकाल की है मुई, मेरी जिन्दगानी से जिन्दा भई।
तजा मैंने नफरत से ये मुर्दा आज, चलो यार अब चल करें मुक्ति राज।।8।।
जिसम झौपड़ी को लगी आग जब, हुई मेरे वैराग्य की जाग तब।
संभाले ये अपने रतन मैंने तीन, लिया ब्रह्म अपने को मैं आप चीन्ह।।9।।

---

1. याद

जिसे मौत है उसको है मुझको क्या? मुझे तो नहीं भय फिर मुझको क्या?
मेरा नाम तो जीव है, जीव हूँ, चिरंजीव चिरकाल चिरजीव हूँ।। 10।।
अखंडित, अमंडित अरूपी अलख, अदेही अगेही अनेही निरख।
परं ब्रह्मचर्य, परम शान्ततम,निरालोक लोकेश लोकान्ततम।। 11।।
परम ज्योति परमेश परमात्मा, परम शुद्ध पर सिद्ध शुद्धात्मा।
चिदानन्द चैतन्य चिद्रूप हूँ, निरंजन निराकार शिवभूप हूँ।। 12।।
ये देह तज कर चले आज हम, चिता में धरो इसको ले जाके तुम।
कहीं जाओ यह देह क्या इससे काम, तजी इससे रगवत मोहब्बत तमाम।। 13।।
मुवे संग रहकर बहुत कुछ मुये, मगर आज निरगुण निरंजन भये।
मिली आज सन्यास की यह घड़ी, मेरे हाथ आई ये अद्भुत जड़ी।। 14।।
विषय विष से निर्विष हुआ आज मैं, चला चल से निश्चल हुआ आज मैं।
परम भाव अमृत पिया आज मैं, नरभव का लाहा लिया आज मैं।। 15।।
घटा आत्म उपयोग की आई झूम, अजब तुर्फ तुरियां बनी रंग भूमि।
शुक्लध्यान टाली की टंकोर है, निजानंद झांझन की झंकोर है।। 16।।
अजर हूँ अमर हूँ, न मरता कभी,चिदानन्द शाश्वत, न डरता कभी।
कि संसार के जीव मरते डरें,परम पद का 'शिवलाल' वन्दन करे।। 17।।

लक्ष्य हमारा है यही, आत्मा को निज जान।
अन्य सभी परद्रव्य हैं, उनको पर ही मान॥
तोड़ सभी सम्बन्ध मैं निज में स्थिति कराय।
निज में ही चिर थिर रहूँ, ज्ञानानन्द लहाय॥

बाईस परीषह

(छन्द-छप्पय)

क्षुधा तृषा हिम ऊश्न डंसमसक दुख भारी।
निरावरण तन-अरति वेद-उपजावन नारी।।
चरया आसन शयन दुष्ट वायक बधबन्धन।
याचैं नहीं अलाभ रोग तृण परस होय तन।।
मल जनित मान सनमान वश प्रज्ञा और अज्ञान कर।
अदर्शन मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर।।

(दोहा)

सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम।
इनके दुख को मुनि सहैं, तिन प्रति सदा प्रणाम।।

(1) क्षुधा परीषह

अनसन ऊनोदर तप पोषत, पक्ष मास दिन बीत गये हैं।
जो नहिं बने योग्य भिक्षाविधि, सूख अंग सब शिथिल भये हैं।।
तब तहाँ दुस्सह भूख की वेदन, सहत साधु नहिं नेक नये हैं।
तिनके चरण कमल प्रति प्रतिदिन, हाथ जोड़ हम शीश नये हैं।।

(2) तृषा परीषह

पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लेंय कहैं कुछ नाहीं।
प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत, बढ़त प्यास की त्रास तहाँ ही।।
ग्रीष्म काल पित्त अति कौपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं।
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवन्ते वर्तो जग माहीं।।

(3) शीत परीषह

शीत काल सबही जन कम्पत, खड़े तहाँ वन वृक्ष डहे हैं।
झंझा वायु चलै वर्षा ऋतु, वर्षत बादल झूम रहे हैं।।

तहाँ धीर तटनी तट चौपट, ताल पाल पर कर्म दहे हैं।
सहैं संभाल शीत की बाधा, ते मुनि तारण-तरण कहे हैं।।

(4) उष्ण परीषह

भूख प्यास पीड़ै उर अंतर, प्रजुलैं आँत देह सब दागै।
अग्नि सरूप धूप ग्रीषम की, ताती वायु झालसी लागै।।
तपैं पहाड़ ताप तन उपजति, कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक गर्मी की बाधा, सहैं साधु धीरज नहिं त्यागैं।।

(5) डंसमसक परीषह

डंसमश्क माखी तनु काटैं, पीड़ैं वन पक्षी बहु तेरे।
डसैं व्याल विषहारे बिच्छू, लगैं खजूरे आन घनेरे।।
सिंह स्याल सुंडाल सतावैं, रीछ रोझ दु:ख देहिं घनेरे।
ऐसे कष्ट सहैं समभावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे।।

(6) नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना वरतै, बाहर लोक-लाज भयभारी।
यातैं परम दिगम्बर मुद्रा, धर नहिं सकैं दीन-संसारी।।
ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह, जीतैं साधु शील व्रत धारी।
निर्विकार बालक वत् निर्भय, तिनके चरणों धोक हमारी।।

(7) अरति परीषह

देश काल का कारण लहि कैं, होत अचैन अनेक प्रकारैं।
तब तहाँ खिन्न होत जगवासी, कल-मलाय थिरता पद छाड़ैं।।
ऐसी अरति परीषह उपजत, तहाँ धीर धीरज उर धारैं।
ऐसे साधुन को उर अन्तर, बसो निरन्तर नाम हमारैं।।

(8) स्त्री परीषह

जो प्रधान केहरि[1] को पकड़ै, पन्नग पकड़ पान से चापैं[2]।
जिनकी तनक देख भौं बाँकी, कोटिन सूर दीनता जापैं।।
ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन, प्रलय पवन तिय वेद पयापैं[3]।
धन्य-धन्य वे सूर साहसी, मन सुमेर जिनका नहिं कापैं।।

(9) चर्या परीषह

चार हाथ परवान परख पथ, चलत दृष्टि इत उत नहिं तानैं।
कोमल चरण कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहिं मानैं।।
नाग तुरंग पालकी चढ़ते, ते सर्वादि याद नहिं आनैं।
यों मुनिराज सहैं चर्या दुख, तब दृढ़ कर्म कुलाचल भानैं।।

(10) आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर, निवसैं जहाँ शुद्ध भू हेरैं।
परिमित काल रहैं निश्चल तन, बार-बार आसन नहिं फेरैं।।
मानुष देव अचेतन पशुकृत, बैठे विपति आन जब घेरैं।
ठौर न तजैं भजैं थिरता पद, ते गुरु सदा बसो उर मेरैं।।

(11) शयन परीषह

जो प्रधान सोने के महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं।
ते अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमि पर सोवैं।।
पाहन खण्ड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नहिं होवैं।
ऐसो शयन परीषह जीतैं, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं।।

---

1. सिंह 2.पकड़ता है 3. पर्याप्त

(12) आक्रोश परीषह

जगत जीव जावन्त चराचर सबके हित सबको सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहैं खल, पाखण्डी ठग यह अभिमानी।।
मारो याहि पकड़ पापी को, तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे वचन-बाण की बेला,क्षमा ढाल ओढ़ैं मुनि ज्ञानी।।

(13) वध-बन्धन परीषह

निरपराध निर्बैर महामुनि, तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं।
कोई खैंच खंभसै बाँधे, कोई पावक में परजारैं।।
तहाँ कोप करते न कदाचित्, पूरब कर्म विपाक विचारैं।
समरथ होय सहैं वध बंधन, ते गुरु भव-भव शरण हमारैं।।

(14) याचना परीषह

घोर वीर तप करत तपोधन, भये क्षीण सूखो गल वांही।
अस्थि चाम अवशेष रहो तन, नसा जाल झलकै तिसमाहीं।।
औषधि असन पान इत्यादिक, प्राण जाएँ पर जाचत नाहीं।
दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारैं, करैं न मलिन धरम परछाहीं।।

(15) अलाभ परीषह

एक बार भोजन की बेला, मौन साध बस्ती में आवैं।
जो नहिं बनै योग्य भिक्षा विधि, तो महन्त मन खेद न लावैं।।
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतैं, तब तप वृद्धि भावना भावैं।
यो अलाभ को परम परीषह, सहैं साधु सो ही शिव पावैं।।

(16) रोग परीषह

वात पित्त कफ श्रोणित चारों, ये जब घटै बढ़ै तनु माहीं।
रोग संयोग शोक जब उपजत, जगत जीव कायर हो जाहीं।।

ऐसी व्याधि वेदना दारुण[1], सहैं सूर उपचार न चाहीं।
आतम लीन विरक्त देह सौं, जैनयती निज नेम निवाहीं।।

(17) तृण स्पर्श परीषह

सूखे तृण अरु तीक्षण कांटे, कठिन कांकरी पाय विदारैं।
रज उड़ आन पड़े लोचन में, तीर फाँस तनु पीर विथारैं।।
तापर पर-सहाय नहिं वांछत,अपने कर सैं काढ़ न डारैं।
यों तृण परस परीषह विजयी, ते गुरु भव-भव शरण हमारैं।।

(18) मल परीषह

यावज्जीवन जल-न्हौन तजो जिन, नग्न रूप वन थान खड़े हैं।
चलै पसेव धूप की बेला,उड़त धूल सब अंग भरे हैं।।
मलिन देह को देख महा-मुनि,मलिन भाव उर नाहिं करैं हैं।
यो मल जनित परीषह जीतैं, तिनहिं हाथ हम शीस धरे हैं।।

(19) सत्कार-पुरस्कार परीषह

जो महान विद्या निधि विजयी, चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं।
तिनकी विनय वचन से अथवा, उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं।।
तो मुनि तहाँ खेद नहिं मानत, उर मलीनता भाव हरे हैं।
ऐसे परम साधु के अह-निशि, हाथ जोड़ हम पांय परे हैं।।

(20) प्रज्ञा परीषह

तर्क छन्द व्याकरण कला निधि,आगम अलंकार पढ़ जानैं।
जाकी सुमति देख परवादी, विलखत होंय लाज उर आनैं।।
जैसे सुनत नाद केहरि का, वन गयंद भाजत भय मानैं।
ऐसी महाबुद्धि के भाजन, पर मुनीश मद रंच न ठानैं।।

---

1. तीव्रतम

(21) अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशि-वासर, संयम सूर परम वैरागी।
पालत गुप्ति गये दीरघ दिन, सकल संग ममता पर त्यागी।।
अवधिज्ञान अथवा मनपर्यय, केवल ऋद्धि न अजहूँ जागी।
यों विकल्प नहिं करैं तपो निधि, सो अज्ञान विजयी बड़भागी।।

(22) अदर्शन परीषह

मैं चिरकाल घोर तप कीना, अजौं ऋद्धि अतिशय नहिं जागैं।
तप-बल सिद्ध होत सब सुनयत, सो कछु बात झूठ सी लागैं।।
यों कदापि चित में नहिं चिंतत, समकित शुद्ध शान्ति रस पागैं।
सोई साधु अदर्शन विजयी, ताके दर्शन से अघ भागैं।।

किस कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह होते हैं-

(सवैया)

ज्ञानावरणी तैं दोई प्रज्ञा अज्ञान होई,
एक महा मोह तैं अदर्शन बखानिये।
अन्तराय कर्म सेती उपजै अलाभ दुख,
सप्त चारित्र मोहनीय के बल जानिये।।
नगन निषध्या नारि मान-सन्मान गारि,
याचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये।
एकादश बाकी रही वेदनीय उदय से कही,
बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये।।

(छन्द-अडिल्ल)

एक बार इन माहिं एक मुनि के कही।
सब उनीस उत्कृष्ट उदय आवैं सही।।
आसन शयन विहार दोय, इन माहिं की।
शीत उष्ण में एक तीन ये नाहिं की।।

बारहमासा-बज्रदन्त चक्रवर्ती

(सवैया)

वन्दूँ मैं जिनन्द परमानन्द के कन्द,
जगवन्द्य विमलेंदु जड़ ताप हरन कूँ।
इन्द्र धरणिन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र जाहि,
सेवै राव रंक भव सागर तरन कूँ।।
निर्बन्ध निर्द्वन्द दीनबन्धु दया सिन्धु,
करैं उपदेश परमारथ करन कूँ।
गावैं 'नैनसुखदास' बज्रदन्त बारहमास,
मेटो भगवन्त मेरे जन्म-मरन कूँ।। 1।।

(दोहा)

बज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मनलाय।
कर्मकाट शिवपुर गये, बारह भावन भाय।।2।।

(सवैया)

बैठ बज्रदन्त आय अपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं।
इन्द्र कैसे भोगसार राणी छाणवे हजार,
पुत्र एक सहस्र महान गुणगार हैं।।
जाके पुण्य प्रचण्ड से नये हैं बलबंत शत्रु,
हाथ जोड़ मान छोड़ सबै दरबार हैं।
ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली तामें,
देखो अलि अम्बुज मरण भयकार है।।3।।
अहो ! यह भोग महा पाप को संयोग देखो,
डाली में कमल, तामें भौंरा प्राण हरे हैं।
नाशिका के हेतु भयो भोग में अचेत सारी,
रैन के कलाप में विलाप इन करे हैं।।

हम तो पाँचों ही के भोगी भये जोगी नाहीं,
विषय कषायनि के जाल माहिं परे हैं।
जो न अब हित करूँ जाने कौन गति परूँ,
सुतन बुलाके यों वच अनुसरे हैं।। 4।।
अहो सुत जग रीति देख के हमारी नीत,
भई है उदास वनोवास अनुसरैंगे।
राज भार शीस धरो, परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सूँ लरेंगे।।
सुनत वचन, तब कहत कुमार सब,
हम तो उगाल कूँ न अङ्गीकार करेंगे।
आप बुरो जान छोड़ो, हमें जग जाल बोड़ो,
तुमरे ही संग महाव्रत हम धरेंगे।। 5।।

(चौपाई)

सुत असाढ़ आयो पावस काल, सिर पर गर्जत यम विकराल।
लेहु राज सुख करहुँ वीनती, हम वन जाय बड़ेन की रीति।। 6।।

(छन्द-गीत)

जाय तप के हेतु वन को भोग तज संयम धरैं।
तज ग्रन्थ सब निर्ग्रन्थ हो, संसार सागर से तरैं।।
यही हमारे मन बसी तुम रहो धीरज धार के।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।। 7।।

(चौपाई)

पिता राज तुम कीनो बौन, ताहि ग्रहण हम समरथ कौन।
यह भौंरा भोगन की व्यथा, प्रगट कर कंगन यथा।। 8।।

(छन्द-गीत)

यथा कर का कांगना सन्मुख प्रगट नजरा परे।
त्यों ही पिता भौंरा निरखि, भव भोग से मन थर हरे।।
तुमने तो वन के वास ही का सुक्ख अङ्गीकृत किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया?।। 9।।

(चौपाई)

श्रावण पुत्र कठिन वनवास, जल थल शीत पवन के त्रास।
जो नहिं पले साधु आचार तो मुनि भेष लजावे सार।। 10।।

(छन्द-गीत)

लाजे श्री मुनि भेष तातैं देह को साधन करो।
सम्यक्तयुत व्रत पंच में तुम देशव्रत मन में धरो।।
हिंसा असत चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 11।।

(चौपाई)

पिता अङ्ग यह हमरो नाहीं, भूख-प्यास पुद्गल परछाईं।
पाय परीषह कबहुँ नहिं भजैं, धर सन्यास मरण तन तजैं।। 12।।

(छन्द-गीत)

सन्यास धर तनकूँ तजैं नहिं डंस मसक से डरैं।
रहें नग्न तन वन खंड में जहाँ मेघ मूसल जल परै।।
तुम धन्य हो बड़भाग तज के राज तप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया।। 13।।

(चौपाई)

भादों में सुत उपजे रोग, आवें याद महल के भोग।
जो प्रमाद बस आसन टले, तो न दयाव्रत तुमसे पले।। 14।।

(छन्द-गीत)

जब दयाव्रत नहिं पले तब उपहास जग में विस्तरे।
अर्हंत और निर्ग्रन्थ की कहो कौन फिर सरधा करे।।
तातैं करो मुनि दान पूजा, राज काज सम्भाल के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 15।।

(चौपाई)

हम तज भोग चलेंगे साथ, मिटे रोग भव-भव के तात।
समता मंदिर में पग धरैं, अनुभव अमृत सेवन करैं।। 16।।

(छन्द-गीत)

करें अनुभव पान आतम, ध्यान वीणा कर धरें।
आलाप मेघ मल्हार सो हैं सप्तभंगी स्वर भरें।।
धृग-धृग पखावज भोग कूँ सन्तोष मन में कर लिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 17।।

(चौपाई)

आसुज भोग तजे नहिं जाहिं, भोगी जीवन को डसि खाहिं।
मोह लहर जिय की सुध हरे, ग्यारह गुणथानक चढ़ गिरे।। 18।।

(छन्दः-गीत)

गिरे थानक ग्यारवें से, आये मिथ्या भू परे।
बिन भाव की थिरता जगत में चतुर्गति के दुख भरे।।
रहे द्रव्यलिंगी जगत में, बिन ज्ञान पौरुष हार के।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के।। 19।।

(चौपाई)

विषय विडार पिता तन कसें, गिर कन्दर निर्जन वन बसें।
महामंत्र को लखि परभाव, भोग भुजङ्ग न घालें घाव।। 20।।

(छन्द:गीत)

घालें न भोग भुजङ्ग तब, क्यों मोह की लहरा चढ़े।
परमाद तज परमात्मा प्रकाश जिन आगम पढ़े।।
फिर काललब्धि उद्योत होय, सुहोय यों मन थिर किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 21।।

(चौपाई)

कार्तिक में सुत करें विहार काँटे-काँकर चुभें अपार।
मारें दुष्ट खैंच के तीर, फाटे उर थरहरे शरीर।। 22।।

(छन्द-गीत)

थर हरे सगरी देह अपने हाथ काढ़त नहिं बनें।
नहिं और काहू से कहें, तब देह की थिरता हनें।।
कोई खेंच बाँधे थम्म से कोई खाय आंत निकार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 23।।

(चौपाई)

पद-पद पुण्य धरा में चलें, काँटे पाप सकल दलमलें।
क्षमा ढाल तल धरें शरीर, विफल करें दुष्टन के तीर।। 24।।

(छन्द-गीत)

कर दुष्ट जन के तीर निष्फल दयाकुंजर पर चढ़ें।
तुम संग समता खड्ग लेकर अष्टकर्मन से लड़ें।।
धन धन्य यह दिनवार प्रभु तुम योग का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 25।।

(चौपाई)

अगहन मुनि तटनी तट रहें, ग्रीष्म शैल शिखर दुख सहें।
पुनि जब आवत पावस काल, रहें साधुजन वन विकराल।। 26।।

(छन्द-गीत)

रहें वन विकराल में जहाँ सिंह स्याल सतावहीं।
कानों में बीछू बिल करें और व्याल तन लिपटावहीं।।
दे कष्ट प्रेत पिशाच आन अङ्गार पाथर डार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 27।।

(चौपाई)

हे प्रभु बहुत बार दुःख सहे, बिना केवली जाय न कहे।
शीत उष्ण नर्कन के तात करत याद कम्पे भव गात।। 28।।

(छन्द-गीत)

गात कम्पे नर्क से लहे शीत उष्ण अथाह ही।
जहाँ लाख योजन लोह पिण्ड सुहोय जल गल जाय ही।।
असिपत्र वन के दुख सहे, परवस स्ववस तप ना किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया।। 29।।

(चौपाई)

पौष अर्थ अरु लेहु गयंद, चौरासी लख-लख सुखकन्द।
कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु, लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु।। 30।।

(छन्द-गीत)

लेहु हल लख कोड़ि, षटखण्ड भूमि अरु नवनिधि बड़ी।
लो देश की ये विभूति हमरी, राशि रत्नन की पड़ी।।
धर देहुँ सिर पर छत्र तुमरे नगर धोख उचारि के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 31।।

(चौपाई)

अहो कृपानिधि तुम परसाद, भोगे भोग सबै मरयाद।।
अब न भोग की हमकूँ चाह, भोगन में भूले शिव राह ।। 32।।

(छन्द-गीत)

राह भूले मुक्ति की, बहुबार सुरगति संचरै।
जहाँ कल्पवृक्ष सुगंध सुन्दर, अप्सरा मन को हरै।।
उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पी कै दिन जिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया?।। 33।।

(चौपाई)

माघ सधै न सुरन तैं सोय, भोग भूमियन तैं नहिं होय।
हर-हरि अरु प्रतिहरि से वीर, संयम हेत धरें नहिं धीर।। 34।।

(छन्द-गीत)

संयम कूँ धीरज नहिं धरैं नहिं टरे रण में युद्ध सूँ।
जो शत्रु गण गजराज कूं दलमले पकर विरुद्ध सूँ।।
पुनि कोटि सिल मुद्गर समानी देय फेंक उपार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 35।।

(चौपाई)

बंध योग उद्यम नहिं करैं, एतो तात कर्म फल भरें।
बाँधे पूरव भव गति जिसी, भुगतें जीव जगत में तिसी।। 36।।

(छन्द-गीत)

जीव भुगतें कर्म फल, कहो कौन विधि संयम धरैं?
जिन बंध जैसा बाँधियों, तैसा ही सुख-दुख सों भरैं।।
यो जान सबको बंध में, निर्बंध का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 37।।

(चौपाई)

फागुन चाले शीतल वायु, थर-थर कम्पे सबकी काय।
तब ही बंध विदारण हार, त्यागें मूढ़ महाव्रत सार।। 38।।

(छन्द-गीत)

सार परिग्रह व्रत विसारें अग्नि चहुँदिशि जार हीं।
करें मूढ़ सीत वितीत, दुर्गति गहें हाथ पसार हीं।।
सो होय प्रेत पिशाच भूतरु ऊत शुभगति टार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 39।।

(चौपाई)

हे मतिवन्त कहा तुम कही, प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ कच्छ की काय, सहे दुःख जलचर परजाय।। 40।।

(छन्द-गीत)

पाय पशु परजाय परवस रहे, सींग बधाय के।
जहाँ रोम-रोम कम्पे, मरे तन तरकाय के।।
फिर गेर चाम उबेर स्वान सिचना मिल श्रोणित पिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 41।।

(चौपाई)

चैत लता मदनोदय होय, ऋतु बसन्त में फूले सोय।
तिन की इष्ट गन्ध के जोर, जागे काम महाबल फोर।। 42।।

(छन्द-गीत)

फोर बल को काम जागै लेय मनपुर छीन ही।
फिर ज्ञान परम निधान हरि के करे तेरा तीन ही।।
इतके न उतके तब रहै गय कुगति दोऊ कर झारि के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के।। 43।।

(चौपाई)

ऋतु बसन्त वन में नहिं रहें, भूमि पाषाण परीषह सहें।
जहाँ नहिं हरित काय अंकूर, उड़त निरन्तर अहि-निशि धूर।। 44।।

(छन्द-गीत)

उड़े वन की धूरि निशि-दिन लगें कांकर आय के।
सुन शब्द प्रेत प्रचण्ड के काम जाय पलाय के।।
मत कहो अब कुछ और प्रभु भव भोग सौं मन काँपिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया?।। 45।।

(चौपाई)

मास वैशाख सुनत अरदास, चक्री मन उपज्यो विश्वास।
अब बोलन को नाहीं ठौर, मैं कहूँ और पुत्र कहें और।। 46।।

(छन्द-गीत)

और अब कछु मैं कहूँ नहिं, रीति जग की कीजिए।
एक बार हमसे राज लेके, चाहे जिसको दीजिए।।
पोता था एक षट्मास का, अभिषेक कर राजा कियो।
पितु संग संग जगजाल सेती, निकस वन मारग लियो।। 47।।

(चौपाई)

उठे बज्रदंत चक्रेश, तीस सहस भूप तजि अवलेश।
एक हजार पुत्र बड़ भाग, साठ सहस्र सती जग त्याग।। 48।।

(छन्द-गीत)

त्याग जग कूँ ये चले सब भोग तज ममता हरी।
समभाव कर तिहुँलोक के जीवों से यों विनती करी।।
अहो जेते जीव जग में, क्षमा हम पर कीजिये।
हम जैन दीक्षा लेत हैं, तुम बैर सब तज दीजिये ।। 49।

(छन्द-गीत)

बैर सबसे हम तजा, अर्हन्त का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साधु की शरण, सर्वज्ञ के मत चित दिया।।
यों भाष पिहिताश्रव गुरुन ढिंग जैन दीक्षा आदरी।
कर लौंच तज के सोच सबने, ध्यान में दृढ़ता धरी।। 50।।

(चौपाई)

जेठ मास लू ताती चले, सूकैं सर कपिगण मदगलैं।
ग्रीषम काल शिखर के शीस, धरो आतापन योग मुनीश।। 51।।

(छन्द-गीत)

धरयोग आतापन सुगुरु तब शुक्लध्यान लगाइयो।
तिहूँ लोक भानु समान केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो।।
बज्रदन्त मुनीश जग तज, धर्म के सन्मुख भये।
निज काज अरु पर काज करके समय में शिवपुर गये।। 52।।

(चौपाई)

सम्यक्त्वादि सुगुण आधार, भये निरंजन निर-आकार।
आवागमन तिलांजलि दई सब जीवन की शुभगति भई।। 53।।

(छन्द-गीत)

भई शुभगति सबन की, निज शरण जिनपति की लई।
पुरुषार्थसिद्धि उपाय से, परमारथ की सिद्धी भई।।
जो पढ़े बारामास भावन भाय, चित्त हुलसाय के।
तिनके हों मंगल नित नये अरु विघ्न जाय पलायके।। 54।।

(दोहा)

नित-नित तब मंगल बढ़ें, पढ़ें जो यह गुणमाल।
सुरगन के सुख भोग कर, पायें मोक्ष रसाल।। 55।।

(सवैया)

दो हजार माहितें तिहत्तर घटाय,
अब विक्रम को संवत् विचार कै धरत हूँ।
अगहन असि त्रयोदशी मृगांक बार,
अर्द्धनिशा माहिं याहि पूर्ण करत हूँ।।
इति श्री बज्रदन्त चक्रवर्ती को वृतान्त,
रचि के पवित्र नैन आनन्द भरत हूँ।
ज्ञानवन्त करो शुद्ध जान मेरी बालबुद्धि,
दोष पै न रोष करो पायन परत हूँ।।56।।

।। इति बज्रदन्त चक्रवर्ती बारहमासा सम्पूर्णम्।।

जकड़ी-1

अब मन मेरे बे, सुन-सुन सीख सयानी।
जिनवर चरना बे, कर-कर प्रीति सुज्ञानी।।
कर प्रीति सुज्ञानी शिव सुखदानी, धन जीवत है पंच दिना।
कोटि बरस जीवौ किस लेखे, जिन चरणाबुंज भक्ति बिना?।।
नर परजाय पाय अति उत्तम गृहवसि यह लाहा लेरे।
समझ-समझ बोलैं गुरु ज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे।। 1।।

तू मति तरसै बे, संपति देख पराई।
बोये लुनि ले बे, जो निज पूर्व कमाई।।
पूर्व कमाई संपत्ति पाई देखि-देखि मति झूर मरै।
बोय बँबूल शूल तरु भोंदू, आमन की क्यों आस करै?।।
अब कछु समझ-बूझ नर तासौं, ज्यों फिर परभव सुख दरसै।
कर निज-ध्यान दान तप संजम देखि विभव पर मत तरसै।। 2।।

जो जगदीसै बे, सुंदर अर सुखदाई।
सो सब फलिया बे, धरम-कल्पद्रुम भाई।।
सो सब धर्म कल्पद्रुम के फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही।
तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छह खंड मही।।
रति उनहार रूप की सीमा, सहस छयानवै नारि वरै।
सो सब जान धर्म फल भाई, जो जग सुंदर दृष्टि परै।। 3।।

लगैं असुंदर बे, कंटकवान घने रे।
ते रस फलिया बे, पाप कनक तरुकेरे।।
ते सब पाप कनक तरु के फल, रोग सोग दुख नित्य नये।
कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घर-घर फिरत फकीर भये।।

भूख-प्यास पीड़ै कन मांगै, होत अनादर पग पग में।
ये परतच्छ पाप संचित फल, लगैं असुंदर जे जग में।। 4।।

इस भव वन में बे, ये दोऊँ तरु जाने।
जो मन मानै बे, सोई सींच सयाने।।

जो सींच सयाने जो मन मानैं, बेर-बेर अब कौन कहै?
तू करतार तुही फल भोगी, अपने सुख-दुख आप लहै।।
धन्य-धन्य जिनमारग-सुन्दर, सेवन जोग तिहुँपन मैं।
जासौं समुझि परै सब 'भूधर',सदा-शरण इस भव वन मैं।। 5।।

जकड़ी-2

(तर्ज : अति पुण्य उदय मम आयो...)

अरहंत चरन चित लाऊँ, पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊँ,।
वन्दौं जिनमुद्राधारी, निर्ग्रन्थ यती अविकारी।।
अविकारि करुणावंत वन्दौं, सकल लोक शिरोमणी।
सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूँ, देय सुख सम्पति घनी।।
ये परम मंगल चार जग में, चार लोकोत्तम सही।
भव भ्रमत इस असहाय जिय को और रक्षक कोउ नहीं।। 1।।

मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो, चिरकाल चतुर्गति हंड्यो।
उपयोग-नयन-गुन खोयौ, भरि नींद निगोदे सोयौ।।
सोयौ अनादि निगोद में जिय, निकर फिर थावर भयौ।
भू तेज तोय समीर तरुवर, थूल सूच्छम तन लयौ।।
कृमि कुंथु अलि सैनी असैनी व्योम जल थल संचर्‌यौ।
पशुयोनि बासठ लाख इस विध भुगति मर-मर अवतर्‌यौ।। 2।।

अति पाप उदय जब आयौ, महानिंद्य नरकपद पायौ।
थिति सागरों बंध जहाँ है, नानाविध कष्ट तहाँ है।।

है त्रास अति आताप वेदन, शीत बहुयुत है मही।
जहाँ मार-मार सदैव सुनिये, एक क्षण साता नहीं।।
नारक परस्पर युद्ध ठानै, असुरगण क्रीडा करैं।
इस विध भयानक नरक थानक, सहैं जी परवश परैं।। 3।।

मानुषगति के दुख भूल्यो, बसि उदर अधोमुख झूल्यो।
जनमत जो संकट सेयो, अविवेक उदय नहिं बेयो।।
बेयो न कछु लघु बालवय में, वंश तरु कोंपल लगी।
दल रूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं तब उर जगी।।
जब तन बुढ़ापो घट्यो पौरुष, पान पकि पीरो भयो।
झड़ि पर्यो काल-बयार बाजत, वादि नरभव यौं गयौ।। 4।।

अमरापुर के सुख कीने, मनवांछित भोग नवीने।
उर माल जबै मुरझानी, विलख्यो आसन मृतु जानी।।
मृतु जान हाहाकार कीनौं, शरण अब काकी गहौं?
यह स्वर्ग संपति छोड़ अब, मैं गर्भवेदन क्यों सहौं?।।
तब देव मिलि समुझाइयो, पर कछु विवेक न उर वस्यो।
सुरलोक गिरिसों गिरि अज्ञानी, कुमति-कांदौ[1] फिर फस्यो।। 5।।

इहविध इस मोही जी नें, परिवर्तन पूरे कीनें।
तिनकी बहु कष्ट कहानी, सो जानत केवलज्ञानी।।
ज्ञानी बिना दुख कौन जानै, जगत वन में जो लह्यो।
जर-जन्म-मरणस्वरूप तीछन, त्रिविध दावानल दह्यो।।
जिनमत सरोवर शीत पर अब बैठ तपन बुझाय हो।
जिय मोक्षपुर की बाट बुझौ, अब न देर लगाय हो।। 6।।

यह नरभव पाय सुज्ञानी, कर-कर निज कारज प्रानी।
तिर्यञ्चयोनि जब पावै, तब कौन तुझे समझावै।।

1. कुबुद्धि रूपी कीचड़

समझाय गुरु उपदेश दीनों, जो न तेरे उर रहै।
तो जान जीव अभाग्य अपनो दोष काहू को न है।।
सूरज प्रकाशै, तिमिर नाशै, सकल जग को तम हरै।
गिरि-गुफा-गर्भ-उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै?।।7।।

जगमाहिं विषयवन फूल्यो, मनमधुकर तिहिंविच भूल्यो।
रसलीन तहाँ लपटान्यो, रस लेत रंच न अघान्यो।।
न अघाय क्यों ही रमैं निशिदिन, एक छिन हू ना चुकै।
नहिं रहै बरज्यो बरज देख्यो, बार-बार तहाँ ढुकै।।
जिनमत सरोज सिद्धांत सुंदर मध्य याहि लगाय हो।
अब 'रामकृष्ण' इलाज याकौ, किये ही सुखपाय हो।।8।।

सूवा बत्तीसी

(दोहा)

नमस्कार जिनदेव को, करों दुहू कर जोर।
सुवा बत्तीसी सरस मैं, कहूँ अरिनदल मोर।। 1।।
आतम सुआ सुगुरु-वचन, पढ़त रहै दिन रैन।
करत काज अघरीति के, यह अचरज लखि नैन।। 2।।
सुगुरु पढ़ावैं प्रेम सों, यहू पढ़त मनलाय।
घट के पट जो ना खुलैं, सबहि अकारथ जाय।। 3।।

(चौपाई)

सुवा पढ़ावै सुगुरु बनाय, करम वनहि जिन जइयो भाय।
भूल चूककर कबहु न जाहु, लोभ नलिनि पै चुगा न खाहु।। 4।।
दुर्जन मोह दगा के काज, बाँधी नलिनी तलधर नाज।
तुमजिन बैठ हु सुवा सुजान, नाज विषय सुख लहि तिहँथान।। 5।।

जो बैठहु तो पकरि न रहो, जो पकरो तो दृढ़ जिन गहो।
जो दृढ़ गहो तो उलटि न जाव, जो उलटो तो तजि भजि धाव।। 6।।
इहविध सुवा पढ़ायो नित्त, सुवटा पढ़िकै भयो विचित्त।
पड़त रहै निशिदिन ये बैन, सुनत लहैं सब प्रानी चैन।। 7।।
इक दिन सुवटै आई मनै, गुरु संगत तज भज गये वनै।
वन में लोभ नलिन अति बनी, दुर्जन मोह दगा कों तनी।। 8।।
ता तर विषय भोग अन धरे, सुवटै जान्यो ये सुख खरे।
उतरे विषय सुखन के काज, बैठ नलिनपै विलसै राज।। 9।।
बैठो लोभ नलिनपै जबै, विषय-स्वाद रस लटक्यो तबै।
लटकत तरैं उलटि गये भाय, तरमुंडी ऊपर भये पाँव।। 10।।
नलनी दृढ़ पकरे पुनि रहै, मुखतैं वचन दीनता कहै।
कोउ न तहाँ छुड़ावनहार, नलनी पकरे करहि पुकार।। 11।।
पढ़त रहै गुरु के सब बैन, जे-जे हितकर रखिये ऐन।
सुवटा वन में उड़ जिन जाहु, जाहु तो भूल चुगा जिन खाहु।। 12।।
नलनी के जिन जइयो तीर, जाहू तो तहाँ न बैठहु वीर।
जो बैठो तो दृढ़ जिन गहो, जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो।। 13।।
जो पकरो तो चुगा न खइयो, जो तुम खाव तो उलट न जइयो।
जो उलटो तो तज भज धइयो, इतनी सीख हृदय में लहियो।। 14।।
ऐसे वचन पढ़त पुन रहै, लोभ नलिन तज भज्यो न चहै।
आयो दुर्जन दुर्गतिरूप, पकड़े सुवटा सुन्दर भूप।। 15।।

डारे दु:ख के जाल मँझार, सो दुख कहत न आवै पार।
भूख-प्यास बहु संकट सहै, परवस पर्‌यो महा दुख लहै।। 16।।
सुवटा की सुधि-बुधि सब गई, यह तो बात और कछु भई।
आय पर्‌यो दुख सागर माहिं,अब इततैं कितको भज जाहिं।। 17।।
केतो काल गयो इह ठौर, सुवटै जिय में ठानी और।
यह दुख जाल कटै किह भांति, ऐसी मन में उपजी ख्याति।। 18।।
रात-दिना प्रभु सुमरन करै, पाप-जाल काटन चित धरै।
क्रम-क्रम कर काट्‌यो अघजाल, सुमरत फल भयो दीनदयाल।। 19।।
अब इततैं जो भजकैं जाऊँ, तौ नलनी पर बैठ न खाऊँ।
पायो दाव भज्यो ततकाल, तज दुर्जन दुर्गति जंजाल।। 20।।
आयो उड़त बहुरि वनमाहिं, बैठ्‌यो नरभवद्रुम की छाँहि।
तित इक साधु महा मुनिराय, धर्म देशना देत सुभाय।। 21।।
यह संसार कर्मवन रूप, तामहिं चेतन सुआ अनूप।
पढ़त रहै गुरु वचन विशाल, तौहु न अपनी करै संभाल।। 22।
लोभ नलिन पै बैठयो जाय, विषय स्वादरस लटक्यो आय।
पकरहि दुर्जन दुर्गति परै, तामें दु:ख बहुते जिय भरै।। 23।।
सो दुख कहत न आवै पार, जानत जिनवर ज्ञान मंझार।
सुनतहि सुवटो चौंक्‌यो आप, यह तो मोह पर्‌यो सब पाप।। 24।।
ये दुख तौ सब मैं ही सहे, जो मुनिवर ने मुखतैं कहे।
सुवटा सोचे हिये मझाँर, ये गुरु साँचे तारनहार।। 25।।

मैं शठ फिर्‌यो करमवन माहिं, ऐसे गुरु कहूँ पाये नाहिं।
अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो, साँचे गुरु को दर्शन लयो।। 26।।
गुरु की थुतिकर बारम्बार, सुवटा सोचे हिये मझाँर।
सुमरत आप पाप भज गयो, घटके पट खुल सम्यक् थयो।। 27।।
समकित होत लखी सब बात, यह मैं, यह पर द्रव्य विख्यात।
चेतन के गुण निजमंहि धरे, पुद्‌गल रागादिक परिहरे।। 28।।
आप मगन अपने गुणमाहिं, जन्म-मरण भय जिनको नाहिं।
सिद्ध समान निहारत हिये, कर्म कलंक सबहि तज दिये।। 29।।
ध्यावत आपमाहिं जगदीश, दुहुंपद एक विराजत ईश।
इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान, दिन-दिन प्रति प्रगटत कल्यान।। 30।।
अनुक्रम शिवपद जिय को भयो, सुख अनंत विलसत नित नयो।
सत् संगति सबको सुख देय, जो कछु हिय में ज्ञान धरेय।। 31।।
केवलिपद आतम अनुभूत, घट-घट राजत ज्ञान संजूत।
सुख अनंत विलसे जिय सोय, जाके निजपद परगट होय।। 32।।
सुवा बत्तीसी सुनहु सुजान, निजपद प्रगटत परम निधान।
सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त, 'भैया' की विनती धर चित्त।। 33।।
संवत् सत्रह त्रेपन माहिं, आश्विन पहले पक्ष कहाहिं।
दशमी दशों दिशा परकाश, गुरु संगति तैं शिव सुखभास।। 34।।

भक्तामर स्तोत्रम्

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्।। 1।।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्-त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।2।।

बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ!
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल- संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रम्,
कोवा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।4।।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत-शक्ति-रपि प्रवृतः।
प्रीत्यात्म-वीर्य-मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्।।5।।

अल्प-श्रुतं-श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्-भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः।। 6।।
त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोक-मलि-नील-मशेष-माशु,
सूर्यांशु-भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम्।। 7।।
मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फल-द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः।। 8।।
आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वसङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि।। 9।।
नात्यद्-भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।। 10।।
दृष्ट्वा भवन्त-मनिमेष-विलोकनीयं
नान्यत्र-तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्।। 11।।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्
निर्मापितस् - त्रिभुवनैक - ललाम - भूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समान-मपरं न हि रूप-मस्ति।। 12।।
वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाश-कल्पम्।। 13।।
सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्-त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्-त्रिजगदीश्वरनाथ-मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्।।14।।
चित्रम् किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग-नाभिर्-
नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्।।15।।
निर्धूम-वर्ति-रपवर्जित-तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रय- मिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः।।16।।
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्-जगन्ति।

नाम्भोधरोदर-निरुद्धमहा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके।। 17।।
नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्तिः,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्।। 18।।
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमः-सु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जल-धरै-र्जल-भार-नम्रैः।। 19।।
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजःस्फुन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि।।20।।
मन्ये वरं हरि-हरा-दय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि।।21।।
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम्।।22।।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः।।23।।

त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माणमीश्वर - मनंत - मनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः।। 24।।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि।। 25।।

तुभ्यं नमस्-त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्-त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय।। 26।।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दोषै-रुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोऽसि।।27।।

उच्चै-रशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।

स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति।। 28।।
सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्-विलस-दंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः।। 29।।
कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्।। 30।।
छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैःस्थितं स्थगित - भानु - कर - प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत्-त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।। 31।।
गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्-
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः।
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्
खे दुंदुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।। 32।।
मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा।। 33।।

शुम्भत्-प्रभा-वलय-भूरि-विभा-विभोस्ते,
लोकत्रये-द्युतिमतां द्युति-माक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि-सोम-सौम्याम्।। 34।।
स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सर्द्धम-तत्त्व-कथनैक-पटुस्-त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः।।35।।
उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुञ्ज-कान्ति-
पर्युल्-लसन्-नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति।। 36।।
इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्-जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्-प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्-कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि।। 37।।
श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभ-मुद्धत-मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।38।।
भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्जवल-शोणिताक्त-
मुक्ता - फल - प्रकरभूषित - भूमि - भागः।

बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,

नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते।। 39।।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,

दावानलं ज्वलित - मुज्ज्वल - मुत्स्फुलिङ्गम्।

विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख-मापतन्तं

त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्।। 40।।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं

क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम्।

आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्कस्-

त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः।। 41।।

वल्गत्-तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-

माजौ बलं बलवता-मपि-भूपतीनाम्।

उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं

त्वत्कीर्तनात्तम-इवाशु भिदामुपैति।। 42।।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-

वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।

युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षास्-

त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते।। 43।।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-

पाठीन - पीठ - भय - दोल्वण - वाडवाग्नौ।

रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्-

त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्-व्रजन्ति।। 44।।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः

शोच्यां दशा - मुपगताश् - च्युत - जीविताशाः।

त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहाः,

मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्यरूपाः।। 45।।

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा,

गाढं बृहन् - निगड - कोटि - निघृष्ट - जङ्घाः।

त्वन्-नाम-मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः

सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति।। 46।।

मत्त-द्विपेन्द्र-मृग-राज-दवानलाहि-

संग्राम - वारिधि - महो - दर - बन्ध - नोत्थम्।

तस्याशु नाश-मुप-याति भयं भियेव,

यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमान-धीते।। 47।।

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां,

भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।

धत्ते जनो य इह कण्ठ-गता-मजस्रं,

तं 'मानतुङ्ग'-मवशा समुपैति लक्ष्मीः।। 48।।

प्रभु आदीश्वर गुण गाऊँ मंगलकारी।
जिन होकर होऊँ निज चैतन्य विहारी॥

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

हैं भक्त देव नत मौलि मणि-प्रभा के।
उद्योत कारक विनाशक पाप के हैं।।
आधार जो भव-पयोधि पड़े जनों के।
अच्छी तरह नम, उन्हीं प्रभु के पदों को।। 1।।
श्री आदिनाथ विभु की स्तुति मैं करूँगा।
की देव लोक पति ने स्तुति है जिन्हों की।।
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय-चित्तहारी।
सुस्तोत्र से सकल शास्त्र रहस्य पाके।। 2।।
हूँ बुद्धिहीन फिर भी बुध-पूज्यपाद।
तैयार हूँ स्तवन को निर्लज्ज होके।।
है और कौन जग में तज बाल को जो।
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिम्ब?।। 3।।
होवे बृहस्पति-समान सुबुद्धि तो भी।
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणों को।।
कल्पान्त वायु-वश सिन्धु अलंघ्य जो है।
है कौन जो तिर सके उसको भुजा से? ।। 4।।
हूँ शक्ति हीन फिर भी करने लगा हूँ।
तेरी प्रभु स्तुति हुआ वश-भक्ति के मैं।।
क्या मोह के वश हुआ शिशु को बचाने।
है सामना न करता मृग सिंह का भी?।। 5।।

हूँ अल्प बुद्धि बुध मानव की हँसी का।
हूँ पात्र, भक्ति-तव है मुझको बुलाती।।
जो बोलता मधुर कोकिल है मधु में।
है हेतु आम्र-कलिका बस एक उसका।। 6।।
तेरी किये स्तुति विभो, बहु जन्म के भी।
होते विनाश सब पाप मनुष्य के हैं।।
भौंरे समान अति श्यामल जो अंधेरा।
होता विनाश रवि के कर से निशा का।। 7।।
यों मानि की स्तुति मुझ अल्पधी ने।
तेरे प्रभाव-वश नाथ वही हरेगी।।
सत्लोक के हृदय को जल बिन्दु भी तो।
मोती समान नलिनी-दल पै सुहाते।। 8।।
निर्दोष दूर तब हो स्तुति का बनाना।
तेरी कथा तक हरे जग के अघों को।।
हो दूर सूर्य करती उसकी प्रभा ही।
अच्छे प्रफुल्लित सरोजन को सरों में।। 9।।
आश्चर्य क्या भुवन रत्न भले गुणों से।
तेरी किये स्तुति बनें मुझ से मनुष्य।।
क्या काम है जगत में उन मालिकों का।
जो आत्म-तुल्य न करें निज आश्रितों को?।। 10।।

अत्यन्त सुन्दर विभो तुझको विलोक।
अन्यत्र आँख लगती नहीं मानवों की।।
क्षीराब्धि का मधुर सुन्दर वारि पी के।
पीना चहे जलधि का जल कौन खारा?।। 11।।
जो शान्ति के सु परमाणु प्रभो तनू में।
तेरे लगे जगत में उतने वही थे।।
सौन्दर्य सार जगदीश्वर चित्त हर्त्ता।
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई।। 12।।
तेरा कहाँ मुख सुरादिक-नेत्र रम्य।
सर्वोपमान विजयी जगदीश नाथ।।
त्यों ही कलंकित कहाँ वह चन्द्रबिम्ब।
जो हो पड़े दिवस में द्युतिहीन फीका?।। 13।।
अत्यन्त सुन्दर कला निधि की कला में।
तेरे मनोज्ञ गुण नाथ फिरे जगों में।।
है आसरा त्रिजगदीश्वर का जिन्हों को।
रोके उन्हें त्रिजग में फिरते न कोई।। 14।।
देवाङ्गना हर सकी मन को न तेरे।
आश्चर्य नाथ उसमें कुछ भी नहीं है।।
कल्पान्त के पवन से उड़ते पहाड़।
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या? ।। 15।।

बत्ती नहीं नहीं धुआँ नहिं तैल-पूर।
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है।।
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला।
उत्कृष्ट दीपक विभो द्युतिकारि तू है।। 16।।
तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु।
पाते प्रकाश तुझ से जग एक साथ।।
तेरा प्रभाव रुकता नहीं बादलों से।
तू सूर्य से अधिक है महिमा-निधान।। 17।।
मोहान्धकार हरता रहता उगा ही।
जाता न राहु-मुख में, न छुपे घनों से।।
अच्छे प्रकाशित करें जग को सुहावे।
अत्यन्त कान्तिधरनाथ मुखेन्दु तेरा।। 18।।
क्या भानु से दिवस में निशि में शशि से?
तेरे प्रभो सुमुख से तम नाश होते।।
अच्छी तरह पक गया जग-बीच धान।
है काम क्या? जल-भरे इन बादलों से।। 19।।
जो ज्ञान निर्मल विभो तुझमें सुहाता।
भाता नहीं वह कभी, पर देवता में।।
होती मनोहर छटा, मणि-मध्य जो है।
सो काँच में नहिं, पड़े रवि बिम्ब के भी।। 20।।

देखे भले, अयि विभो पर देवता ही।
देखे जिन्हें हृदय आ तुझ में रमे ये।।
तेरे विलोकन किये, फल क्या प्रभो जो?
कोई रमें न मन में पर जन्म में भी।। 21।।
माँयें अनेक जनती जग में सुतों को।
हैं किन्तु वे न तुझ से सुत की प्रसूता।।
सारी दिशा धर रही रवि का उजेला।
पै एक पूरब-दिशा रवि को उगाती।। 22।।
योगी तुझे परम पुरुष हैं बताते।
आदित्य-वर्ण मलहीन तमिस्रहारी।।
पाके तुझे जय करें सब मौत को भी।
है और ईश्वर नहीं वर मोक्षमार्ग।। 23।।
योगीश, अव्यय, अचिन्त्य, अनङ्गकेतु।
ब्रह्मा, असंख्य, परमेश्वर, एक नाना।।
ज्ञान स्वरूप विभु, निर्मल योग वेत्ता।
त्यों आद्य सन्त तुझको कहते अनन्त।। 24।।
तू बुद्ध है, विबुध-पूजित-बुद्धिवाला।
कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है।।
तू मोक्षमार्ग-विधि-कारक है विधाता।
है व्यक्त नाथ, पुरुषोत्तम भी तुही है।। 25।।

त्रैलोक्य-आर्त्ति-हर नाथ, तुझे नमूँ मैं।
हे भूमि के विमल रत्न! तुझे नमू मैं।।
हे ईश सर्व जग के तुझको नमूँ मैं।
मेरे भवोदधि-विनाशि तुझे नमूँ मैं।। 26।।
आश्चर्य क्या गुण सभी तुझ में समाये?
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही।।
देखा न नाथ मुख भी तव स्वप्न में भी।
पा आसरा जगत का सब दोष ने तो।। 27।।
नीचे अशोक तरु के तन है सुहाता।
तेरा विभो विमल रूप प्रकाश कर्ता।।
फैली हुई किरण का तम का विनाशी।
मानों समीप घन के रवि बिम्ब ही है।। 28।।
सिंहासन स्फटिक रत्न जड़ा उसी में।
भाता विभो कनक-कान्त शरीर तेरा।।
जो रत्न पूर्ण उदयाचल शीश पै जा।
फैला स्वकीय किरणें रवि बिम्ब सोहे।। 29।।
तेरा स्वर्ण सम देह विभो, सुहाता।
है श्वेत कुन्द-सम चामर के उड़े से।।
सोहे सुमेरुगिरि, कांचन कान्तिधारी।
ज्यों चन्द्र कान्तिधर निर्झर के बहे से।। 30।।

मोती मनोहर लगे जिनमें सुहाते।
नीके हिमांशु-सम सूरज-ताप हारी।।
हैं तीन छत्र सिर पै अति रम्य तेरे।
जो तीन लोक परमेश्वरता बताते।। 31।।
गम्भीर नाद भरता दश ही दिशा में।
सत्संग की त्रिजग को महिमा बताता।।
धर्मेश की कर रहा जय घोषणा है।
आकाश बीच बजता यश का नगारा।। 32।।
गन्धोद-बिन्दु युत मारुत की गिराई।
मन्दारकादि तरु की कुसुमावली को।।
होती मनोरम महा सुरलोक से है।
वर्षा मनों तव लसे वचनावली है।। 33।।
त्रैलोक्य की सब प्रभामय वस्तु जीती।
भामण्डल प्रबल है तव नाथ ऐसा।।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्ति धारी।
है जीतता शशि सुशोभित रात को भी।। 34।।
है स्वर्ग-मोक्ष-पथ दर्शन के सुनेता।
सद्धर्म के कथन में पटु है जगों के।।
दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी प्रभो है।
तेरी लहे सकल मानव बोध जिससे।। 35।।

फूले हुये कनक के नव पद्म के से।
शोभायमान नख की किरण प्रभा से।।
तूने जहाँ पग धरे अपने विभो हैं।
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं।। 36।।
तेरी विभूति इस भाँति विभो हुई जो।
सो धर्म के कथन में न हुई किसी की।।
होता प्रकाशित परन्तु तमिस्र-हर्ता।
होता न तेज रवि तुल्य कहीं ग्रहों का?।। 37।।
दोनों कपोल झरते मद से सने हैं।
गुञ्जार खूब करती मधुपावली हैं।।
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे।
पावे न किन्तु भय, आश्रित लोक तेरा।। 38।।
नाना करीन्द्र दल-कुम्भ विदारके की।
पृथ्वी सुरम्य जिसने गज मोतियों से।।
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उस पै।
तेरे पदादि जिसका शुभ आसरा है।। 39।।
झालें उठें चहुँ उड़े जलते अँगारे।
दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे।।
संसार भस्म करने हित पास आवे।
त्वत्कीर्ति गान शुभ वारि उसे शमावे ।। 40।।

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिक कंठ समान काला।
फुंकार सर्प फण को कर उच्च धावे।।
नि:शंक हो जन उसे पग से उलाँघे।
त्वन्नाम नाग दमनी जिसके हिये हो।। 41।।
घोड़े जहाँ हिन-हिनें गरजें गजाली।
ऐसे महा प्रबल सैन्य धराधिपों के।।
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाए।
ज्यों अन्धकार उगते रवि के करों से।। 42।।
बर्छे लगे बह रहे गज रक्त के हैं।
तालाब से विकल हैं तरणार्थ योद्धा।।
जीते न जाय रिपु संगर बीच ऐसे।
तेरे प्रभो चरण-सेवक जीतते हैं।। 43।।
हैं काल-नृत्य करते मकरादि जन्तु।
त्यों बाड़वाग्नि अति भीषण सिन्धु में है।।
तूफान में पड़ गये जिनके जहाज।
वे भी प्रभो! स्मरण से तव पार होते।। 44।।
अत्यन्त पीड़ित जलोदर भार से हैं।
है दुर्दशा तज चुके निज जीविताशा।।
वे भी लगा तव पदाब्ज रज सुधा को।
होते प्रभो मदन तुल्य स्वरूप देही।। 45।।
सारा शरीर जकड़ा दृढ़ सांकलों से।
बेड़ी पड़े छिल गई जिनकी सुजांघें।।

त्वन्नाम मन्त्र जपते-जपते उन्हों के।
जल्दी स्वयं झड़ पड़े सब बन्ध बेड़ी।। 46।।
जो बुद्धिमान इस सुस्तव को पढ़ै हैं।
होके विभीत उनसे भय भाग जाता।।
दावाग्नि सिन्धु अहि वारण[1] रोग का त्यों।
पंचास्य मत्त गज का सब बन्धनों का।। 47।।
तेरे मनोज्ञ गुण से स्तव मालिका ये।
गूँथी प्रभो! रुचिर वर्ण सुपुष्प वाली।।
मैंने सभक्ति जन कंठ धरे इसे जो।
सो 'मानतुङ्ग' सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी।। 48।।

प्रभुवर ऐसी पूजा रचाऊँ

(तर्ज : पंचकल्याण मनहारी.....)

प्रभुवर ऐसी पूजा रचाऊँ, जासों दुखमय पाप नशाऊँ।।टेक।।
अर्न्तदृष्टि कर प्रभुसम ही आतमदेव लखाऊँ।
भेदज्ञान से छने सु प्रासुक अनुभव जल से नहाऊँ।। 1।।
भक्तिभाव से रोमांचित हो तत्त्वभावना भाऊँ।
तज परिग्रह जंजाल विषय सब अधिक-अधिक हर्षाऊँ।। 2।।
समरस जल ले क्षमाभावमय उत्तम चन्दन लाऊँ।
अमल भावमय अक्षत लेकर पुष्प शील प्रगटाऊँ।। 3।।
आतम रसमय नैवेद्य लेकर, ज्ञानदीप प्रज्वलाऊँ।
ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, परमभाव फल लाऊँ।। 4।।
अर्घ अभेद भक्तिमय लेकर, शान्त नृत्य विलसाऊँ।
पूजक पूज्य विकल्प नशाऊँ सहज पूज्य पद पाऊँ।। 5।।

1. युद्ध

द्वितीय खण्डः

द्वितीय खण्ड में प्रकाशित
समस्त आध्यात्मिक स्तुति, पूजन, विधान आदि रचनाएँ
ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' द्वारा विरचित हैं।

द्वितीय खण्ड :

भाग-1: सामान्य श्रावक प्रतिक्रमण

हे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मन्! आपका पावन दर्शन एवं शासन प्राप्त करके मैं अत्यन्त हर्षित हूँ। समस्त दोषों के अभाव एवं गुणों की प्राप्ति की भावना भाता हूँ।

पर्याय के लक्ष्य से नाना दोषों की उत्पत्ति होती है, अत: मेरी निरन्तर द्रव्यदृष्टि वर्तती रहे एवं परिणति सतत अन्तर में ढली रहे।

शरीर की ममता और विषयों की चाह के वशीभूत मेरी परिणति वीतराग देव-शास्त्र-गुरु एवं धर्म से अन्यत्र भटकी हो अथवा आपकी भक्ति आदि करते हुए मन से, वचन से या काय से विषयों की कामना हुई हो वह मिथ्या हो और सदैव निष्काम भक्ति एवं भेदज्ञान की निर्मल धारा सहज रूप से वर्ते।

मेरे द्वारा अपने या अन्य के प्रति अन्याय हुआ हो अर्थात् उपयोग (ज्ञान) ज्ञेयों में भ्रमा हो, समय एवं शक्ति विकथा, प्रमाद या विषयों में लगे हों या कषायों की पूर्ति में लगे हों, किसी को पर्याय मात्र से देखते हुये कम या अधिक देखा, उससे विराधना हुई हो, कहीं शंका होने पर मैं शंकाशील ही बना रहा हूँ, समाधान का प्रयास न किया हो।

ईर्ष्यावश पराई निन्दा स्वयं की हो, सुनकर अनुमोदना की हो। यदि साधर्मी पर मिथ्या दोषारोपण हो रहा हो तो उसे निषेधा न हो। अनजाने में यदि परिस्थितिवश किसी से वास्तव में भी दोष बन गया हो तो उपगूहन न किया हो, न कराया हो। वात्सल्य पूर्वक स्थितिकरण न किया हो, न कराया हो तो मेरा वह दोष मिथ्या हो।

नानाप्रकार के अभक्ष्य भक्षण में जिनका सेवन हुआ हो या अभक्ष्य त्याग में अतिचार लगा हो तो वह दोष मिथ्या हो। लोभवश या कुसंग से जुआ आदि लोकनिंद्य व्यसनों एवं पापों की अनुमोदना भी हुई हो तो वह दोष मिथ्या हो।

देव दर्शन, भक्ति, गुरुपासना आदि कार्यों में उपेक्षा या अनुत्साह हुआ हो, किसी परिस्थिति में इनके प्रति विपरीत विकल्प भी आया हो तो वह दोष मिथ्या हो।

स्वाध्याय केवल पांडित्य प्रदर्शन, जानकारी बढ़ाने या पद्धति (रूढ़ि) से किया हो, आत्महित के लक्ष्य पूर्वक चिन्तन, निर्णय आदि में उपयोग न लगाया हो तो वह महा दोष मिथ्या हो।

संयम-तप आदि की भावना न भाई हो, अनुमोदना न की हो, यथाशक्ति पालन न किया हो, दूसरों को सहयोग न किया हो, राग-द्वेष वश छल से किसी के संयम में दोष लगाया हो वह निंद्य दोष मिथ्या हो।

यथाशक्ति विवेक एवं यत्नाचार पूर्वक दान न किया हो, दान देते समय अभिमान किया हो, कोई लौकिक प्रयोजन हुआ हो, दान देकर अहसानादि दिखाया हो, पात्र-अपात्र का विचार न रखा हो, दूसरों द्वारा दिये हुये दान का दुरुपयोग किया हो, दान में योग्य विधि न अपनायी हो तो वह दोष मिथ्या हो।

किसी के प्रति क्रूरता या कठोरता पूर्ण व्यवहार हो गया हो वह मिथ्या हो। क्रोधवश किसी के प्रति दुर्भाव या दुर्व्यवहार हुआ हो, अभिमान वश किसी का तिरस्कार हुआ हो, ईर्ष्यावश किसी का पतन विचारा भी हो, किसी को धोखा दिया हो, लोभवश अयोग्य विषयों की चाह की हो, दीनता करते हुये अपने पद को लजाया हो, निंद्य प्रवृत्ति की हो।

हास्यवश झूठ, कुशील आदि रूप चेष्टा हुई हो, भय के करण धर्म, न्याय, नियम आदि का उल्लंघन हो गया हो, रति-अरति के कारण आर्त या रौद्रध्यान हुआ हो, शोकवश आर्तध्यान किया हो, किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति घृणा हुई हो, वेद के तीव्र उदयवश मर्यादा का उल्लंघन हुआ हो वह समस्त कषायों से उत्पन्न दोष मिथ्या हो।

दैनिक चर्या को करते हुये प्रमादवश जो आरंभी, उद्योगी या विरोधी हिंसा हुई हो, असत्य भाषण हुआ हो, अचौर्य व्रत संबंधी अतिचार लगे हों, शील की मर्यादा भंग हुई हो, परिग्रह परिमाण व्रत की सीमा का उल्लंघन हुआ हो, दोष लगा हो वह दोष मिथ्या हो।

अप्रयोजनभूत कार्य (अनर्थदण्ड) हुआ हो, सामायिकादि भावना नहीं भायी हो वह दोष मिथ्या हो।

जिनधर्म की अप्रभावना के कारण रूप कोई कार्य बन गया हो, वचन कहा हो या भाव आ गया हो तो वह दोष मिथ्या हो।

भगवान जिनेन्द्र देव, स्याद्वादमयी जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) एवं अहिंसामयी धर्म की भक्ति पूर्वक मैं आत्महित के लिये रत्नत्रय की भावना भाता हूँ और उसकी सफलता के लिये निवृत्ति की भावना भाता हूँ।

परम निवृत्ति स्वरूप निज शुद्धात्मा की भावना भाता हूँ।

मेरा पुरुषार्थ निरन्तर बढ़ता रहे। समय, शक्ति एवं उपयोग निरन्तर आराधना एवं प्रभावना में लगा रहे।

ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

(कायोत्सर्ग)

भाग-2 : नित्य नियम पूजन

मंगलाष्टक (भाषा)

वीतराग-सर्वज्ञ हितंकर, त्रिभुवन स्वामी जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, **श्री अरहंत** हों मंगलकार।।1।।
ज्ञान शरीरी अशरीरी प्रभु, मुक्त स्वरूप नित्य सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, **सिद्ध प्रभु** हों मंगलकार।।2।।
पंचाचार परायण गुरुवर, सकल संघ नायक सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, **श्री आचार्य** हों मंगलकार।।3।।
साधु संघ में अधिकारी हो, धर्म ज्ञान देते सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, **उपाध्याय** हों मंगलकार।।4।।
विषयाशा-आरम्भ रहित हैं, ज्ञानी मुनिवर जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, **साधु सर्व** हों मंगलकार।।5।।
जिनवाणी जिनतीर्थ चैत्य, चैत्यालय जग में जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, हम सबको हों मंगलकार।।6।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरितमय, **धर्म** अहिंसा शिव सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, दशलक्षण हों मंगलकार।।7।।
पंचकल्याणक तीर्थेश्वर के, दर्शाये सुरगण सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, हम सबको हों मंगलकार।।8।।
धर्म महोत्सव आज मनावें, ले जिननाम परम सुखकार।
नित परिणाम पवित्र हमारे, हम सबको हों मंगलकार।।9।।

श्री जिन प्रतिमा प्रक्षाल पाठ-1

दोहा- धन्य दिवस है आज का, धन्य घड़ी है आज।
करें प्रभो प्रक्षाल हम, भाव विशुद्धि काज।। 1।।

(तर्ज-तुम्हारे दर्श बिन स्वामी....)

परम पावन अहो जिनवर, जगत की कलुषता हरते।
स्वयं रागादि मल हरने, प्रभो! प्रक्षाल हम करते।। 2।।
स्वयं की साधना करके, त्रिजग की पूज्यता पाई।
पूज्यता स्वयं की लखकर, प्रभो पूजा सहज करते।। 3।।
निहारें शान्त मुद्रा जब, नेत्र पावन सहज होते।
हाथ होते सहज पावन, चरण-स्पर्श जब करते।। 4।।
करें गुणगान भक्ति से, होय रसना तभी पावन।
सहज ही चित्त हो पावन, प्रभु का ध्यान जब धरते।। 5।।
जन्म कल्याण में स्वामी, किया अभिषेक इन्द्रों ने।
लगाया था सु गंधोदक, शीश जय-जय ध्वनि करते।।6।।
किन्तु स्नान ही त्यागा, धरी निर्ग्रन्थ दीक्षा जब।
ध्यान धारा सहज वर्ते, प्रभु सब कर्म मल हरते।। 7।।
पूर्ण निर्दोष निर्मल हो, तीर्थ प्रभु आप प्रगटाया।
बहायी ज्ञानमय गंगा, भव्य स्नान शुभ करते।। 8।।
अहो कैसा समय होगा, लक्ष्य कर हर्ष उमगाता।
महा आनंद से हम भी, अर्चना नाथ की करते।। 9।।
धन्य जिनबिम्ब हैं जग में, अहो चिद्बिम्ब दर्शाते।
नीर प्रासुक ही लेकर हम, प्रभो प्रक्षाल शुभ करते।। 10।।
यत्न से करते परिमार्जन, प्रभो रोमांच तन में हो।
आत्म प्रभुता दिखाती है, अर्घ्य चरणों में जब धरते।।11।।
संजोए भावना स्वामी, होंय हम भी प्रभु के सम।
लगावें शीश गंधोदक, अहो! जिन-रूप उर धरते।।12।।
दोहा- लोकोत्तम मंगलमयी, अनन्य शरण जिननाथ।
प्रभु चरणों में शीश धर, हम भी हुए सनाथ।।13।।

श्री जिन प्रतिमा प्रक्षाल पाठ-2

जय-जय सहज पवित्र प्रभु, नित्य निरंजन देव।
परिणति स्वाश्रय से अहो, होय शुद्ध स्वयमेव।। 1।।
सहज पवित्र परम प्रभु अपना अंतर माहिं विराज रहा।
अद्भुत ज्ञानानन्दमयी, चैतन्य रत्नाकर उछल रहा।। 2।।
द्रव्य कलंक तो दूर रहे, जिसमें नहीं भाव कलंक अहा।
निश्चय मंगल तीर्थरूप है, वीतराग-सर्वज्ञ कहा।। 3।।
जो नहावे निर्मलता पावे, भव-आताप विनश जावे।
शीतलता निज में ही पावे, फेर न भव में भरमावे।। 4।।
हुआ सहज श्रद्धान आपको लखकर स्वामिन् अंतर में।
मोह महामल दूर हुआ, पावनता पाई अंतर में।। 5।।
राग-द्वेष मल भी धुल जावे, स्वतः स्वयं में मग्न रहूँ।
अविरल काल अनन्त सहज ही, अद्भुत परमानंद लहूँ।।6।।
हो निःशंक उतरुँ अंतर में, रत्न अलौकिक प्राप्त करूँ।
हो प्रभुता सम्पन्न आप सम, सिद्धालय में वास करूँ।। 7।।
कर्म कालिमा को धोने का, कोई और उपाय नहीं।
कीचड़ नहीं, कीचड़ से धुलता, जग जाहिर है बात सही।।8।।
जल से ही यदि धुले मोह मल, फिर आराधन से क्या काम?
यही भावना निर्विकल्प हो, निज में ही पाऊँ विश्राम।। 9।।
जल से तो प्रक्षाल अरे, बाहर की एक व्यवस्था प्रभु।
हो पावे नहीं मूर्ति मलिन, हो भक्ति भाव की रक्षा प्रभु।।10।।
अंतरंग में विभो! आप सम, भाव मैल प्रक्षालूँ मैं।
वर्ते निर्मल भेदज्ञान प्रभु, रागादिक परिहारूँ मैं।। 11।।
हे परमात्मन्! तुम साक्षी में, नित्य शुद्ध अनुभवन करूँ।
जगे परम पुरुषार्थ जिनेश्वर, साम्य रूप परिणमन करूँ।। 12।।
क्षुब्ध न होऊँ, लुब्ध न होऊँ, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ।
समय-समय ध्याऊँ तन्मय हो, ध्येय रूप अविकार रहूँ।। 13।।

विनय पाठ

(दोहा)

सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज।
भव समुद्र नहिं दीखता, पूर्ण हुए सब काज।। 1।।
दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम।
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम।। 2।।
संवर कर्मों का हुआ, शान्त हुए गृह जाल।
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहिं आये मम काल।। 3।।
भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु।
उदित हुआ मुझमें प्रभो, दीखे आप समान।। 4।।
मेरा आत्म स्वरूप जो, ज्ञानादिक गुण-खान।
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान।। 5।।
दीन भावना मिट गई, चिन्ता मिटी अशेष।
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश।। 6।।
शरण रहा था खोजता, इस संसार मँझार।
सीखा जिनवर आपसे, आत्म शरण सुखकार।। 7।।
निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम।
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम।। 8।।
मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव।
तन-धन-जन जगजाल से, धरि विरागता भाव।। 9।।
यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माहिं।
राग-द्वेष की कल्पना, किंचित् उपजे नाहिं।। 10।।

पूजा पीठिका (भाषा)

(छन्द-सखी)

अरहन्त सिद्ध सूरि नामा, उपाध्याय साधु गुणधामा।
परमेष्ठी पद सुखकारी, पूजन करिहों दु:खहारी।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नम: पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(छन्द-झूलना)

चार मंगल शरण श्रेष्ठ हैं लोक में,
आप्त अरु सिद्ध साधु दयामय धरम।
अन्य में ढूँढना सुख दुखकार है,
वे स्वयं सुख रहित सुख न उनका मरम।।
हे प्रभो आपको लख, ये निश्चय हुआ,
शरण अपनी से कटते स्वयं सब करम।
बाह्य दृष्टि तजूँ, अब निजातम भजूँ,
लीन निज में हुए से मिले पद परम।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

मंगल विधान (भाषा)

(छन्द-मत्तसवैया)

हूँ द्रव्यदृष्टि से अति पवित्र, परिणति ही मात्र अपावन है।
चिर से ही पर में भ्रमित रही, शुचिकारी तव आराधन है।।
हे प्रभो! शान्त नासाग्र दृष्टि, थिर मुद्रा हमें बताती है।
शान्ति शुचिता अन्तर में है, बाहर से कभी न आती है।।
है रूप हमारा मंगलमय, आराध्य हमारे मंगलमय।
रागादि विकारी भाव भगें, परिणति भी होवे मंगलमय।।
तुम नाम मंत्र है मंगलमय, हे कर्ममुक्त! तुम मंगलमय।
सम्यक्त्व आदि गुण युक्त सिद्ध, मैं नमन करूँ हे मंगलमय।।
हों दु:ख सभी तत्क्षण विनष्ट, स्मरण किये तुम सम निजरूप।
डाकिनि, भूत पिशाच, नागगद सभी दूर हों हे शिवभूप।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

गुण अनन्त हैं प्रभो आपके, मेरी है सामर्थ्य कहाँ?
सहस्रनाम से अर्चन करके, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज यहाँ।।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनस्याऽष्टाधिकसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(तर्ज : दिन-रात मेरे स्वामी....)

जो तीन लोक स्वामी मुक्ति रमापति हैं।
हैं स्याद्वाद नायक, सानन्त चार जो हैं।।
कर वन्दना उन्हीं की, पूजा विधि करूँगा।
जो भव्य प्राणियों को, हैं पुण्य बन्ध हेतु।।

निज आत्मरूप महिमा, जिनने प्रकट दिखाई।
ऐसे त्रिलोक गुरु पुंगव, स्वस्ति दायक।।
उन पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द-वीर्य वैभव।
दें प्रेरणा सतत, मुक्ति हेतु मुझको।।

निजभाव द्रव्यदृष्टि से शुद्ध जाना।
पर्याय शुद्धि हेतु, अवलम्ब मैंने लीना।।
बहु युक्तियों से अब तो, रागादि कर विनष्ट।
भूतार्थ यज्ञ द्वारा, मैं भी प्रभु बनूँगा।।

अर्हत् पुराण पुरुषोत्तम, हे जगत हितंकर।
सब वस्तुयें तजूँगा, निज पूर्ण ज्ञान हेतु।।
नित पुण्य-पाप द्वारा, परिणति हुई विकारी।
मैं पाप तो तजा है, अब पुण्य भी तजूँगा।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

स्वस्ति मंगल पाठ

(छन्द-मत्तसवैया)

श्री ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन सुमति सुमतिप्रदायक हैं।
श्री पद्मप्रभ अरु श्रीसुपार्श्व, चन्द्रप्रभ स्वस्ति दायक हैं।।
श्री पुष्पदंत शीतल श्रेयांस, श्री वासुपूज्य और विमल प्रभु।
श्री अनन्त धर्म और शान्ति कुंथु, मंगलमय मुक्ति विधायक हैं।।
अरनाथ मल्लि मुनिसुव्रतजी, नमिनाथ नेमि अरु पार्श्वप्रभु।
श्री वर्द्धमान जिन सुखवर्द्धक, निज पर विवेक प्रगटायक हैं।।
इन सम ही जड़ वैभव तजकर, सम्यक्त्वी इच्छामुक्त बने।
निज का पुरुषार्थ मूल कारण, ये ही व्यवहार सहायक हैं।।
हो जिनवाणी अभ्यास सदा, तत्त्वों का सम्यक् निर्णय हो।
रागादि विकारी भाव भगें, जिनवाणी स्वस्ति दायक हो।।
द्रव्यानुयोग चरणानुयोग से, सत् श्रद्धा चारित्र धरें।
प्रथमानुयोग, करणानुयोग, दृग-ज्ञान-वृत्ति दृढ़ स्वच्छ करें।।
हैं बुद्धि ऋद्धियाँ प्रकट जिन्हें, पर लक्ष्य नहीं उन पर जिनका।
तप घोर करें आकाश चलें, है पार नहीं जिनके बल का।।
मन-वाँछित रूप बना सकते, भारी हल्का, लम्बा छोटा।
जो सर्वौषधियों की निधि हैं, ऋद्धि अक्षीण से ना टोटा।।
पर नहीं प्रयोग करें इनका, निजख्याति लाभ पूजा हेतु।
उन सम जड़ वैभव ठुकराऊँ, तब होवें वे मुक्ति सेतु।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरुवर अहो, मम स्वरूप दर्शाय।
किया परम उपकार मैं, नमन करूँ हर्षाय।।
जब मैं आता आप ढिंग, निज स्मरण सु आय।
निज प्रभुता निज में प्रभो, प्रत्यक्ष देय दिखाय।।

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जब से स्व सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रूप लखा।
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर, जन्म-मरण भय दूर हुआ।।
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परमतत्त्व जब से देखा, अद्‌भुत शीतलता पाई है।
आकुलतामय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है।। श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अक्षय प्रभु के दर्शन से ही, अक्षय सुख विकसाया है।
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है।। श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है।
विभु ब्रह्मचर्य रस प्रकट हुआ, दुर्दान्त काम विनशाया है।। श्री देव.।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हुआ निमग्न तृप्ति सागर में, तृष्णा ज्वाल बुझाई है।
क्षुधा आदि सब दोष नशें, वह सहज तृप्ति उपजाई है।।
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है।
चिर मोह महातम हे स्वामी, क्षणभर में सहज विलाया है।। श्री देव.।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जब से देखा।
शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिटती पर भावों की रेखा।।श्री देव.।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो पूर्ण निज वैभव देखा, नहीं कामना शेष रही।
निर्वाञ्छक हो गया सहज मैं, निज में ही अब मुक्ति दिखी।। श्री देव.।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज से उत्तम दिखे न कुछ भी, पाई निज अनर्घ्य माया।
निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानंद प्रकट पाया।।श्री देव.।।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा - ज्ञान मात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय।
धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय।।

(हरिगीतिका)

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो।
निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो।।
सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो।
कल्याण वाँछक भविजनों के, आप ही आदर्श हो।।

शिवमार्ग पाया आप से, भवि पा रहे अरु पायेंगे।
स्वाराधना से आप सम ही, हुए हो रहे होयेंगे।।
तव दिव्य ध्वनि में दिव्य-आत्मिक, भाव उद्घोषित हुए।
गणधर गुरु आम्नाय में, शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए।।
निर्ग्रन्थ गुरु के ग्रन्थ ये, नित प्रेरणायें दे रहे।
निज भाव अरु पर भाव का, शुभ भेद ज्ञान जगा रहे।।
इस दुषम भीषण काल में, जिनदेव का जब हो विरह।
तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार हैं।।
जग से उदास रहें स्वयं में, वास जो नित ही करें।
स्वानुभवमय सहज जीवन, मूलगुण परिपूर्ण हैं।।
नाम लेते ही जिन्हों का, हर्षमय रोमांच हो।
संसार-भोगों की व्यथा, मिटती परम आनन्द हो।।
परभाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किये।
निज भाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से।।
उन देव-शास्त्र-गुरु प्रति, आता सहज बहुमान है।
आराध्य यद्यपि एक, ज्ञायकभाव निश्चय ज्ञान है।।
प्रभु! अर्चना के काल में भी, भावना ये ही रहे।
धन्य होगी वह घड़ी, जब परिणति निज में रहे।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- अहो! कहाँ तक मैं कहूँ? महिमा अपरम्पार।
निज महिमा में मगन हो, पाऊँ पद अविकार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

(छन्द-अडिल्ल)

ढाई द्वीप में पाँच विदेह हैं शाश्वते।
तीर्थङ्कर जहँ बीस सदा ही राजते।।
भक्ति भाव से करूँ सहज आराधना।
निज पद पाऊँ नाथ यही है भावना।।

ॐ ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(चौपाई)

स्वयं सिद्ध शुद्धातम ध्याय, जन्म जरा मृत दोष नशाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्रीसीमंधर-युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येतिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधादिक दुर्भाव नशाय, क्षमाधार भव ताप मिटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय सुख क्षत् विक्षत् रूप, त्याग लहूँ आनन्द अनूप।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

त्यागूँ प्रभु अब्रह्म दुखदाय, निश्चय परम शील प्रगटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा वेदनीय उपशम होय, पाऊँ निजानन्द रस सोय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महातम तुरत नशाय, आत्मज्ञान की ज्योति जगाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जलें कर्म भव दुख विनशाय, निर्मल आत्मध्यान प्रगटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखमय सम्यक्चारित्र धार, महा मोक्षफल पाऊँ सार।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज भावमय अर्घ्य चढ़ाय, निज अविचल अनर्घ्य पद पाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- अहो विदेहीनाथ के, गुण गाऊँ सुखकार।
देह रहित शुद्धात्मा, ध्याऊँ नित अविकार।।

(वीरछन्द)

श्री सीमंधर श्री युगमंधर, श्री बाहु-सुबाहु सु संजातक।
स्वयंप्रभ ऋषभानन वन्दूँ, अनन्तवीर्य नाशें पातक।।

श्री सूर्यप्रभ विशालकीर्ति जी, जजूँ वज्रधर चन्द्रानन।
चन्द्रबाहु अरु श्री भुजंगम, ईश्वर जिन भव दुख भानन।।
नेमिप्रभ श्री वीरसेन जिन, महाभद्र प्रभु मंगलकार।
श्री देवयश अजितवीर्य को, नमूँ नित्य त्रय योग संभार।।
बीस तीर्थंकर सदा विदेहों, में शोभें आनन्दकारी।
धनुष पाँच सौ काय विराजे, समवशरण महिमा न्यारी।।
सिंहासन पर अन्तरीक्ष प्रभु, तिष्ठे अपने ही आधार।
चौंसठ चमर छत्रत्रय शोभित, भामण्डल द्युति लसे अपार।।
मोह विजय को सूचित करती, दुंदुभि धुनि संदेश सुनाय।
आओ आओ अहो जगत जन, सुनो दिव्यध्वनि शिव सुखदाय।।
धर्मतीर्थ तहँ शाश्वत वर्ते, महिमा मुझसे कही न जाय।
धन्य-धन्य जो प्रत्यक्ष देखें, सुनें दिव्यध्वनि बोधि लहाय।।
हो निर्ग्रन्थ रमें निज माहीं, परमातम पद पावें सार।
भाव सहित उनका यश गाऊँ, सहज नमन होवे अविकार।।

(छन्द-घत्ता)

जय जिनगुणसारं मंगलकारं, गाऊँ अति ही हर्षाऊँ।
निज में रम जाऊँ, कर्म नशाऊँ, ऐसे ही गुण प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जो जिन पूजें भाव से, धरें नित्य ही ध्यान।
अल्पकाल में वे लहें, अविनाशी निर्वान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच परमेष्ठी पूजन

(वीरछन्द)

पंच परमपद ज्ञानमय, अंतर माहिं दिखाँय।
हुआ सहज विश्रान्त मन, चिद्विभूति विलसाँय।।
निज प्रभु की प्रभुता निरख, आनन्द भयो अपार।
भावमयी पूजन अहो, निश्चय शिवदातार।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चौपाई-आँचलीबद्ध)

ज्ञायकमय दृष्टि प्रगटाय, समता सों पूजों शिवदाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।।
ज्ञायक ही पाँचों पद माहिं, अंतर दृष्टि सहज दरशाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल भावमय चंदन पाय, भव आताप सहज विनशाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो अखण्ड स्वभाव सुहाय, अक्षय रूप भावना भाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञायक भाव परम निष्काम, होवे ब्रह्मचर्य अम्लान।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।।ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज तृप्त शुद्धातम जान, प्रगट भयो संतोष महान।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।।
ज्ञायक ही पाँचों पद माहिं, अंतर दृष्टि सहज दरशाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज प्रकाशित ज्ञायक लोक, झलके जामें लोकालोक।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्येय रूप का ध्यान जगाय, धर्म सुगंध सहज महकाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञायक प्रभु परिपूर्ण दिखाय, शिववाँछा भी नहीं उपजाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उपादेय शुद्धातम भाय, स्थिरता मय अर्घ्य चढ़ाय।
महासुख होय, जय-जय-नाथ परम सुख होय।। ज्ञायक ही..।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

शुद्धातम ही देव है, निश्चय गुरु पहिचान।
दर्शावें श्री पंचगुरु, करूँ सहज गुणगान।।

(छन्द-चौपाई)

निज ज्ञायक दृष्टि में आवे, ज्ञानी शिवसाधक कहलावे।
गृहस्थपना तज मुनि हो जावे, ध्येय रूप का ध्यान लगावे।।

निज स्वभाव साधन के द्वारा, नाशे घातिकर्म दुखकारा।
अनंत चतुष्टय रूप विराजें, लोकालोक ज्ञान में साजें।।
अरहंत रूप परम अविकारा, मुक्तिमार्ग दरशावनहारा।
अन्तर्दृष्टि प्रभो प्रगटाई, हो अद्वैत नमन सुखदाई।।
सकल कर्म तज मुक्ति पधारे, सिद्धप्रभु आदर्श हमारे।
अशरीरी भी ज्ञान शरीरा, त्रिविध कर्ममल वर्जित धीरा।।
करना कुछ भी शेष नहीं है, पूर्ण शुद्धता विलस रही है।
जिनके गुण चिंतन कर प्राणी, समझ स्वभाव वरे शिवरानी।।
सिद्ध प्रभु ज्यों जाननहार, त्यों मैं भी हूँ जाननहार।
पूर्ण अपूर्ण विकल्प नहीं है, अहो द्रव्य दृष्टि प्रगटी है।।
होय विरागी परिग्रह त्यागी, परिणति शुद्धातम में पागी।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, मुनिसंघ के नायक पावन।।
भव्यों के निरपेक्ष सहाई, सम्यक् दीक्षा दें सुखदाई।
दोष लगे प्रायश्चित करावें, धर्म ध्वजा जग में फहरावें।।
हो भव क्लान्त शरण में आया, तुम ढिंग निजानंद प्रगटाया।
धर्ममूर्ति आचार्य नमामी, निर्ग्रन्थ दशा होय कब स्वामी।।
द्वादशांग का सार आत्मा, ध्येय रूप परमार्थ आत्मा।
स्वयं मग्न औरन समझावें, संघ माहिं जो पढ़ें पढ़ावें।।
उपाध्याय पदवी जिन पाई, ज्ञान माहिं जो होय सहाई।
वे गुरुवर सबको सुखदाता, आगम अध्यातम के ज्ञाता।।
विषय कषायारंभ नहीं है, ज्ञान ध्यान तप लीन सही है।
रत्नत्रय निधि परिग्रह हारी, ज्ञानसुधा भोजन व्रतधारी।।
लेश प्रपंच न जिनके अंदर, शुद्धातम आराधक मुनिवर।
देहादिक परद्रव्य मँझारा, इष्ट-अनिष्ट न होय विचारा।।

अद्भुत समता धारी संत, तिहुँ जग वंदनीय निर्ग्रन्थ।
जग में पंच परमपद सार, भविजीवों के तारणहार।।
सहज स्वभाव सु जाननहार, परिणति में भी जाननहार।
जाननहार हूँ सर्व प्रकार, पाया तीन भुवन में सार।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

तीन भुवन में सार, निज ज्ञायक प्रभु अविकार।
ध्येय रूप का ध्यान धर, निश्चय हो भवपार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सिद्ध पूजन

(दोहा)

सर्व कर्म बन्धन रहित, नित्य निरामय जान।
परम सूक्ष्म सिद्धात्मा, चित्स्वरूप पहिचान।।
पूजूँ भक्ति भाव से, धरूँ भेद विज्ञान।
निश्चय से मैं भी अहो, शाश्वत सिद्ध समान।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(बसन्ततिलका)

भववास दुःखमय तज निज में बसे जो।
निर्मल गुणाकर हुए शिव में बसे जो।।
जल सम पवित्र होकर मैं सिद्ध ध्याऊँ।
जन्मादि दोष क्षण में प्रभु सम नशाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्त्व आदि गुण युत जगपूज्य हैं जो।
निरखेद तृप्त निज में अविचल रहें जो।।
चन्दन समान शीतल हो सिद्ध ध्याऊँ।
संताप रूप भव में फिर ना भ्रमाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तिम शरीर से जो कुछ न्यून राजें।
अशरीर ज्ञानमय जो अक्षय विराजें।।
ले भाव अक्षत सहज मैं सिद्ध ध्याऊँ।
क्षत् रूप जग विभव अब किंचित् न चाहूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

स्वाधीन मग्न निज में निश्चल हुए जो।
कामादि दोष नाशे सुखमय हुए जो।।
निष्काम भावमय हो मैं सिद्ध ध्याऊँ।
हो ब्रह्मरूप शाश्वत आनन्द पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे आत्मनिष्ठ योगीश्वर! ध्यान गम्य।
प्रभुवर करूँ सुभक्ति वाणी-अगम्य।।
निज में ही तृप्त हो प्रभु पूजा रचाऊँ।
दुखमय क्षुधादि नाशें प्रभुता सु पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे चित्प्रकाशमय परमेश्वर अलौकिक।
निज में निमग्न रहते तिहुँ जग के ज्ञायक।।
निर्मोह ज्ञानमय हो मैं सिद्ध ध्याऊँ।
ज्ञायक स्वरूप सहजहिं ज्ञायक रहाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्रुव ध्येय रूप शुद्धातम सु:खकारी।
दर्शाय देव कीना उपकार भारी।।
हो मग्न ध्येय माहीं पूजा रचाऊँ।
दुष्टाष्ट कर्म बन्धन सहजहिं नशाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध चक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अनंत अविकारी मुक्तिनाथ।
वाँछा न शेष पाया चैतन्य-नाथ।।
आनन्द विभोर हो प्रभु पूजा रचाऊँ।
अनुपम अचल सु शाश्वत गति शीघ्र पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध चक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रैलोक्य चूड़ामणि प्रभुवर हुए हैं।
साक्षात् शुद्ध आत्मा विभु आप ही हैं।।
भावार्घ्य लेय सुखमय पूजा रचाऊँ।
अविचल अनर्घ्य अक्षय प्रभुता सु पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्ध चक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- अविकल परमानन्दमय, अविनाशी गुणखान।
भक्ति भाव पूरित हृदय, सहज करूँ गुणगान।।

(चौपाई)

स्वयं सिद्ध परमातम ध्याया, कर्म कलंक समूल नशाया।
प्रगटे गुण अनन्त अविकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
जय जय क्षायिक सम्यक्दर्शन, केवलज्ञान सु केवलदर्शन।
हुए अनन्त सु वीरजधारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
अगुरुलघु सूक्ष्मत्व अवगाहन, अव्याबाध प्रगट भयो पावन।
विन्मूरति चिन्मूरति धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।

गुणस्थान चौदह के पार, नित्य निरामय ध्रुव अविकार।
परमानन्द दशा विस्तारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
तीर्थङ्कर जब दीक्षा धारें, सिद्ध प्रभु का नाम उचारें।
अचल अनूपम पदवी धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
आत्माराधन का फल पाया, पंचम भाव प्रत्यक्ष दिखाया।
महिमावंत ध्येय सुखकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
एक क्षेत्र में प्रभु अनन्त, सत्ता भिन्न-भिन्न विलसन्त।
अहो सु अद्भुत प्रभुता धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
सिद्धालय ज्यों सिद्ध विराजे, देह माँहि त्यों आतम राजे।
ज्ञायक रूप परम अविकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
भेदज्ञान करके पहिचाना, द्रव्यदृष्टि धरि सहज प्रमाना।
होऊँ निश्चय शिवमगचारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
सहज रहूँ प्रभु जाननहार, परभावों का हो परिहार।
कटें कर्मबन्धन दुःखकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।
अपने में संतुष्ट रहाऊँ, अपने में ही तृप्त रहाऊँ।
हुई निःशेष कामना सारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

निश्चल सिद्धस्वरूप, ज्ञानस्वभावी आत्मा।
सहज शुद्ध चिद्रूप, अनुभव करि आनन्द भयो।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री वीतराग पूजन

(दोहा)

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धात्मा, उपादेय दरशाय।।
जाय बसे शिव लोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, आयो पूजन काज।।

ॐ ह्रीं श्रीवीतरागदेव! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीवीतरागदेव! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीवीतरागदेव! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-मत्तसवैया)

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया।
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वाँग न दिखलाया।।
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ।
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अंतर में पाया हूँ।।
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है।
समतामय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है।
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन निरंतर होता है।।
हे शान्ति सिन्धु! अवबोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है।
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है।।
विभु! अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है।
चैतन्य सुरभिमय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अब भान हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है।
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक, अविचल अखण्ड दिखलाया है।।
जहाँ क्षायिक भाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्य भाव की कौन कथा?
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, निःशेष हुई अब सर्व व्यथा।।
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है।
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया।
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया।।
भोगों के तो नाम मात्र से भी, कम्पित मन हो जाता।
मानो आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता।।
हे कामजयी! निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी।
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, काम बुद्धि सब विसरानी।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज आत्म अतीन्द्रिय रस पीकर, तुम तृप्त हुए त्रिभुवन स्वामी।
निज में ही सम्यक् तृप्ति की, विधि तुमसे सीखी जगनामी।।
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज-रस पान करूँ।
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनंदित हूँ।।
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है।
परम तृप्तिमय अकृत बोध ही, पूजन योग्य सुहाया है।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया।
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया।।
इन्द्रिय बिन सहज निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी।
चिर मोह अंधेरी हे जिनवर, अब तुम समीप क्षण में विघटी।।

अस्थिर परिणति में हे भगवन्! बहुमान आपका आया है।
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञान प्रदीप जलाया है।।
ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया।
तब ध्यान अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, विघटी पर-परिणति की माया।।
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्रांति सब दूर हुई।
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई।।
अस्थिरता जन्य विकार मिटें, मैं शरण आपकी हूँ आया।
बहुमानभावमय धूप धरूँ, निष्कर्म तत्त्व मैंने पाया।।
ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे।
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ जावे।।
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वाँछा ही नहिं उपजावे।
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्ति दशा का, सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे।।
अफल दृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है।
निष्काम भावमय पूजन का, विभु परमभाव फल पाया है।।
ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ्य पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी।
ले भावार्घ्य अर्चना करता, निज अनर्घ्य वैभव धारी।।
चक्री इन्द्रादिक के पद भी, नहिं आकर्षित कर सकते।
अखिल विश्व के रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते।।
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो।।
ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-भुजंगप्रयात, तर्ज-मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

प्रभो ! आपने एक ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।
यही रूप मेरा, मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने, स्वयं में ही पाया।। टेक।।
भव-भव भटकते, बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह-मदिरा ही पीता।।
फिरा ढूँढ़ता सुख विषयों के माहीं।
मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही।।
महाभाग्य से आपको, देव पाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।1।।
कहाँ तक कहूँ नाथ, महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु, दिखलाई भारी।।
निधि प्राप्ति की प्रभु, सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता, बुद्धि पलाई।।
परम भाव मुझको, सहज ही दिखाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।2।।
विस्मय से प्रभुवर, था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया, स्वयं को समझता।।
स्वयं ही प्रभु हूँ, दिखे आज मुझको।
महाहर्ष मानो, मिला मोक्ष ही हो।।

मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ, अनुभव में आया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।3।।
अस्थिरता जन्य, प्रभो दोष भारी।
खटकती है रागादि परिणति विकारी।।
विश्वास है शीघ्र ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख यह कैसे टिकेगी?
नित्य-निरंजन का अवलम्ब पाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया।।4।।
दृष्टि हुई आप सम, ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी, तुम्हारे ही सम तब।।
नहीं मुझको चिन्ता, मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बन्ध, मैं ही ज्ञेय ज्ञायक।।
हुआ दुर्विकल्पों का, जिनवर सफाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।5।।
सर्वांग सुखमय, स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तमयी, एक अविचल।।
विन्मूर्ति चिन्मूर्ति, भगवान आत्मा।
तिहूँ जग में नमनीय, शाश्वत चिदात्मा।।
हो अद्वैत वन्दन, प्रभो हर्ष छाया।
तिहूँ लोक में नाथ, अनुपम जताया।।6।।

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

आपहि ज्ञायक देव है, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री जिनवाणी पूजन-1

(वीरछन्द)

अनेकान्तमय तत्त्व बताती, स्याद्वादमय जिनवाणी।
मंगलमय शुद्धात्म दिखाती, नय प्रमाण से जिनवाणी।।
भक्ति भाव से पूजा करते, मन में अति हर्षाता हूँ।
अन्तर्लीन परिणति होवे, यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-रोला)

भेदज्ञानमय जल लेकर मैं पूजा करता।
शाश्वत ज्ञानानन्दमय आतम दृष्टि धरता।।
जन्म-जरा-मृत दोष सहज विनशावनहारी।
जिनवाणी भव्यों को माता सम उपकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षमाभावमय चन्दन लेकर जजूँ सदा ही।
क्रोधादिक मम चित्त माहिं उपजें न कदा ही।।
असहनीय भव ताप सहज विनशावन हारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सरल भाव अक्षत से पूजा करता।
क्षत्-विक्षत् संयोगी भाव सहज ही तजता।।
अक्षय पद पाऊँ होकर चैतन्य विहारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै-अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

परम शीलमय सुमनों से पूजूँ हर्षाऊँ।
महाक्लेशमय कामादिक दुर्भाव नशाऊँ।।
ब्रह्म भावना सदा सभी को मंगलकारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान शरीरी जड़ शरीर से भिन्न निजातम।
आराधन से अहो धन्य होते परमातम।।
चरु से पूजूँ भाऊँ आतम तृप्तिकारी।
जिनवाणी भव्यों को माता सम उपकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमयी निज शुद्धातम सबको दर्शाती।
जो अनादि का मोह महातम सहज नशाती।।
पूजूँ ज्ञान प्रदीप जलाऊँ मंगलकारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मादिक के दोष ज्ञान में नहीं दिखावें।
ध्याते ज्ञान स्वरूप, सहज ही कर्म नशावें।।
पूजूँ जिनवाणी ध्याऊँ आतम अविकारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो ज्ञानघन सहज मुक्त आतम दर्शाया।
जिनवाणी माँ के प्रसाद से शिवपथ पाया।।
फल से पूजूँ त्यागूँ फल वाँछा दुखकारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य-भावमय अर्घ्य सजा पूजूँ जिनवाणी।
नित्य-बोधनी तरण-तारिणी शिव सुखदानी।।
हो अनर्घ्य निज आतम प्रभुता मंगलकारी।। जिनवाणी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- गाऊँ जयमाला अहो, तत्त्व-प्रकाशनहार।
जिनवाणी अभ्यास से, जानूँ जाननहार।।

(चौपाई)

जिनवाणी शिवमार्ग बतावे, जिनवाणी निजतत्त्व दिखावे।
जिनवाणी दुर्मोह नशावे, जिनवाणी भवफन्द छुड़ावे।।
क्रोध अग्नि को सहज बुझावे, मान महाविष तुरत नशावे।
मृदुता ऋजुता माँ सिखलावे, तोष सुधारस पान करावे।।
जिनवाणी अभ्यास करें जे, निर्भय और निशंक रहें वे।
दोष नशावें गुण प्रगटावें, सहज परम वात्सल्य बढ़ावें।।
निज से अस्ति पर से नास्ति, समझे सो ही पावे स्वस्ति।
हो निष्काम निजातम भावें, हो निर्ग्रन्थ परमपद ध्यावें।।
असत् विभावों की नहिं चिन्ता, निज स्वभाव में सतत रमन्ता।
कर्म कलंक समूल नशावें, ध्रुव अविचल शिवपदवी पावें।।
आदर्शों का ज्ञान कराती, नैमित्तिक व्यवहार सिखाती।
बन्ध-मुक्ति प्रक्रिया बताती, स्वानुभूति की कला सुझाती।।
चार अनुयोगमयी जिनवाणी, माता सम सबको सुखदानी।
भक्तिभाव से करूँ अर्चना, आतमहित की जगी भावना।।
दिव्यतत्त्व दर्शावनहारी, दिव्यज्ञान प्रगटावन हारी।
जयवन्ते जग में जिनवाणी, तत्त्वज्ञान पावें सब प्राणी।।

दोहा- जिनवाणी है द्रव्यश्रुत, ज्ञानभाव श्रुतज्ञान।
अभ्यासो नित द्रव्यश्रुत, प्रगटे ज्ञान महान।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

परम प्रीति उरधार, जिनवाणी पूजा रची।
आतम रूप निहार, मोह मिटा आनन्द हुआ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री जिनवाणी पूजन-2

लोकोत्तर माता सुखकारी, जिनवाणी पायी अविकारी।
भाव सहित पूजें सुख पावें, निर्मल भेद-विज्ञान जगावें।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द : नाराच)

स्वयं सिद्ध शुद्ध चिद्रूप नित ध्यावऊँ।
जन्म-जरा-मरण रोग सहज ही नशावऊँ।।
नित्यबोधिनी अहा सु मात जिनवाणी है।
जा प्रसाद सहज होय मोहतम हानि है।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज शीतल सदैव शुद्ध आत्म भाव हूँ।
दूर अहो! भवाताप परम शान्ति पावहूँ।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्स्वरूप अक्षतं उज्ज्वलं सुखकरं।
जान लियो दूर भये क्षत् विभाव दुखकरं।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य निष्काम परम ब्रह्म समयसार है।
होय ब्रह्मचर्य सुखरूप अविकार है।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो! सहज तृप्त अनाहारी निज भाव है।
ध्यावते नशें क्षुधादि सर्व ही कुभाव हैं।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्प्रकाशमय अहा! सदा ही शुद्ध आत्मा।
उपासते कहाय शुद्ध कार्य परमात्मा।।

नित्यबोधिनी अहा सु मात जिनवाणी है।
जा प्रसाद सहज होय मोहतम हानि है।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान अग्नि माहिं सर्व कर्म नाशते।
आत्मीक सर्व गुण शुद्ध प्रकाशते।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

मुक्ति से भी मुक्त नित्य मुक्त भगवान है।
तास की आराधना से होय निर्वाण है।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्य शुद्ध सम्पदा अनर्घ लोक माहिं है।
पाय सो ही तुष्ट होय स्वयं-स्वयं माहिं है।। नित्य बोधिनी.।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जिनवाणी नित बोधिनी, नित्य तत्त्व दर्शाय।
नित्य प्रभु की शरण से, नित्यानन्द विलसाय।। 1।।
बाह्याचार विधान कहे चरणानुयोग सुखकारी।
ताहि समझ के धरो मुमुक्षु निज विशुद्धि अनुसारी।। 2।।
लोक स्वरूप कर्म बन्धन, परिणतियाँ न्यारी-न्यारी।
भेद-प्रभेद सबहि रचना, करणानुयोग विस्तारी।। 3।।
प्रथमानुयोग कथाओं द्वारा तत्त्व कहे सुखकारी।
उत्साहित करता शिव-मारग में सबको हितकारी।। 4।।
सुनें-सुनावें, पढ़ें-पढ़ावें, तज प्रमाद दुःखकारी।
जिनवाणी माँ के प्रसाद से, होवें सम्यक्धारी।। 5।।
अमृतपान करें अंतर में, यही सार सुखकारी।
रत्नत्रयमय पथ पर चलकर, पावें शिव अविकारी।। 6।।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी आनंदमय, दिव्यध्वनि का सार।
सब जग में नित विस्तरे, नमो त्रियोग सम्हार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री मुनिराज पूजन

(वीरछन्द)

विषयाशा आरम्भ रहित जो, ज्ञान ध्यान तप लीन रहें।
सकल परिग्रह शून्य मुनीश्वर, सहज सदा स्वाधीन रहें।।
प्रचुर स्व संवेदनमय परिणति, रत्नत्रय अविकारी है।
महाहर्ष से उनको पूजें, नित प्रति धोक हमारी है।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनीश्वराः! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

मुनिमन सम समता नीर, निज में ही पाया।
नाशें जन्मादिक दोष, शाश्वत पद भाया।।
गुण मूल अट्ठाईस युक्त, मुनिवर को ध्यावें।
अपना निर्ग्रन्थ स्वरूप, हम भी प्रगटावें।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय - साधुमुनिवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन सम धर्म सुगन्ध, जग में फैलावें।
बैरी भी बैर विसारि, चरणन सिर नावें।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

लख तुष समान तन भिन्न, अक्षय शुद्धातम।
आराधें निर्मम होय, कारण परमातम।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्कम्प मेरु सम चित्त, काम विकार न हो।
लहुँ परम शील निर्दोष, गुरु आदर्श रहो।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्दोष सरस आहार, माहिं उदास रहें।
हैं निजानन्द में तृप्त, हम यह वृत्ति लहें।।
गुण मूल अट्ठाईस युक्त, मुनिवर को ध्यावें।
अपना निर्ग्रन्थ स्वरूप, हम भी प्रगटावें।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल निज ज्ञायक भाव, दृष्टि माहिं रहे।
कैसे उपजावे मोह, ज्ञान प्रकाश जगे।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तज आर्त्त रौद्र दुर्ध्यान, आतम ध्यान धरें।
उनको पूजें हर्षाय, कर्म कलंक हरें।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्योऽष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चल निजपद में लीन, मन नहिं भरमावें।
निस्पृह निर्वांछक होंय, मुक्ति फल पावें।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चक्री चरणन शिर नाय, महिमा प्रगट करें।
लेकर बहुमूल्य सु अर्घ्य, हम भी भक्ति करें।। गुण मूल.।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधुमुनिवरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- कामादिक रिपु जीतकर, रहें सदा निर्द्वन्द।
तिनके गुण चिन्तत कटें, सहज कर्म के फन्द।।

(चौपाई)

मुनि गुण गावत चित हुलसाय, जनम-जनम के क्लेश नशाय।
शुद्ध उपयोग धर्म अवधार, होय विरागी परिग्रह डार।।
तीन कषाय चौकड़ी नाश, निर्ग्रन्थ रूप सु कियो प्रकाश।
अन्तर आतम अनुभव लीन, पाप परिणति हुई प्रक्षीण।।

पंच महाव्रत सोहें सार, पंच समिति निज-पर हितकार।
त्रय गुप्ति हैं मंगलकार, संयम पालें बिन अतिचार।।
पंचेन्द्रिय अरु मन वश करें, षट् आवश्यक पालें खरें।
नग्नरूप स्नान सु त्याग, केशलौंच करते तज राग।।
एकबार लें खड़े आहार, तजें दन्त धोवन अघकार।
भूमि माहिं कछु शयन सु करें, निद्रा में भी जाग्रत रहें।।
द्वादश तप दश धर्म सम्हार, निज स्वरूप साधें अविकार।
नहीं भ्रमावें निज उपयोग, धारें निश्चल आतम योग।।
क्रोध नहीं उपसर्गों माहिं, मान न चक्री शीश नवाहिं।
माया शून्य सरल परिणाम, निर्लोभी वृत्ति निष्काम।।
सबके उपकारी वर वीर, आपद माहिं बंधावें धीर।
आत्मधर्म का दें उपदेश, नाशें सर्व जगत के क्लेश।।
जग की नश्वरता दर्शाय, भेदज्ञान की कला बताय।
ज्ञायक की महिमा दिखलाय, भव बन्धन से लेंय छुड़ाय।।
परम जितेन्द्रिय मंगल रूप, लोकोत्तम है साधु स्वरूप।
अनन्य शरण भव्यों को आप, मेटें चाह दाह भव ताप।।
धन्य-धन्य वनवासी सन्त, सहज दिखावें भव का अन्त।
अनियतवासी सहज विहार, चन्द्र चाँदनी-सम अविकार।।
रखें नहीं जग से सम्बन्ध, करें नहीं कोई अनुबन्ध।
आतम रूप लखें निर्बन्ध, नशें सहज कर्मों के बन्ध।।
मुनिवर सम मुनिवर ही जान, वचनातीत स्वरूप महान।
ज्ञान माहिं मुनिरूप निहार, करें वन्दना मंगलकार।।
पाऊँ उनका ही सत्संग, ध्याऊँ अपना रूप असंग।
यही भावना उर में धार, निश्चय ही होवें भवपार।।

ॐ ह्रीं त्रिकालवर्तिसर्वाचार्योपाध्याय-साधु-मुनिवरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- अहो! सदा हृदय बसें, परम गुरु निर्ग्रन्थ।
जिनके चरण प्रसाद से, भव्य लहें शिवपंथ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री सीमन्धर पूजन

(छन्द-सोरठा)

सीमन्धर जिन नाथ, पूर्व विदेह विराजते।
हृदय विराजो नाथ, भाव सहित पूजा रचों।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जन्म जरा मृत चक्र नाशने, जिन चरणों में आया हूँ।
तुम हो अक्षय अविनाशी प्रभु, यह लख अति हर्षाया हूँ।।
यह जल लख निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।
विद्यमान सीमंधर स्वामी! आत्म भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निजानन्द का वेदन करते, भवाताप उत्पन्न न हो।
वर्ते निज में तृप्त परिणति, कर्मोदय से खिन्न न हो।।
चन्दन लख निस्सार जिनेश्वर सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय तो अपना ही वैभव, अक्षय तो अपना पद है।
अक्षय तो अपनी ही प्रभुता, पर का तो झूठा मद है।।
क्षत् भावों को त्याग जिनेश्वर अक्षत आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम वेदना का उपाय तो, ब्रह्मचर्य का धारण है।
परम ब्रह्म की सहज साधना, ब्रह्मचर्य का साधन है।।
पुष्पों को निस्सार जान प्रभु सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा वेदना नहिं उपजावे, ज्ञानामृत से तृप्ति रहे।
भोजन बिन ही अहो जिनेश्वर, सुखमय आप विराज रहे।।

ये नैवेद्य असार जानकर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।
विद्यमान सीमंधर स्वामी! आत्म भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानोद्योत रहे अन्तर में, वस्तु स्वरूप झलकता है।
सहज प्रवर्ते भेदज्ञान प्रभु, महामोहतम नशता है।।
जड़ दीपक निस्सार जानकर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो! अगन्ध आत्मा जाना, धर्म सुगन्धि प्रगट हुई।
घ्राणेन्द्रिय का विषय दुःखमय, बाह्य गन्ध से विरति हुई।।
धूप जान निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म फलों से हुई उदासी, मोक्ष महाफल पाऊँगा।
हे जिन स्वामी! अन्तर्मुख हो, निज पुरुषार्थ बढ़ाऊँगा।।
जड़ फल लख निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हे अनर्घ्य पद दाता! ज्ञाता-दृष्टा रह निजपद ध्याऊँ।
निश्चय ही तुम सम हे स्वामी, ध्रुव अनर्घ्य जिनपद पाऊँ।।
द्रव्य भावमय अर्घ्य जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।। विद्यमान. ।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा - गुण अनन्त मंगलमयी, कैसे करूँ बखान?
भक्तिवश वाचाल हो, करूँ अल्प गुणगान।।

(वीरछन्द)

समवशरण में नाथ विराजे, चतुर्मुखी अन्तर्मुख हो।
भक्ति उर में सहज उमड़ती, जब परिणति प्रभु सन्मुख हो।।

आगम से प्रभु महिमा सुन, प्रत्यक्ष लखूँ ऐसा मन हो।
जिनवर तुम ही प्राण हमारे, तुम ही तो जीवनधन हो।।
धर्मतीर्थ के परम प्रणेता, धर्म-पिता सर्वज्ञ महान।
अष्टादश दोषों से न्यारे, तिहुँ जगभूषण हे भगवान।।
दिव्यध्वनि से वर्षाते प्रभु, धर्मामृत परमानन्ददाय।
जिसको पीते-पीते स्वामी, जन्म-जरा-मृत रोग नशाय।।
अहो! अलौकिक वस्तु स्वरूप, दिखाया प्रभुवर नित अविकार।
हेय रूप पर-भाव बताये, उपादेय शुद्धातम सार।।
अन्य न कोई दुख का कारण, भूल स्वयं को है हैरान।
इसीलिए प्रभु कहा आपने, श्रेय मूल है सम्यग्ज्ञान।।
निज अक्षय प्रभुता दर्शायी, किया अनन्त परम उपकार।
हो निर्ग्रन्थ आत्मपद साधूँ, निश्चय होऊँ भव से पार।।
रहे देह में फिर भी न्यारा, अन्तर माहिं विदेही नाथ।
सहज स्मरण हो आता है, तुम्हें पूजते हे जिननाथ।।
यद्यपि आप दूरवर्ती हैं, किन्तु भाव में सदा समीप।
ज्ञानमाहिं प्रत्यक्षवत् निरखूँ, जले स्वयं अन्तर का दीप।।
निर्मम हुआ शान्त चित प्रभुवर, परम प्रभू का ध्यान रहे।
निर्मल साम्यभाव की धारा, सहजपने सुखकार बहे।।
हो निर्ग्रन्थ निमग्न रहूँ नित, सर्व विभाव नशाऊँगा।
हुआ सहज विश्वास शीघ्र ही, तुम सम ही हो जाऊँगा।।

(छन्द-त्रिभंगी)

जय-जय सीमंधर, तिहुँजग सुखकर, नृप श्रेयांस सुत अविकारी।
सत्यदेवी नन्दन, करते वन्दन, वृषभ चिन्ह मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सीमंधर भगवान को, जो पूजें चित धार।
निज सीमा पहिचानकर, सहज लहें भवपार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री बाहुबली पूजन

(हरिगीतिका)

हे बाहुबलि ! अद्‌भुत अलौकिक, ध्यानमुद्रा राजती।
प्रत्यक्ष दिखती आत्मप्रभुता, शीलमहिमा जागती।।
तुम भक्तिवश वाचाल हो, गुणगान प्रभुवर मैं करूँ।
निरपेक्ष हो पर से सहज, पूजूँ स्वपद दृष्टि धरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चामर)

स्वयंसिद्ध सुख निधान, आत्मदृष्टि लायके।
जन्म-मरण नाशि हों, मोह को नशायिके।।
बाहुबलि जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना।
तृप्त स्वयं में ही रहूँ, अन्य हो विकल्प ना।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पना, अनिष्ट-इष्ट की तजूँ अज्ञानमय।
परिणति प्रवाहरूप, होय शान्त ज्ञानमय।। बाहुबलि.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पराभिमान त्याग के, सु भेदज्ञान भायके।
लहूँ विभव सु अक्षयं, निजात्म में रमाय के।। बाहुबलि.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

छोड़ भोग रोग सम सु ब्रह्मरूप ध्याऊँगा।
काम हो समूल नष्ट, सुख-अनंत पाऊँगा।। बाहुबलि.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तोष सुधा पान करूँ, आशा तृष्णा त्याग के।
मग्न स्वयं में ही रहूँ, चित्स्वरूप भाय के।। बाहुबलि.।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतना प्रकाश में चित् स्वरूप अनुभवूँ।
पाऊँगा कैवल्य ज्योति, कर्म घातिया दलूँ।।
बाहुबलि जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना।
तृप्त स्वयं में ही रहूँ, अन्य हो विकल्प ना।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ध्यान अग्नि में, विभाव सर्व जारि हों।
देव आपके समान सिद्धरूप धारि हों ।। बाहुबलि. ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्र चक्रवर्ति के भी पद अपद नहीं चहूँ।
त्रिकालमुक्त पद अराध, मुक्ति पद लहूँ लहूँ।। बाहुबलि. ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अनर्घ्य प्रभुता आपकी सु आप में निहारिके।
नाथ भाव माहिं मैं, अनर्घ्य अर्घ्य धारिके।। बाहुबलि. ।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- मोहजयी इन्द्रियजयी, कर्मजयी जिनराज।
भावसहित गुण गावहूँ, भाव विशुद्धि काज।।

(छन्द-जोगीरासा)

अहो बाहुबलि स्वामी पाऊँ, सहज आत्मबल ऐसा।
निर्मम होकर साधूँ निजपद, नाथ आप ही जैसा।।
धन्य सुनन्दा के नन्दन प्रभु, स्वाभिमान उर धारा।
चक्री को नहिं शीस झुकाया, यद्यपि अग्रज प्यारा।।
कर्मोदय की अद्भुत लीला, युद्ध प्रसंग पसारा।
युद्ध क्षेत्र में ही विरक्त हो, तुम वैराग्य विचारा।।
कामदेव होकर भी प्रभु, निष्काम तत्त्व आराधा।
प्रचुर विभव, रमणीय भोग भी, कर न सके कुछ बाधा।।

विस्मय से सब रहे देखते, क्षमा भाव उर धारे।
जिन दीक्षा ले शिवपद पाने, वन में आप पधारे।।
वस्त्राभूषण त्यागे लख निस्सार, हुए अविकारी।
केशलौंच कर आत्म-मग्न हो, सहज साधुव्रत धारी।।
हुए आत्म-योगीश्वर अद्भुत, आसन अचल लगाया।
नहिं आहार-विहार सम्बन्धी, कुछ विकल्प उपजाया।।
चरणों में बन गई वाँमि, चढ़ गई सु तन पर बेलें।
तदपि मुनीश्वर आनन्दित हो, मुक्तिमार्ग में खेलें।।
नित्यमुक्त निर्ग्रन्थ ज्ञान-आनन्दमयी शुद्धातम।
अखिल विश्व में ध्येय एक ही, निज शाश्वत परमातम।।
निजानन्द ही भोग नित्य, अविनाशी वैभव अपना।
सारभूत है, व्यर्थ ही मोही, देखे झूठा सपना।।
यों ही चिन्तन चले हृदय में, आप वर्तते ज्ञाता।
क्षण-क्षण बढ़ती भाव-विशुद्धि, उपशमरस छलकाता।।
एक वर्ष छद्मस्थ रहे प्रभु, हुआ न श्रेणी रोहण।
चक्री शीश नवाया तत्क्षण, हुआ सहज आरोहण।।
नष्ट हुआ अवशेष राग भी, केवल-लक्ष्मी पाई।
अहो अलौकिक प्रभुता निज की, सब जग को दरशाई।।
हुए अयोगी अल्प समय में, शेष कर्म विनशाए।
ऋषभदेव से पहले ही प्रभु, सिद्ध शिला तिष्ठाए।।
आप समान आत्मदृष्टि धर, हम अपना पद पावें।
भाव नमन कर प्रभु चरणों में, आवागमन मिटावें।।

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलिजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

बाहुबली भगवान, दर्शाया जग स्वार्थमय।
जागे आतमज्ञान, शिवानन्द मैं भी लहूँ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ पूजन

(वीरछन्द)

हो चक्रवर्ति अरु कामदेव, प्रभु तीर्थंकर पदवी धारी।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ! सदा, मैं करूँ वंदना अविकारी।।
आकर आप समीप जिनेश्वर, आनन्द उर न समाया है।
तव दर्शन पाकर नाथ आज, निजदर्शन मैंने पाया है।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथजिनेन्द्रसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छंद-अवतार)

मिथ्यामल धोने आज, सम्यक् जल पाया।
प्रभु जन्म-मरण से शून्य, ज्ञायक दिखलाया।।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संताप रहित निज भाव, निज में दरशाया।
भव ताप नशावन हेतु, चन्दन सम पाया।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यःभवाताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वत अक्षत निजभाव, दृष्टि में आया।
क्षत् रागादिक विनशाय, अक्षय पद ध्याया।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्योऽक्षयपद-प्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम रूप लख देव, काम पलाया है।
सम्यक् श्रद्धा का पुष्प, आज चढ़ाया है।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन कर निज में नाथ, तृप्ति पायी है।
भव-भव की क्षुधा जिनेश, आज नशायी है।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहुँजग का जाननहार, आज जनाया है।
आलोकित है निज लोक, मोह भगाया है।।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ -जिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु आत्म ध्यान की अग्नि, अब सुलगाई है।
पर-परणति की दुर्गन्ध, सर्व जलाई है ।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल की अभिलाषा नाहिं, निज पद पाया है।
पूर्णत्व स्वयं में देख, आनन्द छाया है।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु वीतराग-विज्ञानमय शुभ अर्घ लिया।
निज में अनर्घ पद नाथ, निज से प्राप्त किया।। हे शांति.।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जग जड़ वैभव त्यागकर, निज वैभव प्रगटाय।
शांति-कुन्थु-अरनाथ की, नित जयमाला गाय।।

(छन्द-जोगीरासा)

शांति जिनेश्वर दर्शन कर, निज शांत स्वरूप लखाया।
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया।। टेक।।
चाह दाह में भटका अब तक, सुख का लेश न पाया।
मंद कषायों द्वारा अंतिम, ग्रैवेयिक तक हो आया।।
काललब्धि जागी प्रभुवर, मैं पास आपके आया ।। धन्य...।।
आत्मा तो स्वभाव से सुखमय, दिव्य रहस्य बताया।
दीन दुखी पामर मैं हूँ, ये भ्रम का रोग मिटाया।।
अन्तर में प्रत्यक्ष देख सुख, अब विश्वास जगाया।। धन्य...।।

निज चैतन्य विभूती देखी, शक्ति अनन्त निहारी।
प्रभु सम प्रभुता लखकर खुद ही भाव हुए अविकारी।।
होना नहीं सदा हूँ सुखमय, सम्यक् ज्ञान उपाया।
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया।।
अब तो यही भावना प्रभुवर, निज में ही रम जाऊँ।
स्वानुभूतिमय परिणति में ही, काल अनन्त बिताऊँ।।
निज में ही सन्तुष्ट, कामनाओं का हुआ सफाया।। धन्य...।।
कुन्थुनाथ स्तुति करते, गणधर इन्द्रादिक हारे।
तुम महिमा वर्णन करने में, हम को मंद विचारे।।
निजस्वभाव साधन द्वारा ही, प्रभु मुक्ति पद पाया।। धन्य...।।
कुन्थु आदि सूक्षम जीवों के, प्रति भी दया सिखाई।
परम अहिंसामयी धर्म की, ध्वजा प्रभो फहराई।।
चलूँ आपके पद चिन्हों पर, आज यही मन भाया।। धन्य...।।
धर्मचक्र के अर स्वरूप, सार्थक प्रभु नाम तुम्हारा।
प्रभो आपका दर्शन पाकर, जागा भाग्य हमारा।।
भव का फेरा मिटा सहज ही, शिवपथ मैंने पाया।। धन्य...।।
चक्री का साम्राज्य आपने, तृणवत् क्षण में छोड़ा।
हो निर्ग्रन्थ प्रभो उपयोग सु, निज ज्ञायक में जोड़ा।।
सकलकर्म का नाश किया प्रभु, अविचल शिवपद पाया।। धन्य...।।
कहूँ कहाँ तक भाव बहुत हैं, अल्प शक्ति पर मेरी।
तुम सम ही प्रभुतामय निस्पृह, परिणति होवे मेरी।।
चाहूँ कुछ नहिं सहजभाव से, सविनय शीस नवाया।। धन्य...।।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- मंगलमय मंगलकरण, आत्मस्वरूप महान।
शुद्धातम में मग्न हो, प्रगटे पद निर्वाण।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धर पूजन

(छन्द-रोला)

हे आदीश्वर, महावीर, सीमन्धर स्वामी।
महाभाग्य से दर्शन पाया, त्रिभुवननामी।।
करूँ समुच्चय पूजन, जिनवर हृदय विराजो।
ध्याऊँ ध्येय स्वरूप, आप सम ही है प्रभु जो।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

जल मलहारी पर नाथ, अन्तर्मल न हरे।
तव सम्यक् भक्ति भाव, जन्म जरादि हरे।।
मन में धर ऐसा भाव, पूजूँ आनन्दकर।
प्रभु आदिनाथ महावीर, सीमंधर जिनवर।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

चन्दन की शक्ति सु नाहिं, भव आताप हरे।
तव शान्त रूप का ध्यान, मन को शान्त करे।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

जग में अक्षय कहलाय, उसका क्षय होता।
अक्षय प्रभु ज्ञायक भाव, सहज सदा रहता।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

प्रभु पंचेन्द्रिय के भोग, भोगत व्यर्थ फँसे।
है ब्रह्मचर्य निर्दोष, काम समूल नशे।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

नाना विध व्यंजन देव, नहीं क्षुधादि हरें।
समभावमयी रस श्रेष्ठ, शाश्वत तृप्ति करे।।

मन में धर ऐसा भाव, पूजूँ आनन्दकर।
प्रभु आदिनाथ महावीर, सीमंधर जिनवर।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

दीपक वा अन्य प्रकाश, अन्तर्तम न हरे।
निर्मोह ज्ञान शिवरूप, मार्ग प्रकाश करे।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

नहिं धूप-दहन से नाथ, कर्म कलंक जरे।
निष्कर्म निराकुल होय, प्रभु सम ध्यान धरे।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

मुक्तिपथ में आदर्श, प्रभुवर आपहि हो।
तव धर्मतीर्थ अपनाय, जीव स्वयं प्रभु हो।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अर्घ्य-अनर्घ्य सु नाहिं, भाव अनर्घ्य धरूँ।
पंचमगति अचल अनूप, विभुवर प्राप्त करूँ।। मन में...।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- भक्ति सहित पूजा रची, गाऊँ अब जयमाल।
द्वन्द्व-फन्द सब तोरिके, होऊँ नाथ निहाल।।

(छन्द-मानव)

मैं महाभाग्य से पाया, जिनदर्शन मंगलकारी।
है यही भावना स्वामिन्, वर्ते समता सुखकारी।।
इस भरतक्षेत्र में जब थी, शुभ कर्मभूमि आने को।
सर्वार्थसिद्धि से आये, मुक्तिपथ दर्शाने को।।
पितु नाभिराय कुलकर थे, रानी मरुदेवी माता।
कल्याणक देव मनाये, पाई सबने सुखसाता।।
राज्यावस्था में तुमने, लौकिक जीवन सिखलाया।
फिर निधन सुरी का लखकर, निर्ग्रन्थ मार्ग अपनाया।।

श्रेयांस नृपति निज आँगन में, इक्षु रस पान कराया।
प्रभु दानतीर्थ का यह दिन, अक्षय तृतीया कहलाया।।
तुम सहस्र वर्ष तप कीना, फिर घाति कलंक नशाया।
प्रगटा था अनन्त चतुष्टय, प्रभु धर्मतीर्थ प्रगटाया।।
कैलाश शिखर शिव पाया, आदीश्वर आनन्दकारी।
है यही भावना स्वामिन्! वर्ते समता सुखकारी।।
अन्तिम तीर्थंकर सन्मति हो सबको सन्मति दाता।
वर्धमान वीर अतिवीर महावीर नाम विख्याता।।
पर्याय सिंह की स्वामिन्! सम्यग्दर्शन प्रगटाया।
फिर दशवें भव में प्रभुवर रत्नत्रय पूर्ण कराया।।
हो बालयती हे विभुवर भव भोगों को ठुकराया।
हे शासन नायक! सुखमय निर्ग्रन्थ मार्ग अपनाया।।
पावापुर से शिव पाया हम नमन करें अविकारी।
है यही भावना स्वामिन्! वर्ते समता सुखकारी।।
हो विद्यमान तीर्थंकर, पूरव विदेह के स्वामी।
मैं भरतक्षेत्र में पूजूँ तुमको हे अन्तर्यामी।।
हैं यहाँ नहीं तीर्थंकर चौबीसों मुक्ति पधारे।
स्मरण तुम्हारा आया प्रभुवर हो नाथ हमारे।।
सीमंधर जिन को पूजूँ अपनी सीमा में आऊँ।
दु:खमय परिग्रह को त्यागूँ निर्ग्रन्थ मार्ग अपनाऊँ।।
वैभाविक कर्म नशावें होऊँ अक्षय गुणधारी।
है यही भावना स्वामिन्! वर्ते समता सुखकारी।।

(छन्द-घत्ता)

जय जय सुखसागर सुगुण उजागर, चरण शरण सब दु:खहारी।
मैं निजपद ध्याऊँ, शिवपद पाऊँ, सफल भावना हो म्हारी।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-महावीर-सीमन्धरजिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा- तीर्थंकर त्रय पूज, सहजानंद उर में भयो।
वांछा और न दूज, हो भविष्य प्रभु आप सम।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री आदिनाथ-बाहुबली-भरतेश्वर पूजन

(वीरछन्द)

भरतक्षेत्र के वर्तमान के, आदि तीर्थंकर ऋषभेश्वर।
आदि मदन पद प्राप्त बाहुबली, चक्री आदि सु भरतेश्वर।।
दर्शन करते अहो जिनेश्वर, भक्ति भाव उर उमगाया।
करूँ समुच्चय पूजन मैं भी, जिनपद पाने ललचाया।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-ताटंक)

जन्म मरण का चक्र मिटाने, आया प्रभुवर जल लेकर।
अविनाशी ध्रुव पद आराधूँ, भाऊँ भावना मंगलकर।।
हे आदीश्वर, हे बाहुबली, हे भरत जिनेश्वर जगनामी।
भक्तिभाव से करूँ अर्चना, अपनी निधि पाऊँ स्वामी।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

चंदन में कुछ शक्ति नहीं है, रागाताप मिटाने की।
उसे चढ़ाकर जगी लालसा, प्रभु शीतलता पाने की।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्यः भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

अक्षय है केवल निज स्वभाव, स्वाभाविक प्रभुता ही अक्षय।
पूजूँ अक्षत से यही भाव, क्षत-भावों का हो जावे क्षय।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

ये भोग रोग की खान दिखें, अब यही भाव निष्काम रहूँ।
श्रद्धा के सुमन समर्पित हैं, प्रभु चाह दाह में नहीं दहूँ।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

हे अनाहार! हे परमतृप्त! नैवेद्य चढ़ाऊँ भक्ति पगा।
समरस पीते नित तृप्त रहूँ, पूजन करते यह भाव जगा।।
हे आदीश्वर, हे बाहुबली, हे भरत जिनेश्वर जगनामी।
भक्तिभाव से करूँ अर्चना, अपनी निधि पाऊँ स्वामी।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

हे केवलज्ञान प्रकाशमयी! मैं भी ऐसा प्रकाश पाऊँ।
निर्मोही हो, निर्ग्रन्थ रहूँ बस निज स्वभाव में रम जाऊँ।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

ऐसा पुरुषार्थ जगे स्वामी, मैं निर्मल आतम ध्यान धरूँ।
निष्कर्म दशा प्रगटे अनुपम, वैभाविक परिणति दूर करूँ।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

अरे भोगते कर्मों के फल में चिरकाल गंवाया है।
मुक्तस्वरूप! लहूँ मुक्तिफल भाव यही उर आया है।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

अद्भुत आतम वैभव स्वामिन्! प्रगट दिखाया है तुमने।
ऐसा निज वैभव पाने को यह अर्घ्य चढ़ाया है मैंने।। हे आदी. ।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वरजिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कर्मभूमि की आदि में, किया स्व-पर कल्याण।
अद्भुत जीवन आपका, पाया पद निर्वाण।।

(तर्ज : अहो जगत गुरूदेव...)

पंचकल्याणक पूज्य **ऋषभदेव** जिनराजा।
साँचे दीनदयाल, तारण-तरण जिहाजा।।
राज्यावस्था माँहि, लोक रीति वर्तायी।
निधन सुरी अवलोक, तत्त्व भावना भायी।।
मुनि दीक्षा अवधार, मार्ग प्रवर्तन कीना।
नृप श्रेयांस कुमार, प्रथमाहार सु दीना।।
सहस्र वर्ष तप कीन, घाति कर्म नशाये।
दर्श ज्ञान सुख वीर्य, प्रभु अनन्त प्रगटाये।।
समवशरण के माहिं, नाथ दिव्य ध्वनि द्वारा।
प्रगटा मुक्तिमार्ग, धर्मतीर्थ सुखकारा।।
पूर्व चौरासी लाख, आयु पूर्ण कर स्वामी।
आतम गुण विलसाय, आप हुए शिवगामी।।
बाहुबली भगवान, अनुपम चरित तुम्हारा।
पढ़ते सुनते देव! भासे जगत असारा।।
युद्ध क्षेत्र के माहिं, तुम वैराग्य विचारा।
अहो सहज निर्द्वन्द्व, निर्ग्रन्थ पद स्वीकारा।।
नहिं आहार-विहार, आसन अचल लगाया।
माने जग आश्चर्य, चक्री शीश नवाया।।
क्षपक श्रेणि चढ़ आप, अनन्त चतुष्टय लीना।
ऋषभदेव से पूर्व, शिवपुर गमन सु कीना।।

पूजा कर जिनराज, आनन्द उर न समाये।
नाशे मिथ्या मोह, रत्नत्रय प्रगटाये।।
धन्य धन्य **भरतेश,** तुम गुण कैसे गाऊँ?
अहो आप सम आप, पूजा कर हर्षाऊँ।।
करी दिग्विजय आप, चक्र सुदर्शन लेकर।
नृपति सहस बत्तीस, मानी आज्ञा सुखकर।।
नव निधि, चौदह रत्न, वैभव अपरम्पारा।
हुआ हृदय वैराग्य प्रभु तृण सम परिहारा।।
दीक्षा दिन ही देव, केवलज्ञान सु पाया।
आतम सुख स्वाधीन, अहो आप दर्शाया।।
कर्म चक्र वश जीव, भव-भव में भरमाये।
धर्म चक्र जिननाथ, सब दुख द्वन्द्व नशाये।।
मिटे चतुर्गति चक्र, परमानन्द विलसावे।
सिद्ध चक्र में जाय, फिर तो अचल रहावे।।
सहज भाव से होय, प्रभु पूजन सुखकारी।
यही भावना ईश ! परिणति हो अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ-बाहुबलि-भरतेश्वर-जिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द-सोरठा)

जिनपूजा अविकार, भक्तिभाव से जो करें।
वे होवें भवपार, आधि-व्याधि सब ही मिटें।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच तीर्थंकर पूजन

(छन्द-रोला)

तीर्थराज सम्मेदशिखर वंदन को आया।
पंच प्रभु का दर्श तलहटी में ही पाया।।
चन्द्र, शान्ति, श्री पार्श्व, वीर, सीमंधर स्वामी।
सहज विराजो मम अंतर में त्रिभुवननामी।।

ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-तांटक)

मिथ्यामल धोने को प्रभु, सम्यक् जल पाने आया हूँ।
हे देव चढ़ाकर प्रासुक जल, मन ही मन अति हर्षाया हूँ।।
श्री चन्द्रप्रभो, श्री शान्तिनाथ, श्री पार्श्व जिनेश्वर मंगलमय।
श्री महावीर, श्री सीमंधर, पूजूँ सम्मेदशिखर चिन्मय।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, वीरनाथ, सीमंधर स्वामी पंचतीर्थंकर समूह जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ये क्रोध महा संताप करे, ज्यों प्रभुवर आप नशाया है।
पाने को उत्तम क्षमा भाव, चन्दन जिनदेव चढ़ाया है।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्मान नाशने हे स्वामिन्, उत्तम मार्दव पाने आया।
शुभ अक्षत से पूजा करते, अक्षय पद लखकर हर्षाया।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

विषयों की चाह मिटाने को, जिन चरण शरण में हूँ आया।
प्रासुक पुष्पों से पूजा करते, परम ब्रह्म प्रभु दर्शाया।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं क्षुधा विनाशक संतोषामृत पाने, जिनवर आया हूँ।
नैवेद्य असार चढ़ाकर प्रभुवर, तृप्ति लखकर हर्षाया हूँ।।
श्री चन्द्रप्रभो, श्री शान्तिनाथ, श्री पार्श्व जिनेश्वर मंगलमय।
श्री महावीर, श्री सीमंधर, पूजूँ सम्मेदशिखर चिन्मय।।
ॐ ह्री श्री पंचतीर्थंकर समूह क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
मोह विनाशक स्व-पर प्रकाशक, आत्मज्ञान पाने आया।
प्रभो! दीप से पूजा करते, चित्स्वरूप लख हर्षाया।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
तप की शोधक अग्नि जले, ऐसी विधि पाने आया हूँ।
प्रभु पूजा कर निष्कर्म दशा, प्रगटाने को ललचाया हूँ।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।
चारों गतियाँ दुख रूप समझ, मुक्ति पद पाने हूँ आया।
प्रासुक फल से पूजा करते, रत्नत्रय फल पा हर्षाया।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
अनुपम अनर्घ्य प्रभुता प्रभु सम, पाने का भाव जगाया है।
प्रभु सम ही स्थिरता पाऊँ, मैं सविनय अर्घ्य चढ़ाया है।। श्री चन्द्रप्रभो. ।।
ॐ ह्रीं श्री पंचतीर्थंकर समूह अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-सोरठा)

जग कल्याण निमित्त, आप परम कल्याणमय।
जयमाला सुखकार, गाऊँ सहजानन्दमय।।

(तर्ज : प्रभु पतित पावन...)

हे परम ज्ञायक ज्ञान क्षायिक, प्रगट परमानन्दमय।
युगपद सु लोकालोक भासे, तदपि प्रभु शुद्धात्ममय।। 1।।
संतुष्ट निज में ही रहें, प्रभु तृप्त निज में ही रहें।
प्रभु वीतरागी दिव्यध्वनि से, मुक्ति का मारग कहें।। 2।।
प्रभु शांत जिनमुद्रा निरखते, चित्त सहजहिं शांत हो।
प्रगटे सु भेदविज्ञान अन्तर, परिणति विश्रान्त हो।। 3।।

अशरण जगत में हे जिनेश्वर! आप ही साँचे शरण।
रत्नत्रयमय धर्म ही, दीखे विभो तारण-तरण।। 4।।
भवताप हारक मुक्ति दायक, चन्द्रप्रभु की भक्ति से।
मैं भी आराधूँ आत्मा निज, सहज अन्तर्दृष्टि से।। 5।।
हे शान्ति जिनवर आप सम ही, शांति निज में ही लहूँ।
निर्भ्रान्त होकर भोग अरु वैभव जगत का नहीं चहूँ।। 6।।
हे पार्श्व प्रभु! तव पार्श्व में, मैं भी विराजूँ सिद्ध हो।
निज में ही होवे मग्नता, ध्रुव भाव सहज प्रसिद्ध हो।। 7।।
प्रभु वीर मैं भी वीर हो, मोहादि पर पाऊँ विजय।
निर्मुक्त जीवन आप सम पाऊँ परम आनन्दमय।। 8।।
अहो सीमंधर विदेही नाथ! भक्ति हो सफल।
सहज सीमा में रहूँ, दुष्कर्म सब होवें विफल।। 9।।
शाश्वत परम निर्वाण भूमि, भक्ति से वंदन करूँ।
निष्काम हो, निर्ग्रन्थ हो, मैं शीघ्र भवसागर तिरूँ।। 10।।

(छन्द-पद्धरि)

जय-जय अनंत भगवन्त सिद्ध,
निज आतम प्रभुता कर प्रसिद्ध।
लोकाग्र शिखर पर मैं निहार,
वंदूँ प्रभु अन्तर्दृष्टि धार।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, वीरनाथ, सीमंधर स्वामी पंच तीर्थंकर समूह अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भाव सहित पूजा करें, सर्व क्लेश विनशाय।
जग में नित जयवंत हो, जिनशासन सुखदाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच-बालयति तीर्थंकर मण्डल विधान

(श्री पंच-बालयति तीर्थंकर विधान हेतु प्रथम श्री पंच-बालयति पूजन करें पश्चात् श्री पंच-बालयति तीर्थंकरों की अलग-अलग पूजन करें, तत्पश्चात् श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की पूजन कर जयमाला एवं समुच्चय महाजयमाला, महार्घ्य आदि पढ़कर विधान पूर्ण करें।)

श्री पंच-बालयति तीर्थंकर विधान पीठिका

(दोहा)

अनेकान्तमय ब्रह्मचर्य, सर्व गुणों की खान।
दुर्भावों से विरत हो, प्रगटे आतम ध्यान।। 1।।
इन्द्रिय सुख की वासना, सर्व दुखों का मूल।
विषयों में आसक्त तो, शिवपथ जाये भूल।। 2।।
तातैं ज्ञानाभ्यास कर, विषय कषाय विडार।
भाऊँ सम्यक् भावना, संयम का आधार।। 3।।
आराधन करके हुए, अहो स्वयं आराध्य।
भाव सहित कर वंदना, पाऊँ अक्षय साध्य।। 4।।
बालयती तीर्थेश को, नमहुँ त्रियोग सम्हार।
मंगलमयी विधान शुभ, रचूँ सु मंगलकार।। 5।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच-बालयति पूजन

(छन्द-मत्तसवैया)

हे ब्रह्मचर्य के धनी ब्रह्ममय, परम पूज्य त्रिभुवन स्वामी।
हे पंच बालयति तीर्थंकर, तुम सम परिणति हो जगनामी।।
आनन्दमयी निज परम ब्रह्म, मैंने प्रत्यक्ष निहारा है।
उल्लास हृदय में छाया प्रभु, जब मैंने तुम्हें चितारा है।।
ज्यों दर्पण सन्मुख हो जग में, मोही तन रूप सजाते हैं।
त्यों तुम पूजन कर हे विभुवर, हम अपना भाव बढ़ाते हैं।।

(सोरठा)

वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व प्रभु, महावीर जिन।
नमत होय सुख चैन, द्रव्य-दृष्टि धर पूज हूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीरपंचबालयति-तीर्थंकरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीरपंचबालयति-तीर्थंकरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीरपंचबालयति-तीर्थंकरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

निज में जुड़ती है दृष्टि जभी, समता का सहज प्रवाह बहे।
आनन्द अपूर्व प्रकट होवे, तब जन्म-जरा-मृत नहीं रहे।।
है जन्म-जरा-मृत रहित प्रभु! मम आज दृष्टि में आया है।
समरस से तृप्त रहूँ विभुवर, मैंने जल यहाँ चढ़ाया है।।
अतिशय है ब्रह्म भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम शांति शीतलता से, आपूर्ण सरोवर मम प्रभु है।
भव रहित जहाँ भव ताप नहीं, सर्वोत्कृष्ट सुखमय विभु है।।
जब ताप नहीं तब चन्दन का भी, काम नहीं कुछ शेष रहा।
चन्दन प्रभु यहीं चढ़ाया है, निष्पाप-ताप निज रूप गहा।। अतिशय. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

छिलके से ढका हुआ अक्षत, छिलका हटते ही प्रकट हुआ।
पर्याय दृष्टि हटते ही त्यों, मम अक्षय प्रभु प्रत्यक्ष हुआ।।
निज अक्षय प्रभु के आश्रय से ही, राग-द्वेष का होवे क्षय।
ये अक्षत यहाँ चढ़ाये हैं, मैंने पाया है पद अक्षय।। अतिशय. ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम पूर्ण निज वैभव का, मैं तृप्त हो गया दर्शन कर।
संकल्प-विकल्प प्रवेश न हों, रहते सीमा से ही बाहर।।
अद्भुत रहस्य यह पाया है, इच्छाओं की उत्पत्ति नहीं।
बस निज स्वभाव में मग्न रहूँ, ये पुष्प चढ़ाता आज यहीं।।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समरस अमृत का सागर है, क्षुत् पीड़ा का अस्तित्व नहीं।
त्यागोपादान शून्य पर से, कुछ ग्रहण-त्याग कर्तृत्व नहीं।।
जो निज स्वभाव से च्युत होकर, तन के आश्रय से भूख लगी।
नैवेद्य समर्पित यहीं प्रभो! स्वाश्रय से भव की भूख भगी।।अतिशय.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकाशत्व शक्ति शाश्वत मेरी, है सहज प्रकाशित मम स्वभाव।
सब बाह्य प्रकाश अनावश्यक, उसमें नहिं दिखता निजस्वभाव।।
बाहर की दृष्टि छोड़ अहो! स्वसन्मुख चिन्मय ज्योति जगे।
ये दीपक यहीं विसर्जित है, अन्तर लौ से तम मोह भगे।।अतिशय.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश धर्ममयी शाश्वत सुगन्ध चेतन नंदन में महक रही।
दुर्गन्धित भाव विकारों का, किंचित् भी है अस्तित्व नहीं।।
यह धूप यहीं प्रभु छोड़ रहा, अब पर से दृष्टि हटाई है।
स्वसन्मुख होकर अब प्रभु सम, स्वधर्म सुरभि शुभ पायी है।।अतिशय.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु मुक्त स्वरूप सहज पाया; आनन्द अपूरव छाया है।
शिवफल की भी वाँछा न रही, अन्तर पुरुषार्थ जगाया है।।
ज्ञानी तो फल वाँछा त्यागे, पर मूढ़ त्याग का फल चाहे।
फल चढ़ा रहा हूँ हे जिनवर, बस ये विकल्प भी नहिं आये।। अतिशय.।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु सर्व विशुद्ध स्वतत्त्व लखा, अब दृष्टि न पल भी हटती है।
होता उपयोग जभी बाहर, एकाग्र भावना जगती है।।
एकाग्र रहे उपयोग सदा, यह ही निश्चय से अर्घ्य कहा।
जिससे अविचल अनर्घ्यपद हो, प्रभु बाह्य अर्घ्य इसलिए तजा।।
अतिशय है ब्रह्मभाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- वासुपूज्य श्री मल्लिजिन, नेमि पार्श्व महावीर।
बाल ब्रह्मचारी सुजिन, नमत मिटै भवपीर।।

(छन्द-पद्धरि)

जय **वासुपूज्य** देवाधिदेव, मंगलमय मंगलकरन एव।
जय चिदानन्द चिद्रूप सार, धारी निज महिमा निर्विकार।।
पूरवभव में तुमने स्वामी, सुन युगमंधर प्रभु की वाणी।
नित आत्मभावना भाई थी, तीर्थंकर प्रकृति बंधाई थी।।
तप कर महाशुक्र विमान गये, चय नृप वसुपूज्य के पुत्र भये।
कल्याणक देव मनाये थे, पर निज में आप समाये थे।।
भोगों को नहिं स्वीकार किया, दूरहि से प्रभुवर छोड़ दिया।
हो बालयति दीक्षा धारी, प्रकटाया निज पद सुखकारी।।
कर रहा अर्चना **मल्लिनाथ,** भवि दर्शन कर होते सनाथ।
वट वृक्ष विशाल गिरा लख कर, पूरव भव में दीक्षा धरकर।।
तीर्थंकर पद का बन्ध किया, अपराजित स्वर्ग प्रयाण किया।
तँहतैं चयकर अवतार लिया, शादी के समय वैराग लिया।।
छह दिन छद्मस्थ रहे स्वामी, नव-केवललब्धि रमा पायी।
भव्यों को शिवपथ दर्शाया, सम्मेदशिखर से शिव पाया।।
जय **नेमीश्वर** महिमा महान, सुन पशु क्रन्दन वैराग्य ठान।
छोड़े पशु अरु राजुल छोड़ी, भवबन्धन की कड़ियाँ तोड़ीं।।

जग को अनुपम आदर्श दिया, प्रभु धर्म अहिंसा प्रकट किया।
गिरनार शिखर से शिव पाया, प्रभु चरणों में हम सिर नाया।।
जय **पार्श्वनाथ** तव गुण अपार, गणधर भी पावें नहीं पार।
इक दिवस सभा में विराज रहे, साकेत नरेश की भेंट लिए।।
इक दूत वहाँ पर आया था, साकेत विभव दरशाया था।
ऋषभादि प्रभु स्मरण हुआ, वैराग्य हृदय में जाग उठा।।
दीक्षा ले निज में मग्न हुए, तब कमठ घोर उपसर्ग किये।
अप्रभावित अचल रहे जिनवर, परमात्म दशा प्रगटी सत्वर।।
ऐसी स्थिरता प्रभु पाऊँ, बस परम ब्रह्म में रम जाऊँ।
हे **महावीर** विभु परम धीर, महिमा सागर से भी गम्भीर।।
शादी प्रसंग जब आया था, प्रभुवर तुमने ठुकराया था।
दीक्षा ले द्वादश वर्ष प्रभो, दुर्द्धर तप धारा आप विभो।।
निज ध्यान अग्नि द्वारा जिनेश, कर्मों को ध्वस्त किया अशेष।
अन्तिम तीर्थंकर अभिरामी, मैं करूँ वन्दना जगनामी।।
तव दर्शन करके हे स्वामी, मैंने निज महिमा पहिचानी।
प्रभु प्रबल पराक्रम प्रगटाऊँ, रागादि भाव पर जय पाऊँ।।
जो तीर्थ आपने प्रगटाया, वह ही स्वामी मुझको भाया।
कीचड़ लपेट तन धोना क्या, अरु कूद अग्नि में रोना क्या?
श्रद्धान परम जागा मन में, सुख शान्ति सदा है अन्तर में।
परमाणु मात्र भी नहिं पर में, मेरा सर्वस्व सदा मुझमें।।
उपयोग नहीं पर में भागे, अतिचार नहीं किंचित् लागे।
प्रभुवर! निज में ही रम जाऊँ, निज परम ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- परम ब्रह्म आनन्दमय, चित् स्वभाव अविकार।
समयसार में लीन हो, होऊँ भव से पार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(इसके पश्चात् इसी पुस्तक में आगे दी गई श्री पंच-बालयति तीर्थंकरों की अलग-अलग पूजन करें, तत्पश्चात् श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की पूजन करें।)

श्री उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म पूजन

(छन्द-अडिल्ल)

क्षमा आदि अन्तर्गर्भित जिसमें अहा,
विषय-कषायों से विरक्ति लक्षण कहा।
आत्मलीनता ब्रह्मचर्य सुखकार है,
पूजूँ धारूँ सहज भक्ति उर धार है।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

ले समकित जल अविकारी, धोऊँ मिथ्यामल भारी।
भक्ति से पूज रचाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले क्षमा भावमय चन्दन, करता नित ही अभिनन्दन।
पूजन करि क्रोध नशाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत्रूप विभाव नशाऊँ, अक्षय स्वरूप ही ध्याऊँ।
अक्षत से पूज रचाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानामृत जल बरसावे, विषयों की चाह नशावे।
भावों के पुष्प चढ़ाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जब आतम अनुभव आवे, अद्भुत तृप्ति प्रगटावे।
चरु सरस भावमय लाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जहँ सम्यग्ज्ञान विलसता, मिथ्यातम सहज विनशता।
प्रभु अन्तर्दीप जलाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्ध्यान मिटे दुखकारी, हो आत्मध्यान सुखकारी।
मैं कर्म कलंक जलाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मों के फल नहिं चाहूँ, मैं मुक्ति महाफल पाऊँ।
प्रभु प्रासुक फल ले आऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभुता अनर्घ्य अविकारी, मैंने प्रत्यक्ष निहारी।
भक्तिमय अर्घ्य चढ़ाऊँ, व्रत ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नवधाशील अर्घ्यावलि

(दोहा)

ब्रह्मचर्य अद्भुत निधि, राखो सदा बचाय।
विषयी तस्कर जग फिरें, दृढ़ नव बाढ़ लगाय।।

ॐ ह्रीं श्री नवधाशीलपालनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(चौपाई)

स्त्री संग तजो दुखकारी, भजो असंग भाव अविकारी।
सत्संगति में रहकर भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री स्त्रीसहवासवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगलमय निज धर्म सम्हारो, नहीं वासना सहित निहारो।
खोटे भाव नहीं हों भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री स्त्रीमनोहरांगनिरीक्षणवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसे हो विषयों का पोषण, ऐसे वचनशील के दूषण।
सुनो न बोलो मेरे भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री रागवचनवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करो सदा तत्त्वों का चिन्तन, भोगों का नहिं होय स्मरण।
सावधान नित रहकर भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री पूर्वभोगानुस्मरणवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करो सदा सात्विक आहार, सादा जीवन श्रेष्ठ विचार।
धर निर्ग्रन्थ भावना भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री वृष्येष्टरसवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर रत्नत्रयमय शृंगार, तजो अध्रुव तन का शृंगार।
शील स्वयं आभूषण भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री स्वशरीरसंस्कारवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नारी की शय्या और वस्त्र, करें विकार भाव हों त्रस्त।
विविक्त शय्यासन तप भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री स्त्रीशय्यासनवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अति भोजन प्रमाद उपजाय, कामादिक दुर्भाव कराय।
युक्ताहारी होकर भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री उदरपूर्णासनवर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विकथा त्याग करो स्वाध्याय, आतम अनुभव रस विलसाय।
चेष्टायें निर्मल हों भाई, ब्रह्मचर्य पालो सुखदाई।।

ॐ ह्रीं श्री कामकथावर्जनरूपोत्तम-ब्रह्मचर्यधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

अब्रह्मभाव विडार, ब्रह्मस्वरूप निहारते।
रहें सहज अविकार, तिन गुण चिन्तत अघ नशैं।।

(छन्द-पद्धरि)

जिन परम ब्रह्म को पहिचाना, अपना सुख अपने में जाना।
अपनी प्रभुता प्रतिभासी हो, उनको नित सहज उदासी हो।।
धनि धन्य जिनेश्वर के नन्दन, करते शुद्धातम अभिनन्दन।
नित तत्त्वभावना भाते हैं, अपना वैराग्य बढ़ाते हैं।।
ज्ञानानन्द ही जगमाहिं सार, है शिवस्वरूप शिव सुखकार।
निजपद ही तृप्तिदायक है, निजपद संतुष्टि प्रदायक है।।
भोगों का चिन्तन, अभिलाषा, संतापकरण दुखमय भासा।
चर्चा अरु चेष्टा महानिंद्य, से होय जीव को पाप बंध।।
विषयों के वश जो होंय दीन, वे रहें सदा ही पराधीन।
जो विषयों से होवें उदास, उनका सब जग हो जाय दास।।
व्रत ब्रह्मचर्य सबसे महान, अन्तर्गर्भित सब सुगुण जान।
प्रगटाने योग्य सु उपादेय, इससे भवि पावें परम श्रेय।।
अति पुण्योदय अवसर आया, नरभव अरु जिनशासन पाया।
स्वाध्याय करो मंगलकारी, तत्त्वों का निर्णय हितकारी।।
अपने को ध्रुव आतम जानो, देहादिक भिन्न सु पहिचानो।
रागादिक जानो दुखदायी, रत्नत्रय ही आनन्ददायी।।
समझो चारों गति ही दुःखमय, है मात्र मोक्ष ही मंगलमय।
आतम अनुभव कर श्रद्धा धर, वैराग्य भावना फिर भाकर।।

इन्द्रिय विषयों का त्याग करो, अब जगत्पूज्य ब्रह्मचर्य धरो।
बाधाओं से नहिं घबराओ, दृढ़ता पूर्वक बढ़ते जाओ।।
लोकोत्तम ज्ञायक आराधो, समदर्शी हो शिवपद साधो।
है यही जगत में एक सार, शाश्वत् आनन्दमय समयसार।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

समयसारमय परिणति, नियमसार हो जाय।
यही परम ब्रह्मचर्य है, धारे सो शिव पाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंच-बालयति तीर्थंकर समुच्चय जयमाला

(दोहा)

पूजा कर आनन्द से, अब समुच्चय जयमाल।
गाऊँ, पाऊँ ब्रह्मचर्य, हो कृतकृत्य निहाल।।

(छन्द-तांटक)

जय परमब्रह्म मंगलस्वरूप, लोकोत्तम शाश्वत शरणभूत।
निष्पाप परम पावन स्वरूप, विन्मूरति चिन्मूरति अनूप।।
है अनेकान्तमय परम तत्त्व, स्वाधीन शुद्ध है सहज तत्त्व।
परभावों से अत्यन्त भिन्न, ज्ञानादिक भावों से अभिन्न।।
निज अनुभूति से ही प्रसिद्ध, निष्कर्म निरामय सहज सिद्ध।
है परम ज्योतिमय ज्ञानरूप, निष्काम अकर्त्ता सुख स्वरूप।।
नित निरावरण निर्दोष रूप, कारण परमातम सुगुण भूप।
जिसकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन, शिवमार्ग मूल मंगलदर्शन।।
जिसका अनुभवन सुज्ञान अहा, जिसमें चर्या चारित्र कहा।
है परमध्यान का ध्येय यही, है ज्ञानमात्र निष्कम्प मही।।

है नित्य मुक्त प्रभुता स्वरूप, ये ही है मम परमार्थ रूप।
अब मैंने ऐसा पहिचाना, अनुभव से है प्रत्यक्ष जाना।।
अतीन्द्रिय सुख का स्वाद चखा, इन्द्रिय सुख अब निस्सार दिखा।
निवृत्त स्वरूप अपना जाना, निवृत्तिमय जीवन पहिचाना।।
सब बाह्य प्रवृत्ति क्लेशरूप, तज ध्याऊँ निज ज्ञायक स्वरूप।
अब यही भावना उर जागी, शिवपद साधन की रुचि लागी।।
निज ब्रह्मस्वरूप सहज भाऊँ, ध्रुव ब्रह्मस्वरूप सदा ध्याऊँ।
अतिचार न कोई लगे कभी, हों बाढ़ सहज निर्दोष सभी।।
मैं द्रव्य-भाव से रहूँ नगन, नित चित्स्वरूप में रहूँ मगन।
जितमोह जितेन्द्रिय हो करके, परिषह उपसर्ग विजय करके।।
निजबल से निजगुण प्रगटाऊँ, ध्रुव अनुपम अक्षय शिव पाऊँ।
हो यही भावना सफल सार, प्रभु चरणों में हो नमस्कार।।
जिनवर भक्ति अन्तर्दृष्टि, हो ज्ञानानन्दमय सब सृष्टि।
पूजन विधान यों पूर्ण होय, मम भूल-चूक प्रभु क्षमा होय।।

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिनवर भक्ति प्रसाद से, सुखी रहें सब जीव।
अहो अहो मम परिणति, प्रभुमय होय सदीव।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

ब्रह्मचर्य है रत्न अनूपम, खेल-खिलौना ना।
महाभाग्य से पाया, नव बाढ़ों से रक्षा करना॥
अतीचार लगने नहीं पावे, ब्रह्म भावना भाना।
सुविधाओं में रीझ-रीझ, आलस्य नहीं करना॥

श्री निर्वाणक्षेत्र पूजन

(गीतिका)

है तीर्थ शाश्वत आत्मा, उसका आराधन जो करें।
वे आत्म आराधक जगत में, चरण पावन जहँ धरें।।
वे तीर्थक्षेत्र कहाय सुखकर, भाव से पूजन करूँ।
हो आत्म साधक रत्नत्रय, परिपूर्ण कर भव से तिरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

मलहारी जल कहलाय, अन्तर्मल न हरे।
अन्तर्मल सहज नशाय, सो सम्यक् जल ले।।
सम्मेद शिखर गिरनार, चम्पा पावापुर।
कैलाश आदि सुखकार, पूजत हर्षे उर।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधादिक अनल समान, दाह करें दुखकर।
करने उनका अवसान, अनुपम चन्दन धर।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् रूप विभव जगमाहिं, प्रभु सम ठुकराऊँ।
अक्षय आतम पद ध्याय, अक्षय पद पाऊँ।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय सुख दुख के मूल, विष सम जान तजूँ।
अमृतमय ब्रह्म स्वरूप, हो निष्काम भजूँ।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशंतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नहिं मिटे भोग की भूख, सचमुच भोगों से।
होऊँ निजरस में तृप्त, बस हो भोगों से।।
सम्मेद शिखर गिरनार, चम्पा पावापुर।
कैलाश आदि सुखकार, पूजत हर्षे उर।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में व्यर्थ, भटका दुःख पाया।
महिमामय जिनवृष पाय, अनुभव प्रगटाया।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चिनगारी सम्यक्ज्ञान अन्तर में डारी।
प्रज्ज्वलित हो आतम ध्यान, शोधक सुखकारी।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल पुण्य पाप के माहिं, भव भव भटकाया।
शिवफल की प्राप्ति हेतु, अब मन हुलसाया।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले भाव अर्घ्य सुखकार निज में पागत हों।
प्रभु सर्व विभाव असार, दुःखमय त्यागत हों।। सम्मेद.।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- तीर्थ वास की भावना, सहज होय दिन रात।
गाऊँ जयमाला सुखद, ज्ञानमयी विख्यात।।

(छन्द-पद्धरि)

जयवन्तो जग में धर्म तीर्थ, मंगलमय मंगलकरण तीर्थ।
सब पाप नशावें धर्म तीर्थ, शिवपथ दर्शावें धर्म तीर्थ।।

निज शुद्धातम परमार्थ तीर्थ, रत्नत्रय है व्यवहार तीर्थ।
अध्यात्म कथन यह सारभूत, भविजन हित हेतु निमित्त भूत।।
धर्मी से सम्बन्धित जु होय, हों धर्म क्षेत्र जगपूज्य सोय।
निर्वाण भूमि तिनमें महान, पूजों विशेष धरि भेदज्ञान।।
कैलाश शिखर प्रभु आदिनाथ, गिरनार शिखर प्रभु नेमिनाथ।
चम्पापुर वासुपूज्य प्रभुवर, पावापुर महावीर जिनवर।।
तीर्थंकर बीस सम्मेद शिखर, पायो निर्वाण अचल सुखकर।
हैं सर्वक्षेत्र मंगल स्वरूप, जहँ तें भये प्रभुवर सिद्ध रूप।।
पूजत उपजे आनन्द महान, निज सिद्धरूप का होय ध्यान।
तब देहादिक अति भिन्न लगे, शिवसाधन में पुरुषार्थ जगे।।
कर्मादि शून्य ज्ञायक स्वरूप, निर्मम अखण्ड आनंद रूप।
मैं सहज मुक्त मैं नित्यमुक्त, निर्दोष निजातम सुगुण युक्त।।
यों हुई प्रतीति सुखस्वरूप, भावें न स्वाँग जड़ के विरूप।
निर्ग्रन्थ भावना मंगलमय, वर्ते शिवदाता आनंदमय।।
साधक हो साधूँ पूर्ण भाव, नाशे भव कारण सब विभाव।
यों भाव धार करता प्रणाम, उर बसे परम तीरथ ललाम।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- सिद्धक्षेत्र पूजन करें, सिद्ध रूप को ध्यान।
धरें परम आनन्दमय, होवें सिद्ध समान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

भाग–3 : नैमित्तिक पूजन

श्री नन्दीश्वर द्वीप पूजन

(वीरछन्द)

नंदीश्वर के अकृत्रिम जिन मंदिर अरु जिनबिम्ब अहा।
ज्ञान मांहिं स्थापन करते उछले ज्ञानानन्द महा।।
ज्ञानमयी ही हो आराधन, सहजपने निष्काम प्रभो।
तृप्त सदैव रहूँ निज में ही, और चाह नहीं शेष विभो।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमा समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द–अड़िल्ल)

स्वाभाविक निर्मल जल से अविकार हैं।
दुखमय जन्म जरा मृत नाशनहार हैं।।
नंदीश्वर के बावन मंदिर अकृत्रिम।
पूजूँ श्री जिनबिम्ब अनूपम जिन समं।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेपूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ चन्दन नहिं अन्तर्ताप विनाशकं।
सहज भाव चन्दन भवताप विघातकं।। नंदीश्वर... ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल भाव अक्षत ले मंगलकार हैं।
स्वाभाविक अक्षय पद के दातार हैं।। नंदीश्वर... ।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मीक गुण पुष्प जगत में सार हैं।
विषय चाह दव दाह शमन कर्तार हैं।।
नंदीश्वर के बावन मंदिर अकृत्रिम।
पूजूँ श्री जिनबिम्ब अनूपम जिन समं।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भोजन व्यंजन नहीं क्षुधा को नाशते।
तातें पूजूँ अकृत बोध नैवेद्य ले।। नंदीश्वर...।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीपक नहिं मोह विनाशनहार है।
मोह नशे जब जाने जाननहार है।। नंदीश्वर...।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिन-बिम्बेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रगटे अग्नि निर्मल आतम धर्म की।
जिससे होवे हानि सर्व ही कर्म की।। नंदीश्वर...।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पाऊँ परम भावफल प्रभु मंगलमयी।
और कामना शेष नहीं मन में रही।। नंदीश्वर...।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धभावमय अर्घ्य करूँ आनन्द सों।
पद अनर्घ्य पाऊँ छूटूँ भवफन्द सों।। नंदीश्वर...।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा - धर्म पर्व सुखकार, हे जिन! पाया भाग्य से।
ध्याऊँ प्रभुपद सार, विषय कषायारम्भ तजि।।

(चौपाई)

अष्टम द्वीप नंदीश्वर सार, पूजूँ वंदूँ भाव संभार।
इक इक अंजनगिरि अविकार, चार-चार दधिमुख सुखकार।।
आठ-आठ रतिकर मनुहार, दिशि-दिशि तेरह मंदिर सार।
बावन मंदिर यों पहिचान, निरखत होवे हर्ष महान।।
रत्नमयी मनहर जिनबिम्ब, सन्मुख भासे निज चिद्बिम्ब।
वर्णन है जिन आगम माहिं, भाव सहित पूजत मन लाहिं।।
कार्तिक फाल्गुनऽषाढ़ मंझार, अन्त आठ दिन आनन्दधार।
जहँ सुरगण वन्दन को जाहिं, पुरुषार्थी सम्यक्त्व लहाहिं।।
यद्यपि शक्ति गमन की नाहिं, तदपि ज्ञान में सहज लखाहिं।
भाव वन्दना कर सुखकार, निज अकृत्रिम भाव निहार।।
हुआ सहज संतुष्ट जिनेश, अब वांछा प्रभु रही न लेश।
निज प्रभुता निज में विलसाय, काल अनन्त सु मग्न रहाय।।
धर्म पर्व मंगलमय सार, जिस निमित्त हो तत्त्व विचार।
कर उद्यम पाऊँ पद सार, जय जय समयसार अविकार।।
पर्व अठाई मंगलरूप, ध्याऊँ निज अनुपम चिद्रूप।
नित्य पवित्र परम अभिराम, शाश्वत परमातम सुखधाम।।
स्वयं सिद्ध अकृत्रिम जान, अजर अमर अव्यय पहिचान।
देखन योग्य स्वयं में देख, विलसे उर आनन्द विशेष।।

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ, पाया श्री जिनधर्म।
मर्म तत्त्व का प्राप्त कर, लहूँ सहज शिवशर्म।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री पंचमेरु पूजन

(सोरठा)

पंचमेरु अभिराम, शोभे ढाई द्वीप में।
अस्सी श्री जिनधाम, अकृत्रिम अविकार हैं।।
जिनप्रतिमा सुखकार, इक इक में शत आठ हैं।
होवे जय जयकार, भाव सहित पूजा करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसंबन्ध्यशीतिजिन-चैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-दिग्पाल)

लेऊँ प्रभु समकित जल, धुल जावे मिथ्यामल।
पंचमेरु असी मन्दिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीसुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिन-चैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले क्षमा भाव चन्दन, कर जिनवर का सुमिरन।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् का अभिमान तजूँ, अक्षत निज भाव भजूँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ले पुष्प शील के शुभ, नाशूँ प्रभु काम अशुभ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समता रस स्वादी बनूँ, दुर्दोष क्षुधादि हनूँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान सु परकाशे, अज्ञान तिमिर नाशे।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ध्येय रूप ध्याऊँ, दश धर्म सु महकाऊँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

विषमय विधि फल त्यागा, शिवफल में चित पागा।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले भाव अर्घ्य सुन्दर, निज विभव लहूँ जिनवर।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- पंचमेरु के जिन भवन, पूजत हो आनन्द।
गाऊँ जयमाला सुखद, नशें कर्म के फन्द।।

(छन्द-पद्धरि)

जय पंचमेरु जग में महान, शाश्वत अकृत्रिम तीर्थ जान।
तीर्थङ्कर का जन्माभिषेक, इन्द्रादि करें उत्सव विशेष।।
जय प्रथम सुदर्शन मेरु सार, स्थित सु द्वीप जम्बू मंझार।
लख योजन उन्नत अति विशाल, शोभे भूपर वन भद्रशाल।।

ऊपर चढ़ पाँच शतक योजन, नंदन वन दीखे मनमोहन।
ऊँचा साढ़े बासठ सहस्र, योजन सोहे वन सौमनस।।
तहँ तैं छत्तीस सहस योजन, गिरशीश लसे शुभ पांडुक वन।
चारों दिशि के वन में सुन्दर, शोभें चैत्यालय श्री जिनवर।।
इक इक में इकशत आठ लसें, जिनबिम्ब लखत दुर्मोह नशे।
ज्यों दर्पण में तन रूप लखे, त्यों आत्मस्वरूप प्रत्यक्ष दिखे।।
फिर विजय अचल धातकीखण्ड, पूरव पश्चिम दिशि अति उतंग।
मंदर विद्युन्माली सु-नाम, पुष्कर में राजे अति ललाम।।
योजन चौरासी सहस उतंग, चारों मेरु सोहे अभंग।
तहँ सोलह-सोलह चैत्यालय, मनहर सुखकर श्री जिन आलय।।
इन्द्रादिक सुर अरु विद्याधर, चारण ऋद्धिधारी मुनिवर।
प्रभु भाव वंदना करूँ सार, निज भाव माहिं मैं भी निहार।।
पूजूँ वंदूँ आनन्दित हो, तासों विधि बंधन खंडित हो।
भोगों की चित में दाह नहीं, इन्द्रादिक पद की चाह नहीं।।
अकृत्रिम शुद्धातम साधूँ, अविनाशी शिवपद आराधूँ।
अपना पद अपने में पाऊँ, चरणों में बलिहारी जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपंचमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

मंगलकर होवे सदा, जिन पूजा जग माहिं।
अपनो भाव सुधारि के, भवि निश्चय शिव पाहिं।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

भोगों की ममता से बढ़कर और न है दुनियाँ में पाप।
सेवन में हैं मधुर किन्तु देते हैं पीछे से संताप॥

श्री सोलहकारण पूजन

(वीरछन्द)

भव दु:ख निवारण सोलहकारण, सहज भाव से नित भाऊँ।
आनन्दित हो उत्साहित हो, रत्नत्रय पथ पर मैं धाऊँ।।
जिन भायीं भावना मंगलमय, उनने तीर्थङ्कर पद पाया।
मैं पूजूँ धरि बहुमान हृदय में, धर्म तीर्थ शुभ प्रगटाया।।

(दोहा)

मैं भी भाऊँ चाव सों, निज अन्तर लौ लाय।
होवे धर्म प्रभावना, तिहुँ जग में सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणभावनासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणभावनासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणभावनासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम।

(छन्द-मानव)

धरि दर्शविशुद्धि सुखमय, निर्मल जल ले समतामय।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी।।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्धि-विनयसंपन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचार-अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग- शक्तिस्त्याग-तप:-साधुसमाधि-वैयावृत्यकरण-अर्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वेति तीर्थंकरत्वकारणेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धैर्यमयी ले चन्दन, जिन चरणों में कर वन्दन।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निस्तुष ज्ञानाक्षत धारूँ, क्षत् विभव चाह परिहारूँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम शील प्रगटाकर, भावों के पुष्प चढ़ाकर।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रसमय चरु ले आऊँ, दुर्दोष क्षुधादि नशाऊँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञान तिमिर क्षयकारी, ले ज्ञानदीप अविकारी।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्याऊँ पद पाप निकन्दन, नाशें सब ही विधि बन्धन।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल भक्तिमयी सु चढ़ाऊँ, निर्वाण महाफल पाऊँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले अर्घ्य अनूपम सुखमय, लहुँ भावलीनता अक्षय।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- इह विधि मंगलकार, पूजा करि आनन्द सौं।
सहज स्वरूप विचार, गाऊँ जयमाला सुखद।।

(छन्द-त्रोटक)

सम्यक् दर्शन निर्दोष होय, शंकादि दोष लागे न कोय।
रत्नत्रय प्रति नित विनय रहे, कब पूर्ण होय यह भाव रहे।।
निर्दोष शील वर्ते अखण्ड, परमार्थ लहूँ हो मोह खण्ड।
भाऊँ सु निरन्तर भेदज्ञान, जासों पाऊँ निज पद महान।।

हो धर्म धर्म फल में उछाह, उपजे न कदाचित् विषय दाह।
निजशक्ति संभारि करूँ सुदान, त्यागूँ विभाव दुखकारि जान।।
शक्ति अनुसार धरूँ विचित्र, इच्छा निरोध जिन तप पवित्र।
साधु समाधि में करि सहाय, मैं भी समाधि लहूँ सुखदाय।।
हो तत्पर वैयावृत्ति माहिं, विचरूँ मैं भी शिवमार्ग माहिं।
अरहंत भक्ति धरि विषय टार, आराधूँ साधूँ स्वपद सार।।
आचार्यभक्ति होवे पवित्र, धारूँ निर्मल सम्यक् चरित्र।
वंदूँ बहु श्रुतधर उपाध्याय, लहूँ ज्ञान महान सु मुक्तिदाय।।
जिन प्रवचन की भक्ति अनूप, धरि ध्याऊँ अविकल चित्स्वरूप।
आवश्यक निश्चय अरु व्यवहार, हो सहज भाव से सुःखकार।।
होवे प्रभावना मंगलमय, जिनधर्म धरें सब हों निर्भय।
धर्मी प्रति अति ही वात्सल्य, होवे सुखकारी अरु निःशल्य।।
सोलहकारण आनन्दकार, तीर्थङ्कर पद की देन हार।
निर्वांछक हो भाऊँ सु सार, ध्रुवतीर्थ रूप निजपद निहार।।

ॐ ह्रीं श्रीदर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सोलह कारण भावना, सब ही को सुखदाय।
पूजूँ भाऊँ भक्ति धरि, श्री जिनधर्म सहाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

वन्दनीय हो गये प्रभु, निज का वन्दन कर।
हुए जगत आराध्य, स्वयं का आराधन कर॥
परमभाव की श्रद्धा से, श्रद्धेय हो गये।
आप आपको ध्याय, ध्यान के ध्येय हो गये॥

श्री दशलक्षण धर्म पूजन

(गीतिका)

उत्तम क्षमादिक धर्म आतम का सहज निजभाव है।
सुख शान्ति का है हेतु जग में, मुक्ति का सु उपाव है।।
है मूल सम्यग्दर्श, निज में लीनतामय ये धरम।
पूजूँ सु भाऊँ भावना, हो पूर्ण दशलक्षण धरम।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-रेखता)

सहज प्रासुक सु निर्मल जल, करो प्रक्षाल मिथ्यामल।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-आकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्त भावों का ले चन्दन, सहज भवताप निकंदन।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अखय पद कारणे अक्षय, आत्म पद का करो आश्रय।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन श्रद्धा सजाओ सब, काम दुखमय नशाओ अब।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम सन्तोषमय नैवेद्य, क्षुधादिक का न हो कुछ खेद।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उजारो ज्ञान का दीपक, महातम मोह का नाशक।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नि शोधक जले तप की, भस्म हों कर्म की प्रकृति।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नहीं फल पुण्य के चाहो, मोक्षफल भी सहज पाओ।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

समर्पित अर्घ्य अविकारी, होओ साक्षात् शिवचारी।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माहिं दृष्टि धर।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दश धर्मों के अर्घ्य

(चौपाई)

निज अन्तर्मुख दृष्टि होवे, परमानन्दमय वृत्ति होवे।
तहँ अनिष्ट भासे नहीं कोई, क्रोध बैर उत्पन्न न होई।।
उत्तम क्षमा सहज अविकारी, वर्ते निज पर को हितकारी।
तत्त्वाभ्यास करो मन माहीं, पर का दोष लखो कछु नाहीं।।
जैसा कर्म उदय में आवे, वैसे ही संयोग सु पावे।
तातैं कर्म बंध के कारण, क्रोधादिक का करो निवारण।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान करि देखो भाई! मिथ्यामान महादुखदाई।
मानी के सब बैरी होवें, मानी को सब नीचा जोवें।।
जल ज्यों पत्थर में न समावे, त्यों मानी निज बोध न पावे।
स्वाभाविक निज प्रभुता देखो, ज्ञानी के जीवन को देखो।।

अध्रुव वस्तु का मान सु त्यागो, विनयवंत हो निज में पागो।
उत्तम मार्दव आनन्द दाता, पूजो धरो सहज हो ज्ञाता।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज सरल निज भाव पिछानो, गुप्त पाप को माया जानो।
नहीं छिपावो ताहि मिटावो, **उत्तम आर्जव** चित में लावो।।
क्यों समझे ठगता औरों को? पाप बंध कर ठगता निज को।
उत्तम जिनशासन को भजकर, दुखमय छल प्रपंच को तजकर।।
कोई बहाना नहीं बनाओ, रत्नत्रय पथ पर बढ़ जाओ।
सरल स्वभावी होकर भ्राता, उत्तम आर्जव पूजो ज्ञाता।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमआर्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोभ लाभ का कारण नाहीं, व्यर्थ क्लेश करता मन माहीं।
लोभी विषयी महामलीना, दर-दर ठोकर खावे दीना।।
ज्ञेय लुब्ध अज्ञानी प्राणी, स्वानुभूति बिन दुखी अज्ञानी।
जिन उपदेश भाग्य तें पाय, अनुभव रस में तृप्त रहाय।।
ध्याओ आतम परम पवित्रा, नाशे आस्रव अति अपवित्रा।
निर्लोभी हो पाप नशाय, **उत्तम शौच** जजों सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम सत्य धर्म परधाना, सत्य समझ बिन नहिं कल्याणा।
तीर्थ प्रवर्ते सत्य वचन से, होय प्रतिष्ठा सत्य धर्म से।।
सत्य धर्म सबको सुखदाई, झूठ दुःखमय दुर्गति दाई।
बोलो हित मित प्रिय सत् वयना, अथवा शान्त मौन ही रहना।।
वस्तु स्वरूप यथार्थ पिछानो, करके स्वानुभूति श्रद्धानो।
तज परभाव रमो निज ही में, प्रगटे सत्य धर्म जीवन में।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, विषयों में नहिं चित्त भ्रमावे।
तज प्रमाद सब हिंसा टारी, होओ **उत्तम संयम** धारी।।
करि विचार देखो मन माहीं, भोगों में सुख किंचित् नाहीं।
हस्ति मीन अलि पतंग हिरन सम, विषयों में दुख लहें मूढ़जन।।
हो विरक्त सब पाप नशावें, धरि संयम ज्ञानी सुख पावें।
उत्तम संयम शिवपद दाता, पूजो भाओ धारो ज्ञाता।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप निज में ही हो विश्रान्त, इच्छाएँ हो जावें शान्त।
सब ही सुख की इच्छा करें, आत्मबोध बिन सुख नहिं लहें।।
ज्यों ज्यों भोग संयोग लहाय, आशा तृष्णा बढ़ती जाय।
इच्छा पूरी कबहुँ न होय, करो निरोध सहज तप होय।।
बारह भेद व्यवहार कहाय, निश्चय तप सब कर्म नशाय।
अपनी-अपनी शक्ति प्रमान, **उत्तम तप** धारो बुधिवान।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दुखदायक विभाव सब त्याग, आत्म धर्म में धरि अनुराग।
चार प्रकार दान शुभ देय, त्रिविधि पात्र को दे यश लेय।।
औषधि अभय आहार सु जान, ज्ञान दान सब में परधान।
ज्ञान बिना भ्रमता तिहुँ लोक, आत्मज्ञान से पावे मोक्ष।।
निज को निज पर को पर जान, ज्ञानमयी कर प्रत्याख्यान।
सर्व दान दे हो निर्ग्रन्थ, **उत्तम त्याग** धरे सो सन्त।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हूँ मैं एक शुद्ध चिन्मात्र, अन्य न मम परमाणु मात्र।
मोहादिक औपाधिक भाव, मेरे नहिं मैं ज्ञान स्वभाव।।

मैं स्वभाव से आनन्द रूप, द्विविधि परिग्रह दु:ख स्वरूप।
परिग्रह त्याग आकिंचन्य धर्म, धारि मुनीश्वर नाशें कर्म।।
श्रावक भी परिमाण कराहिं, परिग्रह में किंचित् रुचि नाहिं।
यों **उत्तम आकिंचन** सार, पूजो धारो भव्य संभार।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमआकिंचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम ब्रह्मचर्य अविकार, पूजो धर्म शिरोमणि सार।
कामभाव दुर्गति को मूल, भव-भव में उपजावे शूल।।
लहे न चैन करे कृत निंद्य, कामासक्त बढ़ावे बंध।
तातैं शील बाढ़ नौ धार, अपनो ब्रह्म स्वरूप निहार।।
त्यागो दुखमय इन्द्रिय भोग, पाओ ज्ञानानन्द मनोग।
जयवन्तो ब्रह्मचर्य अनूप, धारे सो होवे शिवभूप।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

दोहा- मोह क्षोभ बिन परिणति, ही दशलक्षण धर्म।
भेदज्ञान करि धारिये, तजि क्रोधादि अधर्म।।

(तर्ज-हे दीन बन्धु श्री पति...)

दशलाक्षणीक धर्म सहज सु:खकार है।
आनन्दमयी यह धर्म अहो मुक्ति द्वार है।।
दशलाक्षणीक धर्म ही नाशे विकार है।
जिनवर प्रणीत धर्म करे भव से पार है।।
दशलाक्षणीक धर्म कल्पवृक्ष से अधिक।
समतामयी यह धर्म चिन्तामणि से है अधिक।।
दशलाक्षणीक धर्म धरे सहज ही ज्ञाता।
बिन याचना बिन कामना सब सुख प्रदाता।।

दशलाक्षणीक धर्म क्रोध मान से रहित।
मंगलमयी यह धर्म माया लोभ से रहित।।
ये ही सनातन धर्म सत्य रूप है पवित्र।
संयम स्वरूप अभय रूप भोगों से विरक्त।।
तप त्याग रूप धर्म ये आनन्द स्वरूप है।
परिग्रह प्रपंच शून्य, ब्रह्मचर्य रूप है।।
दशलाक्षणीक धर्म ज्ञानमय स्वभाव है।
वर्ते निजाश्रय से सहज मिटते विभाव हैं।।
दशलाक्षणीक धर्म मैत्री भाव का सेतु।
अहिंसामयी यह धर्म विश्व शान्ति का हेतु।।
आओ भजो यह धर्म तत्त्वज्ञान पूर्वक।
सब द्वन्द्व फन्द छोड़कर स्वलक्ष्य पूर्वक।।
यह धर्म है वस्तु स्वभाव सम्प्रदाय ना।
यह धर्म है अनादि-निधन भेदभाव ना।।
निष्काम भाव से सहज यह भावना वर्ते।
दशलाक्षणीक धर्म नित जयवन्त प्रवर्ते।।

(छन्द-घत्ता)

दशलक्षण रूपं धर्म अनूपं, धरे परम आनन्द से।
दुर्भाव नशावे सब सुख पावे, छूटे भव दुख द्वन्द्व से।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्यागआकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्येतिदशलक्षणधर्माय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- दशलक्षण हैं धर्म के, धर्म नहीं दशरूप।
मोह-क्षोभ बिन धर्म है, सहजहिं साम्य स्वरूप।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री रत्नत्रय पूजन

(गीतिका)

दुखहरण मंगलकरण जग में, रत्नत्रय पहिचानिये।
परमार्थ अरु व्यवहार से, दो विधि निरूपण जानिये।।
शुद्धात्म रुचि अनुभूति अरु, आचरण निश्चय रत्नत्रय।
व्यवहार है बस निमित्त सहचर, नियत से हो कर्म क्षय।।
पूजूँ परम उल्लास से मैं, दृष्टि अन्तर धारिके।
भाऊँ स्वपद की भावना, जग द्वन्द्व-फन्द निवारिके।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(दोहा)

निर्मल सम्यक् नीर ले, मिथ्यामैल विडार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन ले अनुभूति मय, भव आताप निवार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय पद के कारणे, अक्षय प्रभु उर धार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्म की भावना, निर्विकल्प उर धार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस से ही तृप्त हो, दोष क्षुधादि विडार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम ज्योति चैतन्यमय, हो जगमग सुखकार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धातम का ध्यान धरि, नाशूँ सर्व विकार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सिंचन कर चारित्र तरु , पाऊँ शिव फल सार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य अभेद सुभक्तिमय, परमानन्द दातार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यक्-रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्यग्दर्शन

(वीरछन्द)

आतम दर्शन सम्यग्दर्शन, अहो धर्म का मूल है।
हो नि:शंक धारूँ निज में ही, नाशे भव का शूल है।।
निर्वांछक हो ग्लानि त्यागूँ, रहूँ अमूढ़ सु सत्पथ में।
उपगूहन कर करूँ स्थितिकरण स्व-पर का शिवपथ में।।
करूँ सहज वात्सल्य धर्म की, मंगलमयी प्रभावना।
ये ही अष्ट अंग युत समकित, हो न कदापि विराधना।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्यग्ज्ञान

निज में निज का अनुभव होवे, निश्चय सम्यग्ज्ञान हो।
है निमित्त व्यवहार जिनागम, से हो तत्त्वज्ञान जो।।
शुद्ध उच्चारण सदा करूँ अरु, शुद्ध अर्थ अवधारूँ मैं।
उभय शुद्धि धरि योग्य काल में, ही स्वाध्याय सम्हारूँ मैं।।
सदा बढ़ाऊँ गुरु का गौरव, यथा योग्य बहुमान करूँ।
विनय पूर्वक संशयादि तजि, विकसित सम्यग्ज्ञान वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीअष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्यक्चारित्र

विषय चाह की दाह शमित हो, सम्यक् चारित्र धारूँ मैं।
रत्न अमोलक दुर्लभ पाया, करि पुरुषार्थ सम्हारूँ मैं।।
स्व-पर दयामय तेरह भेद सु, निश्चय निज में लीनता।
त्यागूँ भोग परिग्रह दुखमय, जिनमें प्रतिक्षण दीनता।।
हो स्वाधीन करूँ शिव साधन, जासों निज पद पावना।
लोक शिखर पर सहज विराजूँ, फेरि न भव में आवना।।

ॐ ह्रीं श्रीत्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(सोरठा)

सम्यग्दर्शन ज्ञान, अरु चारित्र की एकता।
ये ही पथ निर्वाण, निश्चय आत्मस्वरूप है।।
महिमा अपरम्पार, वचन अगोचर ज्ञानमय।
वंदूँ बारम्बार, गाऊँ जयमाला सुखद।।

(छन्द-पद्धरि)

सम्यक् रत्नत्रय आत्मरूप, सम्यक् रत्नत्रय शिव स्वरूप।
सम्यक् रत्नत्रय त्रिजगसार, इसही से हो भव सिन्धु पार।।

सम्यक् रत्नत्रय ज्योति रूप, नहिं रहे लेश तम मोह रूप।
निज रत्नत्रयमय शुद्ध भाव, प्रगटे विघटे दुखमय विभाव।।
सम्यक् रत्नत्रय हित उपाय, चिर विधि बन्धन सहजहिं नशाय।
ये ही भविजन को परम श्रेय, प्रगटाने योग्य सु उपादेय।।
धनि धनि रत्नत्रय धरूँ सार, त्रैलोक्य पूज्य निज पद निहार।
अशरण जग में है शरण भूत, जिनवचन कहा सत्यार्थ रूप।।
ताको सुयत्न है भेदज्ञान, श्री देव-शास्त्र-गुरु निमित्त जान।
जिन कथित तत्त्व का हो अभ्यास, हो स्वानुभूति लीला विलास।।
हो उदित सहज सम्यक्त्व सूर्य, रागादि विजय को बजे तूर्य।
वर्ते निर्मल उत्तम विचार, वैराग्य भावना बढ़े सार।।
आरम्भ परिग्रह पाप मूल, निर्ग्रन्थ होय छोड़े समूल।
आनन्द वीर रस रह्यो छाय, तड़ तड़ तड़ विधि बन्धन नशाय।।
ध्याऊँ स्वरूप श्रेणी चढ़ाय, निर्मुक्त परम पद सहज पाय।
ऐसी महिमा मन में सुभाय, पूजूँ रत्नत्रय मुक्तिदाय।।

(छन्द-घत्ता)

रत्नत्रयरूपं, आत्मस्वरूपं, मंगलमय मंगलकारी।
साक्षात् सु पाऊँ, थिर हो जाऊँ, निजपद पाऊँ अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये समुच्चय-जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पढ़ें-सुनें-चिन्तें अहो, पूजें धरि उर चाव।
निश्चय शिवपद वे लहें, नाशें सर्व विभाव।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री क्षमावाणी पर्व पूजन

(छन्द-ताटंक)

महाहर्ष से पूजा करता, क्षमामयी परमातम की।
अन्तर्मुख हो करूँ भावना, क्षमा स्वभावी आतम की।।
शुद्धातम अनुभूति होते, ऐसी तृप्ति प्रगटाती।
क्रोधादिक दुर्भावों की सब, सन्तति तत्क्षण विनशाती।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जिनवर का स्मरणमयी जल, मिथ्या मैल नशाता है।
सम्यक्भाव प्रगट होते ही, मुक्तिद्वार खुल जाता है।।
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव स्तवनमय चन्दन ही, भवाताप विनशाता है।
शीतल होती सहज परिणति, चित्त न फिर भटकाता है।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय वैभव अक्षय प्रभुता, अंतर माहिं दिखाती है।
जिनवर सम ही क्षत् भावों से, सहज विरक्ति आती है।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

समयसारमय सहज परिणति, नियमसार हो जाती है।
कामवासना उस आनन्द से, सहजपने विनशाती है।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभो आपके सन्मुख होते, ऐसी परिणति होती है।
नहिं भोगों की भूख सताती, अद्भुत तृप्ति होती है।।
उत्तम क्षमा हृदय में वर्ते, सहज सदा ही ज्ञानमयी।
मोह क्षोभ बिन शुद्ध परिणति, रहे प्रभो वैराग्यमयी।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान प्रगट होते ही, सिद्ध समान स्वभाव दिखे।
अनेकान्तमय तत्त्व दिखाता, मोह महातम सहज नशे।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान की चिनगारी, वैराग्य भाव से सुलगाती।
ध्यान अग्नि से सहजपने ही, कर्म कालिमा जल जाती।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मलाभ से विषय सुखों का, लोभ सहज मिट जाता है।
आत्मलीनता से बिन चाहे, मोक्ष महाफल आता है।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्ति भाव से अर्घ्य चढ़ाऊँ, निज अनर्घ्य पद पाने को।
पूजा करते भाव उमगता, निज में ही रम जाने को।। उत्तम..।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जयमाला गाते हुए, यही भाव सुखकार।
दशलक्षणमय धर्म की, गूँजे जय-जयकार।।

(तर्ज-: हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम..)

सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित, चारित्र हो रागादि रहित।
यही भावना हे जिनवर, सफल होय मेरी सत्वर।।
द्रव्य भाव से स्तुति कर, मैं भी अन्तर्मुख होकर।
अहो आत्म में निज-पर की, करूँ थापना सिद्धों की।।
द्रव्यदृष्टि से सिद्ध समान, देखूँ सबको ही भगवान।
भिन्न लखूँ औपाधिक भाव, सहज निहारूँ ज्ञायक भाव।।

होय मंगलाचरण तभी, परिणति ज्ञानानन्दमयी।
भासे जिनशासन का मर्म, सहज प्रगट हो आतम धर्म।।
परम साध्य का हो पुरुषार्थ, समय-समय भाऊँ परमार्थ।
दिखे न पर में इष्ट-अनिष्ट, नशें सहज क्रोधादिक दुष्ट।।
सहज अहेतुक अरु स्वाधीन, नहीं परिणमन पर-आधीन।
कोई किसी का कर्त्ता नाहिं, कहा जिनेश्वर आगम माहिं।।
ज्ञानदृष्टि से सहज दिखाय, परमानन्द अहो उपजाय।
होय नि:शंकित अरु निरपेक्ष, ग्लानि मन में रहे न लेश।।
हो निर्मूढ़ लगें निज माहिं, पर का दोष दिखे कुछ नाहिं।
निज परिणति निज माहिं लगाय, परमप्रीति धर धर्म दिपाय।।
संशय विभ्रम और विमोह, दोष ज्ञान में रहे न कोय।
शुद्धज्ञान वर्ते निज माहिं, अष्ट अंग सहजहिं विलसाहिं।।
पर से हो विरक्ति सुखदाय, संयम का पुरुषार्थ बढ़ाय।
विषयारंभ परिग्रह टार, व्रत समिति गुप्ति उर धार।।
हो निर्ग्रन्थ रमें निजमाहिं, बाहर की किंचित् सुधि नाहिं।
शुक्लध्यान से कर्म नशाय, अविनाशी शिवपद प्रगटाय।।
यही भावना मन में धार, करके उत्तम तत्त्व विचार।
क्षमा भाव सबके प्रति लाय, सब जीवों से क्षमा कराय।।
अन्तर बाहर हो निर्ग्रन्थ, अपनाऊँ जिनवर का पंथ।
जिनशासन वर्ते जयवंत, रत्नत्रय वर्ते जयवन्त।।
क्षमाभाव अन्तर न समाय, वचनों में भी प्रगटे आय।
सहज सदा वर्ते वात्सल्य, परिणति होवे सहज नि:शल्य।।

ॐ ह्रीं श्रीउत्तमक्षमाधर्माय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- दोष दृष्टि को छोड़कर, गुण ग्रहण का भाव।
रहे सदा ही चित्त में, ध्याऊँ सहज स्वभाव।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री अक्षय तृतीया पूजन

(दोहा)

कर्मभूमि की आदि में, ऋषभ मुनि अविकार।
नृप श्रेयांस दिया प्रथम, इक्षु रस आहार।।
दानतीर्थ का प्रवर्तन, हुआ सु मंगलकार।
अक्षय तृतीया का दिवस, पूजें प्रभु सुखकार।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्राननम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापननम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

मिथ्यामल नाशक नीर, सम्यक् सुखकारी।
ले तुम समीप हे देव, नित मंगलकारी।।
पूजें हम ऋषभ मुनीश, हो युक्ताहारी।
साक्षात् अनाहारी, हो शिवमगचारी।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल नाशक नाथ, चन्दन क्षमामयी।
पाया तुम सम सुखकार, ज्ञायक ज्ञानमयी।। पूजें. ।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत वैभव सुखकार, अन्तर माहिं लखा।
क्षत् विक्षत् विभव असार, भासा मोह नसा।। पूजें. ।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम भावना देव, जागी हितकारी।
परमार्थ भक्ति से काम, नाशे दुखकारी।। पूजें. ।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हों निज से निज में तृप्त, वह विधि सिखलाई।
कैसे गावें उपकार? शाश्वत निधि पाई।।

पूजें हम ऋषभ मुनीश, हो युक्ताहारी।
साक्षात् अनाहारी, हो शिवमगचारी।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् प्रकाश में नाथ, शिवपथ दिखलाया।
हम रहें आपके साथ, ये ही मन भाया।। पूजें.।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्कर्म निरामय देव, अन्तर में पाया।
ध्यावें नाशें सब कर्म, ये ही मन भाया।। पूजें.।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल पुण्य पाप के नाथ, भोगे दु:खकारी।
अब मुक्ति महाफल देव, पावें अविकारी।। पूजें.।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले उत्तम अर्घ्य मुनीश, अति ही हर्षावें।
चरणों में नावें शीश, ध्रुव प्रभुता पावें।। पूजें.।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)-

जयमाला गावें सुखद, मन में धरि उल्लास।
यही भावना है प्रभो! रहें आपके पास।।

(वीरछन्द)

दीक्षा लेकर ऋषभ मुनीश्वर, छह महीने उपवास किया।
फिर आहार निमित्त ऋषीश्वर, चर्या हेतु विहार किया।।
कोई हाथी-घोड़े-वस्त्राभूषण, रत्नों के भर थाल।
ले सन्मुख आदर से आवें, देख साधु लौटें तत्काल।।
नहिं जानें आहार-विधि, इससे सब ही लाचार हुए।
अन्तराय का उदय रहा, तेरह महीने नौ दिवस हुए।।
धन्य मुनीश्वर, धन्य आत्मबल, आकुलता का लेश नहीं।
तृप्त स्वयं में मग्न स्वयं में, किञ्चित् भी संक्लेश नहीं।।
उदय नहीं हो दु:ख का कारण, यदि स्वभाव का आश्रय हो।
निज से च्युत हो दुखी रहे, तो फिर उपचार उदय पर हो।।

दोष देखना किन्तु उदय का, कही अनीति जिनागम में।
उदय उदय में ही रहता है, नहिं प्रविष्ट हो आतम में।।
भेदज्ञान कर द्रव्यदृष्टि धर, स्वयं स्वयं में मग्न रहो।
स्वाश्रय से ही शान्ति मिलेगी, आकुलता नहिं व्यर्थ करो।।
अशरण जग में अरे 'आत्मन्', नहीं कोई हो अवलम्बन।
तजकर झूठी आस पराई, अपने प्रभु का करो भजन।।
इन्द्रादिक से सेवक चक्री, कामदेव से सुत जिनके।
देखो एक समय पहले भी, नहिं आहार मिले उनके।।
हुई योग्यता सहजपने ही, सर्व निमित्त मिले तत्क्षण।
मंगल सपनों का फल सुनकर, नृप श्रेयांस थे हर्ष मगन।।
देखा आते ऋषभ मुनि को, जाति स्मरण हुआ सुखकार।
नवधा भक्ति पूर्वक नृप ने, दिया इक्षुरस का आहार।।
पंचाश्चर्य किये देवों ने, रत्न पुष्प थे बरसाए।
पवन सुगन्धित शीतल चलती, जय जय से नभ गुंजाए।।
धन्य पात्र है धन्य है दाता, धन्य दिवस धनि है आहार।
दानतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, घर घर होवें मंगलाचार।।
तिथि वैशाख सुदी तृतीया थी, अक्षय तृतीया पर्व चला।
आदीश्वर की स्तुति करते, सहजहिं मुक्तिमार्ग मिला।।
ऋषभदेव सम रहे धीरता, आराधन निर्विघ्न खिले।
नहीं मिले भोजन तक फिर भी, आराधन से नहीं चले।।
थकित हुआ हूँ भव भोगों से, लेश मात्र नहिं सुख पाया।
हो निराश सब जग से स्वामिन्, चरण शरण में हूँ आया।।
यही भावना स्वयं स्वयं में, तृप्त रहूँ प्रभु तुष्ट रहूँ।
ध्येय रूप निज पद को ध्याते, ध्याते शिवपद प्रगट करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- ज्ञाता हो दाता बनें, रंच न हो अभिमान।
धर्म तीर्थ जयवन्त हो, उत्तम त्याग महान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री श्रुत पंचमी पूजन

(दोहा)

जिनश्रुत की पूजा करूँ, भक्तिभाव उर धार।
धन्य-धन्य श्रुतपंचमी, हुआ सुश्रुत अवतार।।
पुष्पदंत अरु भूतबलि, किया परम उपकार।
श्री षट्खण्डागम रचा, लिखा तत्त्व अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमी-महोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमी-महोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागम! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमी-महोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागम! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इतिसन्निधिकरणम्।

(छन्द-रोला)

जिनवाणी गुण गाऊँ, प्रासुक जल ले आऊँ।
जन्म जरा मृत दोष नशाने, ध्रुवपद ध्याऊँ।।
षट्खण्डागम आदि श्रुतों की पूजा करता।
निज-पर भेद विज्ञान, धार निज दृष्टि धरता।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुतषट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

चन्दन से पूजूँ अरु जिनश्रुत पढ़ूँ पढ़ाऊँ।
चन्दन सम शीतल परिणति निज में प्रगटाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुतषट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

जिनवाणी के सन्मुख, अक्षत शुद्ध चढ़ाऊँ।
अक्षय आत्म स्वभाव सहज समझूँ समझाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

प्रासुक पुष्पों से, जिनश्रुत की पूज रचाऊँ।
कामवासना मेटूँ, निर्मल शील सु पाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

जिनश्रुत पाकर, अनुभव रस में तृप्त रहूँ मैं।
कर अर्पण नैवेद्य, क्षुधादिक दोष नशूँ मैं।।

षट्खण्डागम, आदि श्रुतों की पूजा करता।
निज-पर भेद विज्ञान धार, निज दृष्टि धरता।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

जिनवाणी उपकार, हृदय से नहीं भुलाऊँ।
दीपक सम्यग्ज्ञान जलाकर मोह नशाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

कर्मबन्ध से भिन्न आत्मा, नित ही ध्याऊँ।
तप की शोधक अग्नि जलाकर कर्म नशाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

जिनवाणी से सहज मुक्त, आतम पहचानूँ।
निज में हो संतुष्ट कर्म फल वाँछा त्यागूँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाकर, श्रुतगुण गाऊँ।
जिनवाणी की कर प्रभावना, अति हर्षाऊँ।। षट्.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- भ्रमतम नाशनहार, स्याद्वादमय जैनश्रुत।
अभ्यासो अविकार, गुण गाऊँ आनन्द से।।

(सुमुखी सवैया)

श्रुत परम्परा का ह्रास देख, गुरुवर को सहज विकल्प हुआ।
जिनवाणी को लिपिबद्ध कराने, का उनको शुभ भाव हुआ।।
तब श्री धरसेनाचार्य ऋषीश्वर, दो मुनिवर बुलवाये थे।
अरु उनकी बुद्धि परखने को, दो मंत्र सिद्ध करवाये थे।।
मंत्रों को देख अशुद्ध सहज ही, संशोधन कर लीना था।
निष्काम भाव से सिद्ध किये, फिर भी अभिमान न कीना था।।
प्रतिभा सम्पन्न विनय संयुत, मुनि देख ऋषीश्वर मुदित हुए।
शिक्षा देकर परिपक्व किया, आचार्य बना निश्चिंत हुए।।

वे तो समाधिकर स्वर्ग गये, श्री पुष्पदन्त प्रारम्भ किया।
रच एक खण्ड श्री भूतबली स्वामी समीप था भेज दिया।।
श्री भूतबली ने शेष लिखा, यों षट्खण्डागम पूर्ण हुआ।
जेठ शुक्ल पंचमी दिवस, जिनश्रुत का जय जयकार हुआ।।
आचार्य श्री ने संघ सहित, जिनश्रुत की पूजा करवाई।
जिन के समान ही जिनवाणी भी पूज्य तिहूँ जग में गाई।।
धवल जयधवल महाधवल, टीकाएँ फिर तो लिखी गई।
गोम्मटसार आदिक ग्रन्थों की फिर रचनाएँ सरल हुई।।
यों परम्परा आगम की चलती रही आज भी हमें मिली।
श्री गुणधर कुन्दकुन्द आदिक से परम्परा अध्यात्म चली।।
दोनों धारायें अविकारी सुखमय, शिवमारग दरशातीं।
चारों अनुयोगमयी जिनवाणी, वीतरागता सिखलाती।।
है अनेकान्तमय वस्तु प्ररूपित, स्याद्वाद से सुखकारी।
निर्मल दृष्टि से देखो तो अनुयोग सभी हैं हितकारी।।
आदर्श बताता है हमको, प्रथमानुयोग आनन्दकारी।
उज्ज्वल आचरण सिखाता है, चरणानुयोग मंगलकारी।।
करणानुयोग परिणामों को, अरु लोक स्वरूप बताता है।
द्रव्यानुयोग सम्यक्त्व मूल, निज पर का भेद सिखाता है।।
अतएव करो अभ्यास भव्य, नित आगम अरु अध्यातम का।
हो हेयादेय विवेक सहज, श्रद्धान जगे शुद्धातम का।।
शुद्धातम का आराधन ही, अविनाशी शिवपद दाता है।
जिनवाणी तो है निमित्त भूत, फल परिणामों का आता है।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रुतपंचमीमहोत्सवे श्रीपरमश्रुत-षट्खण्डागमाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द-अडिल्ल)

माता सम उपकारी, श्री जिनवाणी है।
तरण तारिणी नौका, सम जिनवाणी है।।
जो पूजें अभ्यासें, अन्तर प्रीति से।
अल्पकाल में छूटें, भव की रीति से।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री वीरशासन जयन्ती पूजन

(छन्द-रोला)

वीरनाथ का दर्शन, सबको मंगलकारी।
वीरनाथ का शासन, सबको आनन्दकारी।।
सहज वस्तु स्वातन्त्र्य, वीर ने हमें बताया।
स्वयं मुक्त हो, हमें मुक्ति का मार्ग दिखाया।।

(दोहा)

श्रावण वदी सुप्रतिपदा, खिरी दिव्यध्वनि वीर।
भाव सहित पूजा करें, पहुँचें भव के तीर।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(तर्ज - आज अद्भुत छवि निज निहारी....)

भाव सम्यक्त्वमय नीर लावें, जन्म-मरणादि का दुःख नशावें।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लेके चन्दन क्षमाभावमय प्रभु, ईर्ष्या-द्वेष मिटावें अहो विभु।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव अक्षत सहज अविकारी, भक्ति प्रभु की सदा सुःखकारी।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बालयति हो प्रभो योगधारा, देव ऐसा ही भाव हमारा।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्ति निज में प्रभो निज से पाई, ऐसी तृप्ति हमें भी सुहाई।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय दीप प्रभु ने जलाया, ज्ञानमय भाव हमको दिखाया।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यानमुद्रा जिनेश्वर सुहावे, देख पुरूषार्थ अन्तर जगावे।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

देख आराधना का महाफल, लगते निस्सार सब ही करमफल।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म वैभव अनर्घ्य दिखाया, अर्घ्य हमने भी जिनवर चढ़ाया।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

विपुलाचल पर जब प्रथम, खिरी दिव्यध्वनि सार।
भविजन अति हर्षित हुए, गूँजा जय-जयकार।।

(छन्द-त्रोटक)

जय महावीर जय वर्धमान, अतिवीर वीर सन्मति महान।
प्रभुवर को केवलज्ञान हुए, छियासठ दिन अरे व्यतीत हुए।।
नित समवशरण भर जाता था, पर योग नहीं बन पाता था।
कुछ नहीं समझ में आता था, भव्यों का मन अकुलाता था।।
जब काल दिव्यध्वनि खिरने का, गौतम आदिक के तिरने का।
आया मंगलकारी जिनवर, तब इन्द्र अवधि जोड़ा सत्वर।।

सब समझ शिष्य का वेश लिया, गौतम समीप तब गमन किया।
बोले मेरे गुरु महावीर, हैं मौन-काव्य अति ही गंभीर।।
भावार्थ बताओ सुखकारी, 'त्रैकाल्यं' काव्य पढ़ा भारी।
कुछ अर्थ समझ में नहिं आया, गौतम का माथा चकराया।।
शिष्यों संग वीर समीप चला, कुछ होनहार था परम भला।
जब समवशरण दिखलाया था, विस्मित हो अति हर्षाया था।।
देखत मानस्तम्भ मान गला, प्रभु दर्शन कर सम्यक्त्व मिला।
कहकर नमोस्तु दीक्षाधारी, हुए चार ज्ञान अति सुखकारी।।
गणधर का सहज निमित्त मिला, भव्यों का भी शुभ भाग्य खिला।
प्रभु दिव्यध्वनि मंगलकारी, सब जग को अति ही हितकारी।।
सुनकर भविजन प्रतिबुद्ध हुए, दीक्षा ले बहुजन शिष्य हुए।
प्रभु शासन तब से वर्ताया, है महाभाग्य हम भी पाया।।
है स्वानुभूतिमय स्वयंसिद्ध, जिनशासन चिर से ही प्रसिद्ध।
जिसमें सब जीव समान कहे, स्वभाव से ही भगवान कहे।।
देहादिक पुद्गल बतलाये, रागादिक दुख हेतु गाये।
शिवकारण सम्यक् रत्नत्रय, परिणति निज में ही होय विलय।।
अपना सुख ज्ञान सु अपने में, अपनी प्रभुता है अपने में।
पहिचाने बिन भव भ्रमते हैं, आराधन कर प्रभु बनते हैं।।
भोगों की नहीं कामना है, हे भगवन्! यही भावना है।
प्रगटावें पावन जिनशासन, फैलावें जग में प्रभु शासन।।

ॐ ह्रीं श्रीशासननायक-महावीरजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

शासन वीर महान, जयवन्तो जग में सदा।
पाकर आतम ज्ञान, आनंदित हों जीव सब।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

श्री रक्षाबंधन पूजन

(वीरछन्द)

घोर उपसर्गजयी समतामय रत्नत्रय के साधक हैं।
काया से भी निस्पृह जो निज शुद्धातम आराधक हैं।।
अहो अकंपन आदि मुनीश्वर हृदय हमारे वास करो।
हो वात्सल्य विष्णु मुनिवर सम श्री जिनधर्म प्रकाश करो।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनीश्वरसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादि-सप्तशतकमुनीश्वरसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम। ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादि-सप्तशतकमुनीश्वरसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-तांटक)

प्रासुक जल से पूजा करते, रोम-रोम हुलसाया है।
अहो सहज वात्सल्यमयी जिनशासन मन को भाया है।।
हुए अकम्पित श्री अकम्पन, आदि मुनीश्वर आतम में।
किया दूर उपसर्ग विष्णु मुनि, प्रीति धरी शुद्धातम में।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

देख प्रभाव शांत भावों का, बलि आदि भी विनत हुए।
करें अर्चना हम चंदन से, मुक्ति मार्ग के पथिक हुए।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत्-विक्षत् तन हुआ किन्तु, परिणाम आपके अक्षत ही।
अक्षत से पूजा करते हम, करें भावना ऐसी ही।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भायें हम निष्काम भावना, कामजयी हों आप समान।
पुष्पों से करते पूजा हम, जानें सहज ज्ञान में ज्ञान।।
हुए अकम्पित श्री अकम्पन, आदि मुनीश्वर आतम में।
किया दूर उपसर्ग विष्णु मुनि, प्रीति धरी शुद्धातम में।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजानन्द में तृप्त साधु, आदर्श हमारे सदा रहें।
अहो पूजते नैवेद्य से, शुद्ध भोजन में भी विरत रहें।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मोही! उपसर्गों में, द्वेष नहीं तुमको आया।
ज्ञानमयी वैराग्य आप सम, पाने को दीपक लाया।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्य अग्नि से तन झुलसा, अंतर अग्नि दुष्कर्म दहे।
धन्य महा समता के सागर, धूप चढ़ाकर पूज रहे।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंस-नाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

उदासीन हो कर्म फलों में, ज्ञाता-दृष्टा आप रहे।
साम्यभाव के ही प्रभाव से, उपसर्गों से मुक्त रहे।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है अनर्घ महिमा मुनिवर की, है अनर्घ ही शुद्धातम।
हों अनर्घ परिणाम हमारे, अर्घ चढ़ा ध्यावें आतम।। हुए...।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

रक्षाबंधन पर्व दिन, याद करें मुनिराज।
गावें जयमाला सुखद, सफल होंय सब काज।।

(छन्द-पद्धरि)

जय मुनि जीवन आनंदमयी, पर से निस्पृह शुद्धात्ममयी।
है परम जितेन्द्रिय ज्ञानमयी, है परम तृप्त वैराग्यमयी।।
आरम्भ परिग्रह के त्यागी, शिव सुख में ही वे अनुरागी।
विषयों की आशा भी न रही, संतुष्ट परिणति निज में ही।।
वर्ते अन्तर में भेदज्ञान, अनुशासन जिनका था महान।
रहते आज्ञा में गुरुवर की, मुद्रा जिनकी थी जिनवर सी।।
था संघ सात सौ मुनियों का, अद्‌भुत समूह था गुणियों का।
उज्जयिनी नगरी में आया, भूपति दर्शन कर हर्षाया।।
मुनि मौन रहे न विवाद हुआ, पर समय लौटते वाद हुआ।
श्रुतसागर से परास्त होकर, द्वेषी मंत्री क्रोधित होकर।।
रात्रि में आये वध करने, पर कीना कीलित देवों ने।
यह देख नृपति ने दिया दण्ड, निर्वासित मंत्री हुए खिन्न।।
हस्तिनापुरी नगरी आकर, सेवा से नृप को हर्षाकर।
वरदान धरोहर रूप लिया, होकर नि:शंक वहाँ वास किया।।
फिर दैवयोग से वहाँ संघ, आया पावस में नया रंग।
सब नर-नारी थे हर्षाये, पर मंत्री मन में घबराये।।
था निमित्त एक ही अविकारी, परिणति सब की न्यारी न्यारी।
वरदान नृपति से लिया माँग पा राज्य रचाया क्रूर स्वाँग।।
मुनि संघ समीप ही यज्ञ किया, अग्नि प्रज्वलित कर कष्ट दिया।
मुनिवर समता धर लीन हुए, नृप और प्रजाजन खिन्न हुए।।

था हाहाकार मचा भारी, सुन समाचार अति दु:खकारी।
विष्णुकुमार मुनि द्रवित हुए, वात्सल्य भाव वश चलित हुए।।
वामन बनकर बलि ढिंग आए, डग तीन भूमि ले हर्षाये।
विक्रिया बना तन फैलाया, बलि देख रूप था चकराया।।
चरणों में मस्तक नवा दिया जिनधर्म सु अंगीकार किया।
उपसर्ग सहज ही दूर हुआ, घर-घर में मंगलाचार हुआ।।
मुनियों को शुद्ध आहार दिया, वात्सल्य धर्म था सिखा दिया।
ले प्रायश्चित विष्णु मुनिवर, तप द्वारा कर्म नाश सत्वर।।
पंचमगति पायी अविकारी, हम करें वंदना सुखकारी।
रक्षाबंधन का पर्व चला, हमको भी शुभ संदेश मिला।।
वात्सल्य सहज ही विस्तारें, नि:शंकित हो समता धारें।
निरपेक्ष मौन सबसे उत्तम, निर्ग्रन्थ मार्ग ही लोकोत्तम।।
तन-मन-धन सब अर्पण करके, युक्ति से विनय विशुद्धि से।
जिनधर्म प्रभाव बढ़ावेंगे, निज शुद्धातम आराधेंगे।।

ॐ ह्रीं श्रीविष्णुकुमारसहिताकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिश्वरेभ्य: जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

वाद विवाद से दूर, करें सहज आराधना।
हो समता भरपूर, बढ़े सुधर्म प्रभावना।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

शुद्धात्मा की आराधना व जिनशासन की प्रभावना महान कार्य हैं, इन्हें सम्यक् विवेक, यत्नाचार, उत्साह व सर्वस्व समर्पण से करना चाहिए।

दीपमालिका पर्व पूजन

नाम ग्रहण भी श्री जिनवर का दर्शन सर्व पाप हारी।
अहो प्रवर्ते धर्म तीर्थ, जिनके वचनों से हितकारी।।
शासन नायक मुक्ति विधायक, अहो अलौकिक रूप लखा।
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर लक्षण जगत प्रसिद्ध दिखा।।

(दोहा)

चरण कमल को पूजते, हृदय हर्ष अपार।
ज्ञान दीप प्रकाश से, जगमग सब संसार।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलप्राप्त श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

उपादेय निज आतम देव, निज प्रभुता निज में स्वयमेव।
शंका तत्त्व माहिं नहीं आय, श्रद्धा दृढ़तामय प्रगटाय।।
सम्यक् नीर परम सुखदाय, जन्म जरा मृत भय विनशाय।
प्रभु ने पाया पद निर्वाण, दीपमालिका पर्व महान।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जग प्रपंच से चित्त घबराय, शरण जिनेश्वर की ही पाय।
कांक्षा भोगों की विनशाय, दूजा गुण समकित प्रगटाय।।
परिणति में शीतलता आय, भव-आताप सहज विनशाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिकृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में धर्म प्रवर्तन हो, मुक्ति मार्ग में वर्तन हो।
साधर्मी लखि परम हुलास, मलिन भाव हो जावें नाश।।
भोगों प्रति ग्लानि उपजाय, अक्षय परमातम पद पाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-ध्यान-मय मार्ग सुहाय, ध्रुव परमेश्वर निज में पाय।
साँचे-झूठे की पहिचान, नहीं मूढ़ता किंचित् आन।।
काम भाव दुर्गति का भूप, उत्तम शील सहज सुख रूप।
प्रभु ने पाया पद निर्वाण, दीपमालिका पर्व महान।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगल मण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

महाभाग्य मंगल जिनशासन, पाया श्री गुरुवर अनुशासन।
निज दोषों प्रति सहज विराग, उपगूहन गुण में अनुराग।।
तत्त्व प्रयोजनभूत पिछान, क्षुधा वेदना नहीं अभिमान।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमान जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पथ के अनुगामी हो, सहजपने शिवगामी हो।
पर दोषों में नहीं उलझाय, प्रायश्चित्त ले थिरता पाय।।
मोह अंधेरा तुरत नशाय, ज्ञान दीप अन्तर प्रज्वलाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

साधर्मी प्रति गौ सम प्रीति, निज धर्मी में अतिशय प्रीति।
शुद्धातम की धुनि लगाय, अष्टकर्म धू-धू जल जाय।।
दुखमय आवागमन मिटाय, अनंत चतुष्टय गुण प्रगटाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनशासन माहात्म दिखाय, हो प्रभावना मंगलदाय।
तिष्ठे मोक्ष महल के शीस, प्रभु चरणन में नाऊँ शीस।।
वीर प्रभु निर्वाण दिवस, गणधर केवलज्ञान दिवस।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् दर्शन-ज्ञान अनूप, निज आराधन ही सुख रूप।
सम्यक् चारित्र रतन कहाय, अशरीरी ध्रुव पद प्रगटाय।।
धर्म महोत्सव मंगलकार, जजूँ अर्घ्य ले शिवसुख कार।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण महोत्सव अर्घ्य

कार्तिक कृष्ण अमावस्या पावन भई।
वीर जिनेश्वर पावापुर से शिव मही।।
सुरपति ने आ मोक्ष कल्याण मनाईयो।
हम भी प्रगटावें मिल भाव जगाईयो।।
गौतम गणधर केवलज्ञान लहो महा।
आत्म ज्योति से रत्नदीप जगमगें सदा।।
प्रभुवर का निर्वाण दिवस सुखकार है।
हम सबके कल्याणक का आधार है।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

शासन वीर जिनेश का, शाश्वत मंगलकार।
पूजन करके गावहूं, जयमाला सुखकार।।

(तर्ज- नाथ तुम्हारा तारण हारा.....)

सारी जगती धन्य हुई जब, वसुधा पर अवतरण हुआ।
नरकों में भी साता छाई, अखिल विश्व को शरण मिला।।1।।
बाल ब्रह्मचारी जगतारी, भव भोगों से सहज विरक्त।
जग को मुक्ति पंथ सिखाया, रूप परम पावन निर्ग्रन्थ।।2।।

समवशरण रचकर इन्द्रों ने, निज वैभव को दरशाया।
अनंत चतुष्टय वैभव सन्मुख, था कुवेर भी विस्माया।। 3।।
मान गला दर्शन से तत्क्षण, गौतम गणधर पद पाया।
खिरी दिव्य वाणी कल्याणी, धर्म तीर्थ तव प्रर्वताया।। 4।।
शंकायें विघटीं भविजन की, दीक्षा का उल्लास जगा।
पावापुर से सम श्रेणी में, सिद्ध शिला पर वास हुआ।। 5।।
वीरनाथ तो मुक्ति पधारे, जगत आपकी ओर लखे।
ज्ञान-ज्ञान में हुआ प्रतिष्ठित, घाति कर्म प्रक्षीण हुए।। 6।।
उसी दिवस गौतम स्वामी ने, पाया केवलज्ञान महान।
विरह मिटा प्रभुवर का तत्क्षण, गुरुवर आप स्वयं भगवान।।7।।
हम भी अन्तर्दीप जलावें, मोह अंधेरा दूर भगे।
सम्यक्भाव विशुद्धि बढ़ावें, धर्म महोत्सव सहज फले।।8।।
फैले घर-घर प्रेम परस्पर, वात्सल्य के दीप जले।
समतामय आराधन होवे, बोधि समाधि उर प्रगटे।। 9।।
शासन वीर प्रभु का पाया, मंगलमय मंगलकारी।
जियो और जीने दो सबको, धर्म अहिंसा सुखकारी।। 10।।

ॐ ह्रीं कार्तिकृष्णामावस्यायां निर्वाणकल्याणक प्राप्ताय श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन-ज्ञान स्वभावमय, गुण अनंत की खान।
प्रभुवर-गणधर सम लखूँ, निज ज्ञायक भगवान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

भाग-4 : श्री चौबीस तीर्थंकर मण्डल विधान

श्री चौबीस तीर्थंकर स्तवन

1. श्री आदिनाथ भगवान

(गीतिका)

लीन हो निज ध्येय में, सर्वज्ञ पद पाया प्रभो।
आदि तीर्थंकर नमन अविकार हो, सुखकार हो।।
अखिल जग में, एक शुद्धातम ही भासे सार है।
पाया स्वयं में ही अहो, आनंद अपरम्पार है।।

2. श्री अजितनाथ भगवान

मोह ही हुआ पराजित, अजित प्रभु अविजित रहे।
चिद्रूप को आराधकर, शिवभूप जिनवर हो गये।।
ऐसा पराक्रम प्रगट होवे, निर्विकल्प रहूँ सदा।
संतुष्ट प्रभु निर्मुक्त निज में, सहज तृप्त रहूँ सदा।।

3. श्री सम्भवनाथ भगवान

अहो संभवनाथ दर्शन कर, परम आनन्द हुआ।
परभाव विरहित एक ज्ञायक, भाव का दर्शन हुआ।।
भावना जागी सहज, निर्ग्रन्थ पद अविकार हो।
तृप्त निज में ही सदा, पर की न चाह लगार हो।।

4. श्री अभिनन्दननाथ भगवान

अहो अभिनन्दन प्रभो, स्वीकार अभिनंदन करो।
आत्म आराधन करूँ मैं, आप प्रभु साक्षी रहो।।
क्रूरता से शून्य होवे, सिंहवृत्ति ज्ञानमय।
रहूँ निज में मग्न सहजहिं, कर्म नाशें क्लेशमय।।

5. श्री सुमतिनाथ भगवान

कुमति वश धर निमित्त दृष्टि, सहा दु:ख अपार है।
चिदानन्दमय आत्मा ही, अमित गुण भंडार है।।
आत्म आश्रय से जिनेश्वर, ध्रुव अचल शिवपद लहा।
धनि सुमति जिन, सुमतिदाता जगत त्राता हो अहा।।

6. श्री पद्मप्रभ भगवान

स्वर्ण विरचित पंकजों की, पंक्ति प्रभु चरणों तले।
शोभती सु विहार काले, और बहु अतिशय धरे।।
पद्मवत् निर्लिप्त मुद्रा, मुक्तिपथ दरशावती।
पद्मप्रभ तुमको निरखते, याद अपनी आवती।।

7. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान

हे सुपार्श्व जिनेन्द्र तेरा, स्तवन कैसे करूँ?
गुण अनन्त अहो अलौकिक, आदि अन्त नहीं लहूँ।।
वचन में आवे नहीं, चिन्तन न पावे पार है।
स्वानुभवमय भक्ति वर्ते, वंदना अविकार है।।

8. श्री चन्द्रप्रभ भगवान

सुधा झरती शांत मूरति, चन्द्रप्रभ अति सोहनी।
मोहनाशक दिव्यध्वनि, स्वामी परम मनमोहिनी।।
चन्द्र किरणों के परस से, सिन्धु ज्यों उछले प्रभो।
उछले परम आनन्द सागर, सहज दर्शन से विभो।।

9. श्री पुष्पदंत भगवान

हे प्रभो! अध्यात्म विद्या, दिव्यध्वनि से तुम कही।
पुष्पदन्त जिनेन्द्र मुक्ति, की सुविधि भविजन लही।।
नाम सार्थक सुविधिनाथ, स्वपद भजूँ अतिचाव से।
निश्चिंत हूँ निर्द्वन्द्व हूँ, रुचि लगी सहज स्वभाव से।।

10. श्री शीतलनाथ भगवान

आधि-व्याधि-उपाधिमय, भवताप से तपता रहा।
अहो! शीतलनाथ मम उर, दर्श से शीतल भया।।
परम शीतल तत्त्व, निज शुद्धात्मा पाया अहा।
तृप्त निज में ही रहूँ, संताप नहिं उपजे कदा।।

11. श्री श्रेयांसनाथ भगवान

निरपेक्ष होते भी अहो, जग दुख हरो श्रेयांस जिन।
सहज जीते कर्म शत्रु, क्रोध बिन शस्त्रादि बिन।।
शृंगार बिन स्वामी स्वयं ही, जगत के शृंगार हो।
ध्रुव श्रेय पाया नाथ, मेरी वंदना अविकार हो।।

12. श्री वासुपूज्य भगवान

चक्र से या वज्र से भी, मोह जो नशता नहीं।
जिननाथ तव उपदेश से, दुर्मोह नाशे सहज ही।।
इन्द्रादि से भी पूज्य स्वामिन्, वासुपूज्य सु नाम है।
सहज पूज्य स्वभाव पाया, नाथ सहज प्रणाम है।।

13. श्री विमलनाथ भगवान

स्नान बिन निर्मल हुए, प्रभु आप सहज स्वभाव से।
स्वयं छूटे कर्ममल, विभु आत्मध्यान प्रभाव से।।
विमल जिनवर दर्श करते, भेदज्ञान हृदय जगा।
भ्रान्ति विघटी शान्ति प्रगटी, भाव अति निर्मल भया।।

14. श्री अनन्तनाथ भगवान

बसे सादि अनंत शिव में, परम आनन्द रूप हो।
प्रगटे अनन्त सुगुण जिनेश्वर, रहो ज्ञाता रूप हो।।
प्रभुता अनन्त सुज्ञान में भी, अनंत ही प्रतिभासती।
प्रभु अनन्त सुदर्श से, महिमा अनन्त प्रकाशती।।

15. श्री धर्मनाथ भगवान

जिन धर्म पाया भाग्य से, आनंद अपरम्पार है।
दीखे स्वयं में ही अहो, अक्षय विभव भंडार है।।
निन्दा करें या त्रास दें जन, धर्म नहीं छोड़ूँ प्रभो।
हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! दु:खमय, बन्ध सब तोड़ूँ विभो।।

16. श्री शान्तिनाथ भगवान

जन्म क्षण में ही जगत में, सहज ही साता हुई।
सहस्त्र नेत्रों देखते, नहीं इन्द्र को तृप्ति हुई।।
विभव चक्री का प्रभो, निस्सार जाना आपने।
हे शान्ति जिन! सुख शान्तिमय, निज पद प्रकाशा आपने।।

17. श्री कुन्थुनाथ भगवान

प्रभु अहिंसा धर्म जग में, आपने विस्तृत किया।
मैत्री-प्रमोद, दया तथा माध्यस्थ भाव सिखा दिया।।
अनुभूत मुक्तिमार्ग का, उपदेश दे प्रभु शिव बसे।
हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र! सहज सु, भक्ति उर में उल्लसे।।

18. श्री अरनाथ भगवान

षट्खण्ड पर पाकर विजय, चक्री कहाए हे प्रभो।
फिर विजय पाकर मोह पर, तीर्थेश कहलाए विभो।।
भव रहित भगवान आत्मा, आप दर्शाया हमें।
अरनाथ जिन! उपकार वश, नित भाव से वन्दन तुम्हें।।

19. श्री मल्लिनाथ भगवान

हे बाल ब्रह्मचारी प्रभो, चिद्ब्रह्म रस में रम रहे।
यौवन समय निर्ग्रन्थ दीक्षा, धार शिवचारी भये।।
त्रैलोक्य जेता काम जीता, होय निर्मोही सहज।
हे मल्लिजिन! प्रभु रूप लखते, शीस झुक जाता सहज।।

20. श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

हे नाथ मुनिसुव्रत! तुम्हें, पाकर सनाथ हुआ जगत।
दिव्यध्वनि सुनकर सु जाना, भविजनों ने सत् असत्।।
असत् रूप विभाव तज, सत् भाव की आराधना।
कर तिरें भविजन भवोदधि, हो सहज प्रभु वन्दना।।

21. श्री नमिनाथ भगवान

अणुमात्र का स्वामित्व तज, त्रयलोक के स्वामी हुए।
आत्मा में मग्न हो, सर्वज्ञ जगनामी हुए।।
शुद्धात्मा ही मंगलोत्तम, शरण रूप अनन्य है।
हो नमन नमि जिन! आपको, नमनीय रूप अनन्य है।।

22. श्री नेमिनाथ भगवान

हे नेमि प्रभु! आदर्श है, वैराग्य जग में आपका।
चढ़ गये गिरनार स्वामी, तोड़ बन्धन पाप का।।
निर्ग्रन्थ हो, निर्द्वन्द्व हो, प्रभु मग्न निज में ही हुए।
प्रभुता सहज प्रगटी अलौकिक तृप्त निज में ही हुए।।

23. श्री पार्श्वनाथ भगवान

नाग-नागिन दग्ध लखकर, करुण हो संबोधिया।
धरणेन्द्र पद्मावती हुए, वैराग्य प्रभु तुम भी लिया।।
निर्ग्रन्थ हो आत्मार्थ साधा, हो गये परमात्मा।
जग को बताया पार्श्वप्रभु, परमात्मा सब आत्मा।।

24. श्री महावीर भगवान

जीता सुभट दुर्मोह सा प्रभु, मदन को निर्मद किया।
जग से विरत हो आत्मरत, परमात्म पद को पा लिया।।
तत्त्वोपदेश दिया प्रभो! आदेय शुद्धात्मा कहा।
हे वीर जिनवर तुम प्रसाद सु, सहज निजपद हम लहा।।

विधान-पीठिका

(दोहा)

नेता मुक्तिमार्ग के, साँचे तारणहार।
कर्म कलंक विनष्ट कर, हुए विश्व ज्ञातार।।
तीर्थंकर चौबीस वर, मंगलमय अविकार।
भक्तिभाव से पूजते, मन में हर्ष अपार।।
पूजों समुच्चय रूप से, अरु प्रत्येक-प्रत्येक।
अन्तर माँहि निहारता, मैं अनेक में एक।।
निजानन्द निज में लहूँ, भोगों की नहिं चाह।
पाऊँ मैं भी आप सम, रत्नत्रय की राह।।
जब तक नहीं निर्ग्रन्थ पद, प्रगटे मंगलरूप।
जिनवर पूजन के निमित्त, भाऊँ शुद्ध चिद्रूप।।
मुक्तिमार्ग की सुविधि ही, जान प्रशस्त विधान।
भक्ति भाव से पूजते, करूँ भेद-विज्ञान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

दीपक आत्मज्ञान उजियारो।
जासों मिटे मोह तम कारो॥ टेक॥
स्व-पर विवेक होय अन्तर में, आनन्द होय अपारो॥ 1॥
हो एकाग्र स्वयं में दुःखमय, सर्व कर्म संहारो॥ 2॥
पर की चिन्ता छोड़ आत्मन्! ज्ञायक भाव संभारो॥ 3॥
निज प्रभुता में मग्न भये तें, मिले मोक्ष पद सारो॥ 4॥

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन

(गीतिका)

पंचकल्याणक सुपूजित, ऋषभ आदि जिनेश्वरा।
वर्तमान में इस क्षेत्र में, विभु धर्म तीर्थ प्रगट किया।।
पूजन करूँ अति भक्ति से, उपकार परम विचारि के।
बोधि समाधि प्राप्त हो, यह भाव उर में धारि के।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत-चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्। ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत-चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरांत-चतुर्विंशति-जिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(छन्द-रोला)

भव-भव में प्रभु जन्म मरण करि बहु दुख पाया।
दर्शन पाकर आज देव! अमरत्व लखाया।।
समता जल ले पूजूँ ध्याऊँ हे अविकारी।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षमा भाव धरि क्रोधादिक पर प्रभु जय पाई।
आत्म शान्ति की युक्ति दिव्यध्वनि से दरशाई।।
क्षमा भाव चन्दन ले पूजूँ हे अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् भावों में फँसकर नहिं संसार बढ़ाना।
नाथ इष्ट है तुम सम ही अक्षय पद पाना।।
आत्म भावना अक्षत ले पूजूँ अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु प्रसाद से काम सुभट क्षण में विनशाऊँ।
भाऊँ ब्रह्म स्वरूप सहज आनन्द प्रगटाऊँ।।
जजूँ पुष्प निष्काम भावमय ले अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चपल इन्द्रियों पर जय पाकर तृप्ति पाऊँ।
निजानन्द रस आस्वादी हो क्षुधा मिटाऊँ।।
सहज तृप्त निर्वांछक हो पूजूँ अविकारी।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी सुन भेदज्ञान कर मोह तजूँ मैं।
अन्तर्मुख हो परमभाव निज सहज लखूँ मैं।।
निर्मोही हो पूजूँ ध्याऊँ हे अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य-भाव-नो-कर्मों से शुद्धातम न्यारा।
अहो आपकी साक्षी में प्रत्यक्ष निहारा।।
कर्म कलंक नशाऊँ पूजूँ हे अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हो निरीह निज से ही निज में शिवफल पाया।
नित्य मुक्त आतम परमातम सम दर्शाया।।
ध्याऊँ आत्म स्वरूप सहज पूजूँ अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अरे! धूल सम जग वैभव क्षण में ठुकराया।
अन्तर्मग्न हुए अनर्घ्य निज वैभव पाया।।
जजूँ अर्घ्य ले शुद्ध भावमय हे अविकारी।। ऋषभादिक.।।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादि-महावीरान्तेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

सहज भाव से पूजकर, गाऊँ शुभ जयमाल।
ध्याऊँ ध्येय स्वरूप निज, कटे कर्म जंजाल।।

(छन्द-भुजंगप्रयात)

ऋषभनाथ पूजूँ महासु:खकारी, अजितनाथ वन्दूँ करम रिपु संहारी।
सम्भव जिनेश्वर जजूँ शम प्रदाता, नमूँ नाथ अभिनंदनं शिव विधाता।।
सुमति पद्मप्रभ अरु सुपारस को वंदन, अहो चन्द्रप्रभ जिन भजूँ दुख निकन्दन।
श्री पुष्पदंत सु शीतल जिनेश्वर, नमूँ भक्ति से पूज्य श्रेयांस जिनवर।।
प्रथम बालयति वासुपूज्य सु स्वामी, करम मल विघातक विमल जिन नमामी।
अनन्त जिनेश्वर सुगुणऽनन्त धारी, नमूँ धर्मनाथं धरम पथ प्रचारी।।
जजूँ शान्तिनाथं परम शान्तिदायक, जयतु कुन्थु जिनवर अहिंसा विधायक।
श्री अर जिनेन्द्रं धरम नीति धारी, नमूँ मल्लि जिनवर परम ब्रह्मचारी।।
मुनिसुव्रतं नमि तथा नेमिनाथं, नमूँ पार्श्वनाथं श्री वीरनाथं।
महाभक्ति से नाथ गुणगान करके, धरम तीर्थ पाऊँ स्वपद दृष्टि धरिके।।
न लौकिक फलों की प्रभो कामना है, न विषसम कुभोगों की कुछ वासना है।
रहो आप आदर्श निजपद को ध्याऊँ, कि साधन ही क्या? साध्य भी निज में पाऊँ।।

(छन्द-घत्ता)

जय जय अविकारी, शिवसुखकारी, तीर्थेश्वर चौबीस भला।
जो प्रभु गुण गावें, मोह नशावें, पावें केवलज्ञान कला।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादिमहावीरान्तेभ्य: चतुर्विंशतिजिनेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पूजें जिनपद सार, ध्यावें निज शुद्धात्मा।
सो पावें भव पार, त्रिविध कर्ममल नाशि के।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(1) श्री आदिनाथ पूजन

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, परम सुखी भगवान।
आराधूँ शुद्धात्मा, पाऊँ पद निर्वाण।।

हे धर्म-पिता सर्वज्ञ जिनेश्वर, चेतन मूर्ति आदि जिनम्।
मेरा ज्ञायक रूप दिखाने, दर्पण सम प्रभु आदि जिनम्।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण पा, सहज सुधारस आप पिया।
मुक्तिमार्ग दर्शाकर स्वामी, भव्यों प्रति उपकार किया।।
साधक शिवपद का अहो, आया प्रभु के द्वार।
सहज निजातम भावना, जिन पूजा का सार।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चेतनमय है सुख सरोवर, श्रद्धा पुष्प सुशोभित हैं।
आनन्द मोती चुगते हंस, सुकेलि करैं सुख पाते हैं।।
स्वानुभूति के कलश कनकमय, भरि-भरि प्रभु गुण गाते हैं।
ऐसे धर्मी निर्मल जल से, मिथ्या मैल नशाते हैं।।
अथाह सरवर आत्मा, आनन्द रस छलकाय।
आत्म शान्ति रस पान से, जन्म-मरण मिट जाय।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मग्न प्रभु चेतन सागर में, शान्ति जल से न्हाय रहे।
मोह मैल को दूर हटाकर, भवाताप से रहित भये।।
तप्त हो रहा मोह ताप से, सम्यक् रस में स्नान करूँ।
समरस चन्दन से पूजूँ अरु, तेरा पथ अनुसरण करूँ।।

चेतन रस को घोलकर, चारित्र सुगन्ध मिलाय।
भाव सहित पूजा करूँ, शीतलता प्रगटाय।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष अगोचर प्रभो आप, पर अक्षत से पूजा करता।
अक्षातीत ज्ञान प्रगटाकर, शाश्वत अक्षय पद भजता।।
अन्तर्मुख परिणति के द्वारा, प्रभुवर का सम्मान करूँ।
पूजूँ जिनवर भक्तिभाव से, निज सुख का आस्वाद करूँ।।
अक्षय सुख का स्वाद लूँ, इन्द्रिय मन के पार।
सिद्ध प्रभु सुख मगन ज्यों, तिष्ठे मोक्ष मंझार।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम अतीन्द्रिय देव अहो! पूजूँ मैं श्रद्धा सुमन चढ़ा।
कृतकृत्य हुआ निष्काम हुआ, तब मुक्ति मार्ग में कदम बढ़ा।।
गुण अनंतमय पुष्प सुगन्धित, विकसित हैं निज आतम में।
कभी नहीं मुरझावें, परमानन्द पाया शुद्धातम में।।
रत्नत्रय के पुष्प शुभ, खिले आत्म उद्यान।
सहजभाव से पूजते हर्षित हूँ भगवान।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्त क्षुधा से रहित जिनेश्वर, चरु लेकर मैं पूज करूँ।
अनुभव रसमय नैवेद्य सम्यक्, तुम चरणों में प्राप्त करूँ।।
चाह नहीं किंचित् भी स्वामी, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ।
सादि-अनंत मुक्तिपद जिनवर, आत्मध्यान से प्रकट लहूँ।।
जग का झूठा स्वाद तो, चाख्यो बार अनन्त।
वीतराग निज स्वाद लूँ, होवे भव का अन्त।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित दीपों का प्रकाश भी, दूर नहीं अज्ञान करे।
आत्मज्ञान की एक किरण ही, मोह तिमिर को तुरत हरे।।

अहो ज्ञान की अद्‌भुत महिमा, मोही नहिं पहिचान सकें।
आत्मज्ञान का दीप जलाकर, साधक स्व-पर प्रकाश करें।।
स्वानुभूति प्रकाश में, भासे आत्म स्वरूप।
राग पवन लागे नहीं, केवल ज्योति अनूप।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वेष भाव तो नहीं रहा, रागांश मात्र अवशेष हुआ।
ध्यान अग्नि प्रगटी ऐसी, तहाँ कर्मेन्धन सब भस्म हुआ।।
अहो! आत्मशुद्धि अद्‌भुत है, धर्म सुगन्धी फैल रही।
दशलक्षण की प्राप्ति करने, प्रभु चरणों की शरण गही।।
स्व-सन्मुख हो अनुभवूँ, ज्ञानानन्द स्वभाव।
निज में ही हो लीनता, विनसैं सर्व विभाव।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन मूल अहो, चारित्र वृक्ष पल्लवित हुआ।
स्वानुभूतिमय अमृत फल, आस्वादूँ अति ही तृप्त हुआ।।
मोक्ष महाफल भी आवेगा, निश्चय ही विश्वास अहो।
निर्विकल्प हो पूर्ण लीनता, फल पूजा का प्रभु फल हो।।
निर्वांछक आनन्दमय, चाह न रही लगार।
भेद न पूजक पूज्य का, फल पूजा का सार।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् तत्त्व स्वरूप न जाना, नहिं यथार्थतः पूज सका।
राग भाव को रहा पोषता, वीतरागता से चूका।।
काललब्धि जागी अन्तर में, भास रहा है सत्य स्वरूप।
पाऊँगा निज सम्यक् प्रभुता, भास रही निज माहिं अनूप।।
सेवा सत्य स्वरूप की, ये ही प्रभु की सेव।
जिन सेवा व्यवहार से, निश्चय आतम देव।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

कलि अषाढ़ द्वय जान, सर्वार्थसिद्धि विमान से।
आय बसे भगवान, मरुदेवी के गर्भ में।।
गर्भवास नहीं इष्ट, तहाँ भी प्रभु आनन्दमय।
माँ को भी नहिं कष्ट, रत्न पिटारे ज्यों रहे।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पृथ्वी हुई सनाथ, नवमी कृष्णा चैत को।
नरकों में भी नाथ, जन्म समय साता हुई।।
इन्द्रादिक सिर टेक, कियो महोत्सव जन्म का।
मेरू पर अभिषेक, क्षीरोदधि तें प्रभु भयो।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

भासा जगत असार, देख निधन नीलांजना।
नवमी कृष्णा चैत्र परम दिगम्बर पद धरो।।
चिदानन्द पद सार, ध्याने को मुनि पद लिया।
परम हर्ष उर धार, लौकान्तिक धनि-धनि कहा।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

प्रगट्यो केवलज्ञान, फाल्गुन कृष्ण एकादशी।
धर्मतीर्थ अम्लान, हुआ प्रवर्तित आप से।।
समझा तत्त्व स्वरूप, दिव्य देशना श्रवण कर।
पाई मुक्ति अनूप, भविजन निज पुरुषार्थ से।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पाया अविचल थान, चौदश कृष्णा माघ दिन।
गिरि कैलाश महान, तीर्थ प्रगट जग में हुआ।।
सहज मुक्ति दातार, शुद्धातम की भावना।
वर्ते प्रभु सुखकार, मैं भी तिष्ठूँ मोक्ष में।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- आदीश्वर वन्दूँ सदा, चिदानन्द छलकाय।
चरण-शरण में आपकी, मुक्ति सहज दिखाय।।

धन्य ध्यान में आप विराजे, देख रहे प्रभु आतमराम।
ज्ञाता-दृष्टा अहो जिनेश्वर, परम ज्योतिमय आनन्दधाम।।
रत्नत्रय आभूषण साँचे, जड़ आभूषण का क्या काम?
राग-द्वेष निःशेष हुए हैं, वस्त्र-शस्त्र का लेश न नाम।।
तीन लोक के स्वयं मुकुट हो, स्वर्ण मुकुट का है क्या काम?
प्रभु त्रिलोक के नाथ कहाओ, फिर भी निज में ही विश्राम।।
भव्य निहारें अहो आपको, आप निहारें अपनी ओर।
धन्य आपकी वीतरागता, प्रभुता का प्रभु ओर न छोर।।
आप नहीं देते कुछ भी पर, भक्त आप से ले लेते।
दर्शन कर उपदेश श्रवण कर, तत्त्वज्ञान को पा लेते।।
भेदज्ञान अरु स्वानुभूति कर, शिवपथ में लग जाते हैं।
अहो! आप सम स्वाश्रय द्वारा, निज प्रभुता प्रगटाते हैं।।
जब तक मुक्ति नहीं होती प्रभु, पुण्य सातिशय होने से।
चक्री इन्द्रादिक के वैभव, मिलें अन्न संग के तुष से।।
पर उनको चाहें नहिं ज्ञानी, मिलें किन्तु आसक्त न हों।
निजानन्द अमृत रस पीते, विष-फल चाहे कौन अहो?
भाते नित वैराग्य भावना, क्षण में छोड़ चले जाते।
मुनि दीक्षा ले परम तपस्वी, निज में ही रमते जाते।।
घोर परीषह उपसर्गों में मन सुमेरु नहिं कम्पित हो।
क्षण-क्षण आनन्दरस वृद्धिंगत, क्षपक श्रेणि आरोहण हो।।
शुक्लध्यान बल घाति विनष्टे, अर्हत् दशा प्रगट होती।
अल्पकाल में सर्व कर्ममल, वर्जित मुक्ति सहज होती।।

परमानन्दमय दर्श आपका, मंगल उत्तम शरण ललाम।
निरावरण निर्लेप परम प्रभु, सम्यक् भावे सहज प्रणाम।।
ज्ञान माँहि स्थापन कीना, स्व-सन्मुख होकर अभिराम।
स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी, प्रत्यक्ष निहारूँ आतमराम।।

दोहा- प्रभु नन्दन मैं आपका, हूँ प्रभुता सम्पन्न।
अल्पकाल में आपके, तिष्ठूँगा आसन्न।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

दर्शन-ज्ञान स्वभावमय, सुख अनंत की खान।
जाके आश्रय प्रगटता, अविचल पद निर्वान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(2) श्री अजितनाथ पूजन

मोह महारिपु जीतकर, कामादिक रिपु जीति।
सर्व कर्म मल धोय के, मेटी भव की रीति।।
भाव सहित पूजा करूँ, प्रभु चित माँहि बसाय।
तृप्त रहूँ आनन्द में, जाननहार जनाय।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-रोला)

शाश्वत प्रभु अवलोक, परम आनन्द उपजाया।
प्रभु प्रसाद से जन्म जरान्तक, भय विनशाया।।
अजित जिनेश्वर भक्ति भाव से, पूजन तेरा।
करूँ सहज हो, वृद्धिंगत रत्नत्रय मेरा।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञान में भासित, ज्ञायक अनुभव आये।
शांत ज्ञेय निष्ठा हो, भव आताप नशाये।।
अजित जिनेश्वर भक्ति भाव से, पूजन तेरा।
करूँ सहज हो, वृद्धिंगत रत्नत्रय मेरा।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् विभाव से भिन्न, स्वयं को अक्षय ध्याऊँ।
प्रभु का यह उपकार, सहज अक्षय पद पाऊँ।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रहूँ परम निष्काम, आत्म आश्रय के बल से।
सर्व-वासना मिटे, ब्रह्मचर्य के ही फल से।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा वेदना की पीड़ा कैसे उपजावे?
वेदक वेद्य अभेद, ज्ञान वेदन में आवे।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्प्रकाशमय सदा सहज, निर्मोह निजातम।
आराधूँ हे नाथ, प्रगट हो पद परमातम।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जलें ध्यान की अग्नि माँहि, सब कर्म विकारी।
अहो विभो! निष्कर्म, अवस्था हो अविकारी।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जगा हृदय बहुमान, देव तुम पूज रचाई।
हुआ परम फल, फल की अभिलाषा विनशाई।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हो अनर्घ्य हे नाथ! अर्घ्य क्या तुम्हें चढ़ाऊँ।
अन्तर्मुख हो पूजक-पूज्य सु-भेद मिटाऊँ।। अजित.।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

गर्भवास निष्ताप, जेठ अमावस के दिना।
कीना प्रभुवर आप, भाव सहित पूजूँ चरण।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णामावस्यायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म भयो सुखकार, माघ सुदी दशमी दिवस।
आनन्द अपरम्पार, भयो सहज त्रयलोक में।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिपद दीक्षा धार, माघ सुदी दशमी दिना।
हो निशल्य अविकार, सहज निजातम साधिया।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति कर्म निरवार, पौष सुदी एकादशी।
पूर्ण ज्ञान सुखकार, पाया प्रभु अरिहंत पद।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्ल एकादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाया पद निर्वाण, चैत्र सुदी तिथि पंचमी।
शिखर सम्मेद महान, मैं पूजों अति चाव सौं।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लपंचम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- ज्ञान शरीरी नाथ को, ज्ञान माँहि अवलोक।
ज्ञानमयी आनन्द हो, मिटे उपद्रव शोक।।

(गीतिका)

जित-शत्रु नंदन, भव निकन्दन, ज्ञानमय परमात्मा।
जयमाल गाऊँ भक्ति से, ध्याऊँ सहज शुद्धात्मा।।
पूर्व भव में विमल वाहन, भूप नीतिवान थे।
श्रुतकेवली मुनिराज देखे, जो गुणों की खान थे।।
उपदेश सुन अन्तर्मुखी, परिणमन प्रभु तुमने किया।
संसार में अब नहिं रहूँ, संकल्प तत्क्षण कर लिया।।
निर्ग्रन्थ हो निर्द्वन्द्व हो, भायीं सु सोलह भावना।
प्रकृति तीर्थंकर बंधी, शुभरूप मंगल कारना।।

सन्यास पूर्वक देह तजकर, हुए प्रभु अहमिन्द्र थे।
थी शुक्ल लेश्या भाव निर्मल, वासना से शून्य थे।।
छह माह आयु शेष थी, तब रत्न धारा बरसती।
सुन्दर हुई सम्पन्न अति, साकेत नगरी हरषती।।
सोलह सु सपने मात देखे, गर्भ में आये प्रभो।
कल्याण देवों ने मनाया, सभी हर्षाये अहो।।
फिर जन्मते अभिषेक इन्द्रों ने, सुमेरू पर किया।
थे सहज वैरागी, नहीं राज्यादि करते रस लिया।।
नक्षत्र टूटा देखते, वैराग्यमय चिन्तन किया।
अनुमोदना लौकान्तिकों की पाय हर्षाया हिया।।
आनन्दमय निर्ग्रन्थ दीक्षा धरी प्रभु आनन्द से।
आराधना करते प्रभो, छूटे करम के फन्द से।।
होकर स्वयंभू देव, मुक्ति-मार्ग दर्शाया सहज।
पुनि घाति शेष अघातिया, ध्रुव सिद्धपद पाया सहज।।
पूजा करूँ प्रभु आपकी, निष्काम हो निष्पाप हो।
परिणति स्वयं में लीन हो, आदर्श जग में आप हो।।
उच्छिष्ट सम छोड़े हुए, भव भोग इष्ट नहीं मुझे।
मम नित्य ज्ञानानन्दमय प्रभु परम इष्ट मिला मुझे।।
सन्तुष्ट हूँ अति तृप्त हूँ, रतिवन्त हूँ निज भाव में।
जयवन्त हो श्री जैनशासन, लीन सहज स्वभाव में।।

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

प्रभुवर चरण प्रसाद से, विजित होंय सब कर्म।
स्वाभाविक प्रभुता खिले, रहूँ सदा निष्कर्म।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(3) श्री सम्भवनाथ पूजन

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, अनन्त चतुष्टयवान।
आवागमन रहित प्रभो! करता भाव-आह्वान्।।
दृष्टि-ज्ञान-सुध्यान में, सदा विराजो आप।
आओ प्रभु! सन्निकट हो, मेटो मम भवताप।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

प्रभु! जन्म मरण से पार, आतम तत्त्व लखा।
जीवन का सहज प्रवाह, अनादि-अनंत दिखा।।
हे सम्भवनाथ जिनेश! पूजों सुखदाई।
हे प्रभु तुम चरण प्रसाद, आतम निधि पाई।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु भव-भव का संताप, सहज विनष्ट हुआ।
लोकोत्तर चन्दन आप, मैं कृत-कृत्य हुआ।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

विभु अक्षयपद अभिराम, आप दिखाया है।
अक्षत से पूजत स्वामि, चित हरषाया है।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शोभे जिन सौम्य स्वरूप, अनुपम अविकारी।
ध्रुव ब्रह्मरूप चिद्रूप, ध्याऊँ सुखकारी।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हो सहज तृप्त जिनराज, अपने माँहि सही।
संतुष्ट हुआ चित आज, वांछा शेष नहीं।।
हे सम्भवनाथ जिनेश! पूजों सुखदाई।
हे प्रभु तुम चरण प्रसाद, आतम निधि पाई।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मोही आत्म स्वभाव, तुम सम पहिचाना।
नाशूँ दुर्मोह विभाव, प्रभु निज पद जाना।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूपायन काया माँहि, अग्नि ध्यानमयी।
हो ज्वलित कर्म विनशाहिं, वर्तूं ज्ञानमयी।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु प्रभुता पूर्ण निहार, परमानन्द हुआ।
प्रभु पूजक भेद विडार, जाननहार हुआ।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रादिक पद निस्सार, भासे दुखकारी।
पाऊँ अनर्घ पद सार, अविचल अविकारी।। हे.।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(तर्ज-घड़ी जिनराज दर्शन की...)

अहो! फागुन सुदी आठें, खोलते कर्म की गाँठें।
नाथ जब गर्भ में आये, जजत इन्द्रादि हर्षाये।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लाष्टम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पूर्णिमा कार्तिकी सुखमय, जन्म कल्याण मंगलमय।
भव्य बहुमान से पूजें, पूजते कर्म रिपु धूजें।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लपूर्णिमायां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पूर्णिमा मगसिरी आई, धरी दीक्षा सु सुखदाई।
किया कचलौंच प्रभु ऐसे, कर्म लौंचे हों जिन जैसे।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लपूर्णिमायां तपोमंगलमण्डिताय श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

चतुर्थी कृष्ण कार्तिक को, नशाया कर्म घाति को।
हुआ केवल सु मंगलमय, पूजते नष्ट हो भव भय।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णचर्तुथ्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

चैत सुदि षष्टि सुखदाई, प्रभो पंचम गति पाई।
अहो! जिनराज को जजते, मुक्ति मिलती सहज भजते।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- दुर्गम भवसागर विषैं, तारण-तरण जिहाज।
भक्ति भाव उर में धरूँ, गुण गाऊँ जिनराज।।

(वीरछन्द)

पूजन करते नाथ आपकी, आनन्द अपरम्पार रे।
भव विरहित हे सम्भव जिनवर, सहज लहूँ भवपार रे।।टेक।।
द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय अरु, इन्द्रिय विषयों से भिन्न हो।
सहज अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय, अनुभव करूँ अखिन्न हो।।
करूँ देव परमार्थ स्तुति, रहूँ सहज अविकार रे।।पूजन...।।
एक शुद्ध निर्मम निर्मोही, स्वयं स्वयं को जान मैं।
होय क्षीण मोहादि कर्म रिपु, ऐसा धारूँ ध्यान मैं।।
रहे प्रतिष्ठित ज्ञान ज्ञान में, चाह न रही लगार रे।। पूजन...।।
उड़ते पक्षी की छाया सम, विषयों से सुख की आशा।
महाक्लेशकारी प्रभु जानी, पुद्गल का क्या विश्वासा?
हो निराश जग से हे स्वामिन्! साधूँ निज पद सार रे।। पूजन...।।

रचना मेघ विघटते लखकर, जिन दीक्षा ली अविकारी।
आत्मध्यान धरि कर्म नशाये, अक्षय प्रभुता विस्तारी।।
धर्म-तीर्थ का किया प्रवर्तन, तिहुँ जग तारण हार रे।। पूजन...।।
तीर्थ स्वरूप आपको पाकर, भेदज्ञान की ज्योति जगी।
दुखकारी परलक्षी परिणति, नाथ सहज ही दूर भगी।।
करूँ देव अनुकरण आपका, शिवस्वरूप शिवकार रे।। पूजन...।।
मोहीजन को लगे असम्भव, रागादि का मिट जाना।
आज सहज सम्भव भासे प्रभु, वीतराग पद पा जाना।।
प्रभु प्रसाद मिट जावे पूजक-पूज्य भेद दुखकार रे।। पूजन...।।

(छन्द-बसंततिलका)

इन्द्रादि शीस नावें, आनन्द बढ़ावें,
अति भक्ति भाव लावें, पूजा रचावें।
मैं अर्चना करूँ क्या? है शक्ति थोरी,
पूजन निमित्त परिणति, निज माहिं जोरी।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

जो पूजें मन लाय, सम्भवनाथ जिनेश को।
पावें इष्ट अघाय, अविनाशी शिवपद लहें।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

शुद्धात्मा परमार्थ तीर्थ।
धर्मात्माओं की संगति जीवंत तीर्थ।
श्री सम्मेदशिखर जी आदि क्षेत्र तीर्थ।
जैन पर्वों के दिवस काल तीर्थ।

(4) श्री अभिनन्दननाथ पूजन

(वीरछन्द)

चन्द्र कान्ति की सूर्य तेज की, इन्द्र विभव की चाह करें।
ऐसी कान्ति तेज अरु वैभव, अभिनन्दन प्रभु सहज धरें।।
गुण अनुपम अक्षय हैं जिनवर, क्या महिमा का गान करूँ।
हृदय विराजो अभिनन्दन प्रभु, निजानन्द रस पान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-गीतिका)

आया शरण जिननाथ की जब, सहज ही अतिशय हुआ।
दिखा शाश्वत आत्मा, मरणादि से निर्भय हुआ।।
नाथ अभिनन्दन प्रभु की, करूँ पूजा भक्ति से।
पाऊँ विशुद्धि परम जिनवर सम, स्वयं की शक्ति से।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनरूप लख मैंने लखा, शीतल स्वभाव सु आपका।
चन्दन चढ़ा निजपद भजूँ , कारण नशे भवताप का।। नाथ. ।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय जिनेश्वर पद निरख, इन्द्रादि पद दुखमय लगे।
निज भावमय अक्षत चढ़ाऊँ, भाग्य मेरे हैं जगे।। नाथ. ।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जिनराज गुणमय सुमन माला, कंठ में धारण करूँ।
निष्काम परम सुशील पाऊँ, भाव अब्रह्म परिहरूँ।। नाथ. ।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वानुभवमय सरस चरु यह, आप ढिंग पाया प्रभो।
तृप्ति हुई ऐसी कि काल अनन्त तृप्त रहूँ विभो।।
नाथ अभिनन्दन प्रभु की, करूँ पूजा भक्ति से।
पाऊँ विशुद्धि परम जिनवर सम, स्वयं की शक्ति से।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान-दीप प्रकाश से, आलोकमय मेरा सदन।
झलके सु लोकालोक ऐसा, ज्ञान-केवल लहूँ जिन।। नाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह देह धूपायन बनाकर, ध्यान की अग्नि जला।
भस्म कर्मों को करूँ, जिनधर्म है मुझको मिला।। नाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नहीं शेष कुछ वाँछा रही, पूजा सफल मेरी हुई।
निश्चय मिले मुक्ति सुफल, जब दृष्टि है सम्यक् हुई।। नाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्या मूल्य है जड़ अर्घ्य का, पाया अनर्घ्य निजात्मा।
अर्घ्य उत्तम प्रभु चढ़ाऊँ, मुदित हो परमात्मा।। नाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

आये गर्भ मँझार, माँ सिद्धार्था धनि हुई।
देव किया जयकार, षष्ठी सुदि वैशाख दिन।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

हुआ जन्म सुखकार, माघ सुदी बारस तिथि।
हर्षित इन्द्र अपार, उत्सव नाना विधि किए।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

नश्वर मेघ निहार, हो विरक्त जिननाथ जी।
दीक्षा ली सुखकार, माघ सुदी बारस दिना।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

रही सहज ही नाथ, वर्ष अठारह मुनिदशा।
आप हुए जिननाथ, पौष सुदी चौदश दिना।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लचतुर्दश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

आनन्द कूट प्रसिद्ध, शिखर सम्मेद महान है।
तहँ ते भये सुसिद्ध, षष्ठी सुदि वैशाख प्रभु।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जयमाला जिनराज की, गाऊँ मंगलकार।
जिनकी शुभ परिणति लखे, हो वैराग्य उदार।।

(चौपाई)

वंदन अभिनन्दन स्वामी को, चौथे तीर्थंकर नामी को।
विदेहक्षेत्र में नृपति महाबल, न्यायवन्त शोभें बहु दल बल।।
इक दिन सहज रूप वैरागे, यों मन माहिं विचारन लागे।
ओस बिन्दु सम वैभव सारा, दुख कारण सब ही परिवारा।।
ज्यों-ज्यों भोग मनोहर पावें, तृष्णा त्यों-त्यों बढ़ती जावे।
जब तक श्वांसा तब तक आशा, आशावान जगत के दासा।।
जब मन की आशा मर जावे, परम सुखी जगनाथ कहावे।
सुख सिद्धि का एकहि साधन, निज ज्ञायक प्रभु का आराधन।।
अब मैं समय नहीं खोऊँगा, जग प्रपंच तज मुनि होऊँगा।
यों विचार त्यागा संसारा, आनन्दमय निर्ग्रन्थ पद धारा।।

तज परिग्रह प्रभु हुए विरागी, हर्ष सहित मुनिदीक्षा धारी।
उत्तम तीर्थंकर पददायी, सोलहकारण भावना भायी।।
देह समाधि पूर्वक छोड़ी, निज परिणति निज में ही जोड़ी।
विजय विमान माँहि उपजाये, हो अहमिन्द्र दिव्य सुख पाये।।
छह महीना आयुष्य रह गई, नगरि अयोध्या शोभित भई।
रत्न धनपति ने वर्षाये, माँ को सोलह स्वप्न दिखाये।।
अन्तिम गर्भ माहिं प्रभु आए, कल्याणक इन्द्रादि मनाए।
जन्मादिक के उत्सव भारी, जग प्रसिद्ध सबको सुखकारी।।
भोगों की कुछ कमी नहीं थी, परिणति फिर भी रंगी नहीं थी।
तप धर केवलज्ञान सु पाया, मंगल धर्म तीर्थ प्रगटाया।।
समवशरण की शोभा प्यारी, बारह सभा लगी सुखकारी।
गणधर इक सौ तीन विराजे, सोलह सहस्र केवली राजे।।
लाखों साधु आर्यिका सोहें, संघ चतुर्विध मन को मोहे।
महातत्त्व दर्शाया स्वामी, पाऊँ मैं भी अन्तर्यामी।।
सकल विभव तज मोक्ष पधारे, आऊँ नाथ समीप तुम्हारे।
भाव सहित अभिनन्दन करते, शाश्वत प्रभु को नित्य सुमरते।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पूजा हो सुखकार, अभिनन्दन जिनराज की।
पावें शिवपद सार, आकुलता का नाश हो।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(5) श्री सुमतिनाथ पूजन

(गीतिका)

देवेन्द्र और नरेन्द्र चरणों में सदा सिर नावते।
हर्षावते गुण गावते निज भव भ्रमण विनशावते।।
उन सुमति जिन की अर्चना को मम हृदय उमगावता।
असमर्थ हूँ अल्पज्ञ हूँ फिर भी प्रभो! गुण गावता।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-माला)

सुमति जिन पूजों हरषाई।
कुमति विनाशक सुमति प्रकाशक पूजों हरषाई।। टेक।।
भूल स्वयं को भव-भव भटक्यो, महाक्लेश पाई।
जन्म मरण नाशन को पूजों, जल से सुखदाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव आताप निवारण को, चन्दन से अधिकाई।
प्रभु के चरण जजों अविनाशी शीतलता दाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्रुव के आश्रय से हे जिनवर! ध्रुवगति प्रगटाई।
भक्तिभाव अक्षत सों पूजों, अक्षय पद दाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्योदय के सकल भोग, बिन भोगे खिर जाईं।
कामवासना ब्रह्मचर्य के बल से विनशाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भोजन सकल असार दिखे हे परम तृप्ति दाई।
अमृत झरे अहो अन्तर में, क्षुधा न उपजाई।।

सुमति जिन पूजों हरषाई।
कुमति विनाशक सुमति प्रकाशक पूजों हरषाई।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूर्य-चन्द्र भी हर न सकें, जिस तम को जिनराई।
ज्ञान ज्योति ताके नाशन को, प्रभुवर प्रगटाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ध्यान की अग्नि, कर्म नाशन को प्रज्वलाई।
स्वाभाविक दशधर्म सुगन्धी, जग में फैलाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भौतिक फल अब नहीं चाहिए, भव-भव दुखदाई।
महामोक्ष फल प्रगटाने को परम शरण पाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तर में विलसाई स्वामी, अद्‌भुत प्रभुताई।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भक्ति जिनेश्वर, उर में उमगाई।। सुमति.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-चाल)

सोलह सपने माँ देखे, वर्ते उर हर्ष विशेषे।
सावन सित दूज सुहाई, गरभागम मंगलदाई।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

सित चैत एकादशि आई, जन्मे त्रिभुवन सुखदाई।
कल्याणक इन्द्र मनावें, भवि पूजत बहु सुख पावें।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

नवमी सित वैशाख महाना, तप धारा श्री भगवाना।
पूजत पद भावना भाऊँ, निर्ग्रन्थ दशा कब पाऊँ।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लनवम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

सित चैत एकादशि आई, प्रभु केवल लक्ष्मी पाई।
सुर समवशरण रचवाया, धर्मामृत प्रभु बरसाया।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

एकादशि चैत सुदी की, पाई पंचम गति नीकी।
प्रभु सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, निर्मुक्त महापद ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- इन्द्रादिक पूजित चरण, धन्य-धन्य जिनराज।
भक्ति सहित गुण गाएँ हम, पावें सुगुण समाज।।

(छन्द-पद्धरि)

जय सुमति जिनेश्वर गुण गरिष्ट, दर्शायो निजपद परम इष्ट।
प्रभु स्वयं सिद्ध मंगल स्वरूप, बिन्मूरति चिन्मूरति अनूप।।
निरपेक्ष निरामय निर्विकार, जयवन्तो शाश्वत समयसार।
निज साधन से ही साध्य हुए, आराधन कर आराध्य हुए।।
अक्षय अनंत गुण प्रगटाये, कर्मों के बादल विघटाये।
जय दर्शन-ज्ञान अनंत देव, सुख-वीर्य अनंत हुए स्वयमेव।।
अद्‌भुत प्रभुता जिनराज अहो, महिमा है अपरम्पार प्रभो।
निष्काम स्वयं में रहे पाग, जग से निस्पृह हे वीतराग।।
निर्भूषण जग-भूषण जिनेश, नाशे प्रभु जग के सर्व क्लेश।
जब शान्त मूर्ति का अवलोकन, अनुपम स्वरूप का हो चिन्तन।।
रागादि स्वयं ही होंय मंद, हों शिथिल सहज ही कर्म बन्ध।
स्वाभाविक आनन्द स्वाद पाय, फिर परिणति निज में ही रमाय।।
नाशे पर की झूठी ममता, सब में समता निज में रमता।
परिणाम सहज अविकारी हो, मंगलमय मंगलकारी हो।।

लक्ष्मी चरणों की दासी हो, फिर भी प्रभु सहज उदासी हो।
इन्द्रादिक पद की चाह न हो, उपसर्गों की परवाह न हो।।
अन्तर्पुरुषार्थ बढ़े स्वामी, हो साधु दशा त्रिभुवननामी।
वृद्धिंगत होवे रत्नत्रय, कर्मों का होता जावे क्षय।।
रागादि दोष निःशेष होंय, प्रभु आत्मीक गुण प्रगट होंय।
यों मोक्षमार्ग का निमित्त देख, जागी उर में भक्ति विशेष।।
भक्तिवश ही गुणगान किया, पूजन करते हरषाय हिया।
तुम शासन पा परमार्थ ध्याय, पाऊँ पद अक्षय सौख्यदाय।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

कुमति विनाशक सुमति जिन, पायो सुखद सहाय।
निश्चय निज प्रभुता लहूँ, आवागमन नशाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(6) श्री पद्मप्रभ पूजन

(छन्द-अडिल्ल)

जय जय पद्म जिनेश, परम सुख रूप हो,
स्वानुभूति के निमित्त शुद्ध चिद्रूप हो।
दर्शन पाकर हुआ सहज आनन्दमय,
करूँ अर्चना रागादिक पर हो विजय।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-गीतिका)

इन्द्रादि से पूजित दरशकर, परम ज्ञान प्रकाशिया।
पानकर समता सुधा, जन्मादि का भय नाशिया।।

भव भोग तन वैराग्य धार, सु शुद्ध परिणति विस्तरूँ।
श्री पद्मप्रभ जिनराज की पूजा करूँ भव से तिरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवचन सुन निज भाव लखि, परिणाम अति शीतल भया।
चन्दन नहीं भव ताप नाशक, जान तुम आगे तज्या।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अखण्ड सुगुण करण्ड, चिदात्म देव महान है।
सो प्रभु प्रसादहिं पाइयो, जागा सहज बहुमान है।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु ज्ञानमय ब्रह्मचर्य ही है परम औषधि काम की।
तातैं जिनेश्वर शरण आया, कामना तजि वाम की।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज हेतु निज में ही निरन्तर, झरे अमृत ज्ञानमय।
ताके आस्वादत तृप्ति हो, नाशें क्षुधादिक दु:खमय।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अज्ञानतम में भटकते जो, दुख सहे कैसे कहूँ?
प्रभु भेदज्ञान प्रकाश करि, निर्मोह निज आतम लहूँ।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यानाग्नि में नाशे करम मल, आत्म शुद्ध कहाय है।
निष्कर्म अविनाशी स्वपद हो, भव भ्रमण नशि जाय है।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्त्व जिसका मूल है, चारित्र धर्म धरूँ सही।
ताके प्रभाव लहूँ सहज, ध्रुव अचल अनुपम शिव मही।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि आत्मधर्म अनर्घ्य स्वामी, अर्घ्य से पूजूँ अहो।
इन्द्रादि पद के विभव भी, निस्सार भिन्न लगें प्रभो।। भव.।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-होली)

श्री पद्मप्रभ जिनराजजी, जयवन्तो सुखकार।। टेक।।
माघ कृष्ण षष्ठी दिन आये, स्वामी गर्भ मंझार।
करें देवियाँ सेवा माँ की, वर्षे रत्न अपार।। श्री.।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को, जन्मे जग दुखहार।
जन्म महोत्सव सुरगण कीनो, घर-घर मंगलाचार।। श्री.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाति स्मरण निमित्त हुआ प्रभु लख संसार असार।
कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को दीक्षा ली अविकार।। श्री.।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कौशाम्बी वन शुक्ल-ध्यान धर, केवल लक्ष्मी सार।
पाई चैत सुदी पूनम को, त्रेसठ प्रकृति निवार।। श्री.।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहन कूट शिखर से प्रभुवर, सर्व कर्म मल टार।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन पायो शिवपद सार।। श्री.।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जयमाला जिनराज की, गाऊँ भवि सुखदाय।
पाऊँ ज्ञान-विरागता, सकल उपाधि नशाय।।

(छन्द-नाराच, तर्ज-वन्दे जिनवरं...)

पद्म के समान कान्तिमान पद्मप्रभ जिनेन्द्र,
वंदते सु भक्ति से तीन लोक के शतेन्द्र।
दिखावते असार पुण्य का विभव मनो प्रभो,
सारभूत आत्मीक ज्ञान सुख अहो अहो।।1।।

द्रव्यदृष्टि धारिके, मिथ्यात्व भाव नाशिके,
विषय कषाय त्यागि के निर्ग्रन्थ पद सु धारिके।
सार्थक किया प्रभो ! सुनाम अपराजितं,
भावना हृदय जगी सहज सोलहकारणं।। 2।।
तीर्थंकर प्रकृति बंधी आप ग्रैवेयिक गये,
गर्भ समय मात को सोल स्वप्ने भये।
जन्म समय इन्द्र ने सुमेरु पर नह्वन किया,
पद्म चिन्ह पद्मप्रभ नाम को प्रसिद्ध किया।।3।।
राज्यकाल में भी प्रभु अंतरंग उदास था,
चित्त में स्व चित्स्वरूप का ही मात्र वास था।
एक दिवस देख द्वार पर बंधे सु हस्ति को,
हुआ सु जाति स्मरण सहज प्रभो विरक्त हो।।4।।
त्याग सर्व परिग्रह साधु दीक्षा धरी,
ध्यान ऐसा किया कर्म प्रकृति हरी।
छठवें तीर्थनाथ वर्तमान के हुए,
वज्र-चामर आदि शतक गणधर हुए।। 5।।
समवशरण माहिं अंतरीक्ष मन मोहते,
अष्ट प्रातिहार्य सह अनेक विभव सोहते।
ओंकार ध्वनि खिरी तत्त्व दर्शित हुए,
आत्मबोध प्राप्त कर भव्य हर्षित हुए।।6।।
सिद्ध सम शुद्ध बुद्ध आत्मा दिखा दिया,
गुणस्थान आदि से भिन्न दर्शा दिया।
मोह आदि दु:खरूप बंध हेतू कहे,
ज्ञानमय संवरादि मुक्ति हेतू कहे।। 7।।

मुक्तिदशा साध्य, ध्येय शुद्ध आत्मा कहा,
आत्मदृष्टि धारि पूजते प्रभो! तुम्हें अहा।
साधु-संग होय प्रभु! असंग रूप ध्याऊँ मैं,
आपके प्रसाद सहज सिद्ध स्वपद पाऊँ मैं।।8।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पद्मप्रभ भगवान, लोक शिखर पर राजते।
पाऊँ आतमज्ञान, भाव सहित पूजूँ नमूँ।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(7) श्री सुपार्श्वनाथ पूजन

(रोला)

जिनवर पूजा भविजन को मंगलकारी है,
भाव विशुद्धि का निमित्त सब दु:खहारी है।
पार्श्ववर्ति लख देह शुद्ध चेतन पद ध्यावें,
श्री सुपार्श्व भगवान भाव से पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-दिग्पाल)

मुनिमन समान जल ले, जिनराज चरण पूजें।
आवागमन मिटे मम, जन्मादि दोष धूजें।।
पूजा सुपार्श्व स्वामी, ऐसी करूँ तुम्हारी।
हो तुम समान जिनवर, भावी दशा हमारी।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवताप रहित प्रभु क्या? चन्दन तुम्हें चढ़ायें।
सुनकर वचन जिनेश्वर, नाशें सभी कषायें।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अखण्ड लेकर, जिननाथ गुण विचारें।
अक्षय सुगुणमयी प्रभु, निज आत्मा निहारें।।
पूजा सुपार्श्व स्वामी, ऐसी करूँ तुम्हारी।
हो तुम समान जिनवर, भावी दशा हमारी।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ले पुष्प शीलमय जिन, होवें परम जितेन्द्रिय।
है उपादेय भासा, हमको भी सुख अतीन्द्रिय।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य सरस पाया, प्रभुता परम स्वयं में।
क्षुत् वेदना नशायें, रम जायें हम स्वयं में।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार नाशे, पावें प्रकाश अनुपम।
हे पूर्ण ज्ञानमय प्रभु, चरणों में आए हैं हम।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हों भस्म कर्म सब ही, ऐसा हो ध्यान जिनवर।
हो धर्म से सुवासित, जीवन हमारा प्रभुवर।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्त्व मूल संयुक्त चारित्र तरु लगावें।
अक्षय अनंत रसमय, मुक्ति के फल सु पावें।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्लभ सु अर्घ्य लेकर, हम भावना संवारें।
अविचल अनर्घ्य प्रभुता, निज में ही प्रभु निहारें।। पूजा.।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

गर्भागम सुखकार, भादों सुदि छठि को हुआ।
वरषे रतन अपार, सोलह सपने माँ लखे।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

द्वादशी सुदी सु ज्येष्ठ, जन्मे त्रिभुवन नाथ जी।
इन्द्र कियो अभिषेक, पाण्डुक शिला सुमेरु पै।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

आत्मीक सुखसार, लखि प्रभुवर दीक्षा धरी।
गूँजा जय जयकार, जेठ सुदी बारस दिना।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

फाल्गुन कृष्णा षष्ठि, हुए स्वयंभू नाथ जी।
हर्षमयी हुई सृष्टि, दिव्य बोध को पाय के।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णषष्ठ्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

शिखर सम्मेद महान, फाल्गुन कृष्णा सप्तमी।
प्रभु पायो निर्वाण, पूजें अति आनन्द सों।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

जयमाला

दोहा- हुए विरक्त सु जगत से, पतझड़ लख जिनदेव।
निर्ग्रन्थ पथ अपनाय के, मुक्त हुए स्वयमेव।।

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर....)

श्री सुपार्श्व जिनराज, मुक्ति पथ दरशाया।
परमानन्द स्वरूप, जिनेश्वर दरशाया।। टेक।।
द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, इन्द्रिय विषयों से प्रभु भिन्न कहा।
परम अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय, सिद्ध समान स्वरूप कहा।।
स्वानुभूत जिनमार्ग, जिनेश्वर दरशाया।। श्री सुपार्श्व...।।

द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्मों से न्यारा देव कहा।
नित्य निरंजन निष्क्रिय-ध्रुव, निर्मुक्त चिदानन्द रूप अहा।।
नयातीत पक्षातिक्रान्त प्रभु दरशाया ।। श्री सुपार्श्व...।।
जीव समास-मार्गणा-गुणथानों से, ज्ञायक भिन्न अहा।
टंकोत्कीर्ण सु अलिंगग्रहण, अव्यक्त स्वानुभव गम्य कहा।।
आश्रय करने योग्य, निजातम दरशाया।।
श्री सुपार्श्व जिनराज, मुक्ति पथ दरशाया।
परमानन्द स्वरूप, जिनेश्वर दरशाया।।
नवतत्त्वों के स्वांगों से, निरपेक्ष निरामय रूप कहा।
जिनने समझा भव दुख नाशा, नित्यानंद स्वरूप लहा।।
हेय-उपादेय भेद महेश्वर दरशाया ।। श्री सुपार्श्व...।।
रागादिक दुख रूप बताये, वीतराग शिवपंथ कहा।
परम अहिंसा से ही होता, भव भ्रमणा का अन्त अहा।।
रत्नत्रय अविकार, तुम्हीं ने दरशाया ।। श्री सुपार्श्व...।।
बहिरातमता हेय जान तज, अन्तर आतम हों स्वामी।
ध्रुव परमातम पद को साधें, तुम सम ही अन्तर्यामी।।
धन्य-धन्य शिवरूप, आपने दरशाया।। श्री सुपार्श्व...।।
जब तक आराधन पूरा हो, जिनशासन का योग मिले।
निर्मल आत्म भावना वर्ते, निज गुणमय उद्यान खिले।।
पाया स्वाश्रित मार्ग चरण में सिर नाया।। श्री सुपार्श्व...।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्री सुपार्श्व जिनराज की, भक्ति करे जो कोय।
इन्द्रादिक पद पाय के, निश्चय मुक्त सु होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(8) श्री चन्द्रप्रभ पूजन

(छन्द-जोगीरासा)

तज गृहजाल महादुखकारण, चरण शरण में आया।
चन्द्र समान शान्त निर्मल छवि, लखि आनन्द उपजाया।।
तन मन धन है सर्व समर्पण, करूँ अर्चना स्वामी।
चंचल परिणति थिर हो निज में, तुम सम त्रिभुवननामी।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-भुजंगप्रयात्, तर्ज : मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

चढ़ाऊँ क्षमाभाव मय नीर सुखकर,
नशें जन्म-मरणादि कारण सु दुखकर।
अहो चन्द्रप्रभजी की पूजा रचाऊँ,
सहजज्ञानमय भावना सहज भाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन चढ़ाऊँ परमशान्तिमय प्रभु,
भवाताप नाशे जजूँ आपको विभु।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अमल भाव-मय देव लाऊँ,
विनाशीक जग के अपद नाहिं चाहूँ।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अतीन्द्रिय निजानन्द निज माँहि सरसे,
सतावे नहीं काम जिनवर शरण से।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

चिदानन्द-सुधारस प्रभो पान करके,
क्षुधादिक महादोष क्षणमाहिं हरके।
अहो चन्द्रप्रभजी की पूजा रचाऊँ,
सहजज्ञानमय भावना सहज भाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकाशित सहज ज्ञान में नाथ ज्ञायक,
झलकते, नशें मोहतम दु:खदायक।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जलें कर्म सब आत्म-ध्यानाग्नि माहीं,
सुविकसित हों निजगुण नहीं अन्त पाहीं।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

न लौकिक फलों की प्रभो! कामना है,
महा मोक्षफल पाऊँ यह भावना है।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धरूँ भक्तिमय देव प्रासुक सु अर्घ्यं,
लहूँ आत्म प्रभुता सु अविचल अनर्घ्यं।। अहो..।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

दोहा- चन्द्रप्रभ जिनराज का, गर्भागम सुखकार।
चैत कृष्ण पंचमी दिवस, पूजों भाव सम्हार।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, जन्मे श्री जगदीश।
इन्द्रादिक उत्सव कियो, नह्वन कियो गिरिशीश।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-

अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-तन-भोगविरक्त हो, जिनदीक्षा अविकार।
धरी पौष वदि ग्यारसी, पूजों करि जयकार।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुन श्यामा सप्तमी, प्रगट्यो केवलज्ञान।
आतम महिमा मुक्तिपथ, दर्शायो भगवान।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित फाल्गुन सप्तमि गये, मुक्तिमाँहि परमेश।
पूजत पाप विनष्ट हों, धन्य-धन्य सर्वेश।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- जयवन्तो शिवभूप, अचिन्त्य महिमा के धनी।
परमानन्द स्वरूप, गाऊँ जयमाला प्रभो।।

(तर्ज-हे दीनबन्धु...)

हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! सत्य शरण हो तुम्हीं।
हे वीतराग देव! तारण-तरण हो तुम्हीं।।
कर दर्श नाथ सहज ही कृतकृत्य हो गया।
प्रभु! स्वयं स्वयं में ही सहज तृप्त हो गया।।
विभु! तेजपुंज आत्मा को आप जानके।
होकर उदास लोक से दीक्षा सु-धार के।।
ध्यानाग्नि में चहुँ घाति कर्म सहज जलाए।
अनन्त दर्श-ज्ञान-सुख-वीर्य तब पाए।।
अष्टम हुए तीर्थेश धर्मतीर्थ बताया।

ध्रुव तीर्थरूप आत्मा प्रत्यक्ष दिखाया।।
आत्मानुभूतिमय अहो परमार्थ तीर्थ है।
जिससे तिरें भवसिन्धु वह सत्यार्थ तीर्थ है।।
निजभाव में रमते सदा तुम ही सु राम हो।
निष्काम परमब्रह्म हो आनन्दधाम हो।।
परमार्थ मुक्तिमार्ग के हो आप विधाता।
विश्वेश विष्णु रूप हो सब विश्व के ज्ञाता।।
अतिशय तुम्हें जो देखते वे दर्शनीय हों।
जो भावसहित पूजते वे पूजनीय हों।।
वाँछा ही मिटे देव तुम्हारे सु ध्यान से।
हो प्रगट आत्मीकभाव आत्म-ध्यान से।।
प्रभु! ध्यानमय मुद्रा सहज वैराग्य जगाती।
रागांश हों निश्शेष ज्ञान ज्योति जगाती।।
चैतन्यमय परमार्थ भावना सहज रहे।
भवनाश हो शिववास हो दुर्भावना दहे।।
गद्-गद् हुआ बहुमान से, बस मौन ही रहूँ।
नाथ हो निर्ग्रन्थ तेरा पन्थ मैं गहूँ।।
तेरे प्रसाद से सहज समाधि पाऊँगा।
ज्ञाता हूँ मुक्त ज्ञाता रूप ही रहाऊँगा।।

(छन्द-घत्ता)

श्रीचन्द्र जिनेशं, जय जगदीशं, धर्मेशं भवसर-तारी।
अद्भुत प्रभुतामय, हुआ सु निर्भय, पूजत पद मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

समयसारमय आपकी, प्रभुता तिहुँ जग सार।
विस्मय उपजावे प्रभो, भुक्ति मुक्ति दातार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(9) श्री पुष्पदंत पूजन

(गीतिका)

अक्षय सु आतम निधि बताई, प्राप्ति की भी विधि प्रभो।
है सार्थक यह नाम भी जिन, सुविधिनाथ कहा अहो।।
सौभाग्य से अवसर मिला, पूजा करूँ अति चाव से।
हे पुष्पदंत जिनेन्द्र! बस, छूटूँ विकारी भाव से।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अडिल्ल)

निर्मल जल ले, पूजूँ प्रभु हरषाय के।
जन्म जरा मृत नाशूँ निजपद ध्याय के।।
पुष्पदंत जिनराज करूँ गुणगान मैं।
होय प्रतिष्ठित सहज ज्ञान ही ज्ञान में।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्ति भावमय चन्दन ले पूजा करूँ।
नाशे ताप कषायों का समता धरूँ।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजूँ निर्मल अक्षत से जिननाथ जी।
पाऊँ उत्तम धर्मी जन का साथ जी।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिव्य पुष्प ले भाऊँ जिनवर भावना।
विषयों की हो स्वप्न माहिं भी चाह ना।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

लख झूठे नैवेद्य, असार तजूँ प्रभो।
पीऊँ सन्तोषामृत तुम सम ही विभो।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज रतन रुचि दीप उजालूँ देव जी।
मोह महातम नशे सहज स्वयमेव जी।।
पुष्पदंत जिनराज करूँ गुणगान मैं।
होय प्रतिष्ठित सहज ज्ञान ही ज्ञान में।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त-रौद्र तज आत्म ध्यान धारूँ अहो।
जरें कर्ममल निजगुण विस्तारूँ प्रभो।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पाप फल सकल जिनेश्वर त्यागकर।
पाऊँ जिनवर मुक्तिफल आनन्दकर।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भावमय अर्घ्य धरूँ आनन्द से।
पद अनर्घ्य हो बचूँ कर्म के फन्द से।। पुष्पदंत.।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-चौपाई)

नवमी फागुन वदी सुहाई, गर्भ कल्याणक अति सुखदाई।
सेवे मात देवि सुखकारी, पूजूँ जिनवर मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णनवम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मगसिर सुदि एकम दिन आया, इन्द्र जन्मकल्याण मनाया।
उत्सव नाना भाँति रचाई, मैं भी पूजूँ त्रिभुवन राई।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदायां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इक दिन उल्कापात हुआ था, अन्तर में वैराग्य हुआ था।
भाय भावना दीक्षाधारी, मगसिर सुदि एकम् सुखकारी।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदायां तपोमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान प्रभु ऐसा धारा, नाशे घाति कर्म दुखकारा।
कार्तिक शुक्ला द्वितीया स्वामी, धर्मतीर्थ प्रकटा अभिरामी।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वितीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुप्रभ टोंक सम्मेद महाना, आप पधारे अविचल थाना।
भादों सुदि अष्टमि सुखकारा, पूजत होवे हर्ष अपारा।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्ल-अष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- तीर्थंकर नवमें प्रभो! अद्भुत महिमावंत।
शाश्वत् धर्म बताइया, रहे सदा जयवन्त।।

(छन्द-पद्धरि)

हे पुष्पदंत, हे सुविधिनाथ, दर्शन पाकर मैं हूँ सनाथ।
जिनराज भजूँ निज भाव सजूँ, परमानंदमय चिद्रूप भजूँ।।
हे तेजपुंज हे धर्ममूर्ति! हे ज्ञानपुंज चैतन्यमूर्ति।
मंगलमय लोकोत्तम स्वरूप, भविजन को तुम ही शरणरूप।।
नाशे कर्माश्रित सब विभाव, प्रगटे स्वाश्रित आतम स्वभाव।
तुम दिव्यध्वनि सुन जगे ज्ञान, आतम-अनात्म की हो पिछान।।
पर्यायदृष्टि छूटे जिनन्द, प्रगटे अनुभव रस दुख निकन्द।
दु:ख कारण रागादिक दिखाय, पुरुषार्थ तिन्हें नाशन जगाय।।
वैराग्य भावना सहज होय, क्षण-क्षण में निज शुद्धात्म जोय।
निर्ग्रन्थ मार्ग में बढ़े जाएँ, तुम सम अक्षय पदवी सु पाएँ।।
यों मुक्तिमार्ग के निमित्त आप, भव्यों के नाशो प्रभु संताप।
हे परम धरम दातार देव, चरणों में शीश नमें स्वयमेव।।
जो पूजे सो जगपूज्य होय, आपद ताको आवे न कोय।
तुम ढिंग वांछा ही प्रभु नशाय, निज में ही अद्भुत तृप्ति पाय।।
इन्द्रादिक पूजें चरण आन, अद्भुत अतिशय जिनवर महान।
ऐसी प्रभुता मैं भी सु पाय, तिष्ठूँ जिनेश तुम पास आय।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पुष्पदंत भगवान, तीन लोक चूड़ामणि।
होय सकल कल्याण, जिन पूजा परसादतैं।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(10) श्री शीतलनाथ पूजन

(छन्द–अडिल्ल)

कल्पवृक्ष शुभ चिह्न सुदेव मनोज्ञ है।
कल्पवृक्ष नहिं तुम उपमा के योग्य है।।
अविचल सुख दातार सहज ज्ञातार हो।
हृदय विराजो प्रभो! परम उपकार हो।।

(दोहा)

जय जय शीतलनाथ जिन, मिथ्या तपन नशाय।
परम जितेन्द्रिय भाव सों, पूजें मंगलदाय।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द–द्रुतविलम्बित)

सहज समकित जल प्रभु धारिके, जन्म मरण कुरोग निवारिके।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जगनायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय जन्म–जरा–मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावनामय चन्दन लायके, दुःखमय भवताप नशायिके।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज संयम धारें सुखकरं, अखय पद को पावें जिनवरं।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय–अक्षयपदप्राप्तये–अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पंच इन्द्रिय भोग विडारिके, भजें नित निष्काम विचारिके।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-कामबाणविध्वंसनाय-पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम हुये निजरस लीन हो, क्षुधा तृष्णा सहजहिं क्षीण हो।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह नाशा सम्यक्ज्ञान से, क्या प्रयोजन दीपक भानु से?
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परम आतम ध्यान लगायिके, लहें निजपद कर्म नशायिके।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्ग प्रभुवर का अहो हम अनुसरें, पाप-पुण्य नशें शिवफल लहें।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धरें अर्घ्य जिनेश्वर चरण में, तज प्रपंच सु आये शरण में।
परम आनन्दमय शिव दायकं, जजें शीतल जिन जग नायकं।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

चैत्र कृष्ण अष्टमि दिन देव, अच्युत से च्युत हो स्वयमेव।
मात सुनन्दा उर अवतरे, गर्भ कल्याणक सुख विस्तरे।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाष्टम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ कृष्ण द्वादश जिनराय, अन्तिम जन्म भयो सुखदाय।
जन्मकल्याणक पूजा करें, यही भाव फिर जन्म न धरें।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वैभव यौवन इन्द्रिय-भोग, इन्द्रधनुष सम लखे मनोग।
माघ कृष्ण द्वादशि दिन नाथ, धारी दीक्षा नावें माथ।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वामी पौष चतुर्दशि श्याम, केवलज्ञान लह्यो अभिराम।
शोभें समवशरण के माँहि, दर्शन से भवि पाप नशाहिं।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टमि सित असौज-भगवान, पायो अविचल पद निर्वाण।
भाव सहित हम शीश नवाएँ, ज्ञाता दृष्टा रह शिव पाएँ।।

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- सहज शांत शीतल रहें, शीतल चरण प्रसाद।
गावें जयमाला सुखद, नाशें सर्व विषाद।।

(छन्द-त्रोटक)

श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र नमूँ, निजतत्त्व समझ दुर्मोह वमूँ।
ज्ञायक हूँ सहज प्रतीति हो, आनन्दमय निज अनुभूति हो।।
पर में एकत्व ममत्व न हो, सपने में भी कर्तृत्व न हो।
परिणमन सहज होता भासे, ज्ञातृत्व सहज ही प्रतिभासे।।
कुछ इष्ट-अनिष्ट विकल्प न हो, दुखमय मिथ्या संकल्प न हो।
दुख कारण आस्रव बंध नशें, संवर निर्जर सुखमय विलसें।।
यों तत्त्व प्रतीति नाथ धरें, प्रभु साक्षी में भव सिन्धु तरें।
निर्ग्रंथ भावना भावत हैं, अविनाशी निजपद चाहत हैं।।
विनशत मुक्ता सम ओस बिन्दु निरखी, प्रातः तुमने जिनेन्द्र।
तत्क्षण संसार असार तजा, आनन्दमय आतम रूप सजा।।
वस्त्राभूषण सब त्याग दिये, निर्मम होकर कचलौंच किये।
जिनयोग अपूर्व लगाया था, दुष्कर्म समूह नशाया था।।
अद्‌भुत निज वैभव प्रगटाया, सुर समवशरण था रचवाया।

हुई दिव्य देशना सारभूत, भविजन को शुभ कल्याणभूत।।
लाखों प्राणी प्रतिबुद्ध हुए, तद्भव से भी बहु मुक्त हुए।
यों दशवें तीर्थंकर सु होय, सब कर्म नाशि गये सिद्ध लोय।।
ज्यों सिद्धालय में आप बसे, त्यों देहालय शुद्धात्म लसे।
हम ध्यावें मंगलकार प्रभो, वर्तें नित जाननहार विभो।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पूजा श्री जिनराज, भक्ति-युक्ति युत जो करें।
पावें सिद्ध समाज, सब संक्लेश निवारिकें।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(11) श्री श्रेयांसनाथ पूजन

(रोला)

श्रेय रूप ग्यारहवें तीर्थंकर पहिचाने।
अहो अकर्त्ता दृष्टा ज्ञाता सहज प्रमाने।।
जागा भाग्य हमारा, प्रभुवर पूज रचावें।
निजानन्द निज माँहि, आप सम हम भी पावें।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-त्रिभंगी)

प्रभु देह उपजती देह विनशती, अविनाशी है शुद्धातम।
यह भेद जानकर निज अनुभव कर, पूजें ध्यावें परमातम।।
श्रेयांस जिनेन्द्रं इन्द्र नरेन्द्रं, पूजत अन्तर्दृष्टि धरें।
तिहुँ जग ज्ञातारं शिवदातारं, प्रभु चरणों में नमन करें।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु चन्दन बावन, ताप मिटावन, भवाताप नहीं दूर करे।
या सम नहीं दूजा, श्री जिन पूजा, सहज सर्व संताप हरे।।
श्रेयांस जिनेन्द्रं, इन्द्र नरेन्द्रं, पूजत अन्तर्दृष्टि धरें।
तिहुँ जग ज्ञातारं, शिवदातारं, प्रभु चरणों में नमन करें।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षतभाव दुखारी, हे त्रिपुरारी, त्याग अखण्डित भाव धरें।
अक्षय सुखरूपं, मुक्त स्वरूपं, अक्षत ले प्रभु पूज करें।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को भोगा, इच्छा रोगा, त्यों-त्यों अधिक बढ़ा स्वामी।
प्रभु शील बढ़ावें, काम नशावें, शिवपद पावें जगनामी।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज सुधबुध खोकर जिस वश होकर, खाद्य अखाद्य सभी खाया।
सो क्षुधा नशावें तृप्त रहावें, निज में प्रभु सम मन भाया।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु भ्रम तम नाशे, ज्ञान प्रकाशे, तातैं प्रभुवर चरण जजें।
निर्मोह रहावें, ज्ञान बढ़ावें, सहज परम निज भाव भजें।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु कर्म महावन,भूलि रहे हम, शिव मारग नहिं मन भाया।
निज ध्येय सु ध्यावें, कर्म नशावें, परम धरम प्रभु से पाया।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन कर्मों के फल हुए सु व्याकुल, सो फल प्रभुवर नहिं चाहें।
सब सिद्धि प्रदाता शिवफलदाता, धर्म कल्पतरु प्रगटाएँ।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले द्रव्य सु अर्घ्यं, भाव अनर्घ्यं, आनन्द सों जिनवर पूजें।
श्रद्धान जगाया, भाव बढ़ाया, भव-भव के पातक धूजें।। श्रेयांस.।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

विमला माँ को स्वप्न दिखाये, पुष्पोत्तर तजकर प्रभु आये।
जेठ श्याम षष्ठी सुखकारी, जिन पद पूजें मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुन कृष्ण एकादशि आई, जन्मे अनुपम मंगलदायी।
क्षीरोदधि तें जल भर लावें, सुरपति प्रभु अभिषेक करावें।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विषय-कषाय असार विचारे, हो निर्ग्रन्थ परम तप धारे।
फाल्गुन श्याम एकादशि स्वामी, भाव सहित हम शीश नमामी।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्लध्यान धरि घाति नशाये, अनन्त चतुष्टय प्रभु प्रगटाये।
माघ अमावस आनन्दकारी, पूजत होवें शिवमगचारी।।

ॐ ह्रीं माघकृष्णामावस्यायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा जिनवर, मुक्ति पधारे सकल कर्म-हर।
इन्द्र मोक्ष कल्याण मनावें, भक्ति सहित प्रभु पूज रचावें।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लपूर्णिमायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

श्रेय रूप श्रेयांस जिन, परम श्रेय दर्शाय।
आप बसे शिव लोक में, भक्ति करूँ सुखदाय।।

(छन्द-सरसी)

नलिनप्रभ राजा के भव में रत्नत्रय प्रकटाकर।

तीर्थंकर प्रकृति बांधी थी, सोलहकारण भाकर।।
आयु पूर्णकर साधु समाधि पूर्वक छोड़ी देह।
स्वर्ग सोलवें इन्द्र हुए थे भावें सदा विदेह।।
तहँतैं चयकर सिंहपुरी में लिया प्रभु अवतार।
दिव्योत्सव करते इन्द्रादिक देखत दृष्टि हजार।।
मति-श्रुत अवधिज्ञान के धारक जन्म समय से आप।
अतिशय रूप निरखते नाशें भव-भव के संताप।।
पुण्योदय के भोग भोगते अन्तर रहे उदास।
पतझड़ के तरु देखे इक दिन काल लगा गृहवास।।
भायी प्रभु वैराग्य भावना, लौकान्तिक सुर आय।
अनुमोदन करते प्रभुवर का, चरणों में सिर नाय।।
सहज भाव से दीक्षा लीनी, हुए नाथ निर्ग्रन्थ।
तप कल्याणक देव मनावें, आप बढ़े शिवपन्थ।।
आत्म ध्यान से अल्पकाल में प्रगटा केवलज्ञान।
समवशरण में दिव्य ध्वनि से दिया तत्त्व का ज्ञान।।
धर्म तीर्थ की कर प्रभावना, गये नाथ निर्वाण।
धर्म तीर्थ जिनवर का पाकर किया स्व-पर कल्याण।।
भाव सहित प्रभु पूजन करके, उपजा उर आनन्द।
सहज भावना होवे स्वामी, रहूँ परम निर्द्वन्द्व।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

सर्व सिद्धि दातार, वीतराग सर्वज्ञ जिन।
सहज लहें भवपार, अनुगामी हो आप के।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(12) श्री वासुपूज्य पूजन

(सवैया तेईसा, तर्ज : वीर हिमाचल तें...)

बालयती वसुपूज्य तनय, प्रभु वासव सेवित त्रिभुवननामी।
बारहवें तीर्थंकर हो, संयुक्त सुगुण छियालीस अभिरामी।।
मुक्तिमार्ग मिला भविजन को, दिव्यध्वनि द्वारा हे स्वामी।
भाव भये शुभ पूजन के, तिष्ठो उर में हे अन्तरयामी।।

(दोहा)

हर्षित हो पूजूँ चरण, चिंतूँ गुण अभिराम।
आराधूँ परमात्म पद, पाऊँ शाश्वत धाम।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-गीतिका)

निज आत्मतीर्थ सु पाइया, समतामयी जल जहाँ भरा।
मिथ्यात्व मल छूट्यो प्रभो! स्नान करि निर्मल भया।।
श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की, पूजा करूँ अति चाव सों।
आनन्दमय ब्रह्मचर्य वर्ते, नाथ! सहज स्वभाव सों।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ताप नाशा देव! शीतलता स्वयं में ही मिली।
आराधना की युक्ति पाई, सहज निज परिणति खिली।। श्री वासुपूज्य. ।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अबाधित ज्ञानमय, चैतन्यप्रभु पाया अहो।
तुष बिना तन्दुल सम अमल, अक्षय स्व-पद आधार हो।। श्री वासुपूज्य. ।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु! तुम गुणों की पुष्पमाला, कंठ में धारण करूँ।
निष्काम ब्रह्म स्वरूप ध्याऊँ, अब्रह्म परिणति परिहरूँ।।
श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की, पूजा करूँ अति चाव सों।
आनन्दमय ब्रह्मचर्य वर्ते, नाथ! सहज स्वभाव सों।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म अनुभव के समान, न रस दिखे तिहुँलोक में।
ताके आस्वादी क्षुधादिक, नाशे बसे शिवलोक में।। श्री वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य ज्योति सु जगमगे, मोहान्धकार नहीं रहे।
फिर बाह्य दीपक भी सहज निस्सार मुझको भी लगे।। श्री वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्दमय आराधना से, ध्यान की अग्नि जले।
निज सुगुण विलसें सर्व वैभाविक करम ईंधन जले।। श्री वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तिहूँ लोक पूजित सिद्धपद, आराधना का फल महा।
यह जानकर लौकिक फलों का भाव नहिं किंचित् रहा।। श्री वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्भेद निरघ सु अर्घ्य लेकर, ज्ञानमय आनन्दमय।
मैं अर्चना करता प्रभु, निर्द्वन्द्व पद पाऊँ अभय।। श्री वासुपूज्य.।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-द्रुत विलम्बित)

होय च्युत महाशुक्र विमान से, आये विजया माता गर्भ में।
षाढ़ कृष्णा षष्टिमी थी सही, धनि हुई चम्पापुर की मही।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्दशि फागुन की श्याम है, जन्म अन्तिम प्रभु अभिराम है।
किया था अभिषेक सुमेरू पर, पुण्यशाली इन्द्रों ने आनंद कर।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्याह अवसर पर प्रभु वैराग्य धरि, भव शरीर कुभोग असार लखि।
चतुर्दशि फागुन कलि शुभ घड़ी, अहो मुनिपद की सहज दीक्षा धरी।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्लध्यान महान लगाइया, ज्ञान केवल जिनवर पाइया।
दिव्यध्वनि भई मंगलकार है, दूज माघ शुक्ल की सुखकार है।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वितीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्दशी सित भादौं की सही, लही प्रभुवर ने अहो अष्टम मही।
तीर्थ चम्पापुर महा सुखदाय है, अर्घ ले जजिहौं सहज शिवदाय है।।

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- इन्द्रादिक पूजैं चरण, महाभक्ति उर धार।
गावें जयमाला प्रभो! आतमनिधि दातार।।

(चौपाई)

जय जय वासुपूज्य भगवान, गुण अनन्त मंगलमय जान।
भरि यौवन में सहज विराग, भोगों प्रति उपज्या नहिं राग।।
निज में प्रमुदित बाह्य उदास, आत्म साधना का उल्लास।
जगत विभव किंचित् न सुहाय, तत्त्व विचार करें सुखदाय।।
शुद्धातम ही जग में सार, अविनाशी सुख का आधार।
इन्द्रिय सुख तो दुख के मूल, फल में उपजें भव-भव शूल।।
संसारी निज ज्ञान विहीन, इन्द्रिय मद मेटन बलहीन।

विषय चाह उपजावे दाह, भोगन में भूलें शिवराह।।
आत्मज्ञान बिन शरण न कोय, व्यर्थ मोह में क्लेशित होय।
अब विलम्ब करना नहीं जोग, धरूँ शीघ्र शिवदाता योग।।
सब विधि अवसर मिलो महान, जीतूँ कर्म लहूँ निर्वान।
दृढ़ विराग उपजा सुखदाय, तत्क्षण लौकान्तिक सुर आय।।
अनुमोदन कर शीश नवाय, धन्य विचार कियो जिनराय।
दीक्षा धरो प्रभो! अविकार, भायें भावना हम हूँ सार।।
इन्द्रादिक आये हर्षाय, प्रभु को तपकल्याण मनाय।
उत्सव सों प्रभु वन में गये, वस्त्राभूषण सब तजि दये।।
पंच मुष्ठि कचलौंच कराय, निर्ग्रन्थ रूप धर्‌यो सुखदाय।
आत्म ध्यान की धुनी लगाय, एक वर्ष छद्मस्थ रहाय।।
चढ़े क्षपक श्रेणी सुखकार, प्रगट्यो अर्हत् पद अविकार।
भविजन को शिवराह दिखाय, सिद्धालय में तिष्ठे जाय।।
ज्ञान माहिं हे देव निहार, करें अर्चना मंगलकार।
प्रभु चरणों में शीस नवाय, अद्‌भुत परमानन्द विलसाय।।

(छन्द-घत्ता)

प्रभु अमल अनूपं शुद्ध चिद्रूपं, सहजानंदमय राजत हो।
निष्काम जिनेश्वर, जजूँ महेश्वर, शिव मारग विस्तारत हो।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

बाल ब्रह्मचारी प्रभो! वासुपूज्य जिनराज।
करि सम्यक् आराधना, पाऊँ निजपद राज।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(13) श्री विमलनाथ पूजन

(चौपाई)

जय-जय विमलनाथ भगवान, भक्ति सहित करता आह्वान्।
मेरे हृदय विराजो देव, आराधूँ निजपद स्वयमेव।।

(दोहा)

कम्पिल नगरी जन्म से, हुई जगत विख्यात।
कृतवर्मा प्रभु के पिता, जय-जय श्यामा मात।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चाल होली)

प्रभु पूजों भाव सों, श्री विमलनाथ जिनराय जी पूजों भाव सों।। टेक।।
प्रासुक समतामय जल लीनों, अन्तर्दृष्टि लाय।
यही भावना प्रभु प्रसाद से, जन्म मरण मिट जाय।।प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम क्षमा भावमय चन्दन, भव आताप मिटाय।
प्रभु चरणों में मैंने पाया, आनन्द उर न समाय।।प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में भोग संयोग विभव सब, विनाशीक दुखदाय।
अक्षय पद का आराधन कर, अक्षय प्रभुता पाय।।प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामदाह अति ही दुखदायक, महा अनर्थ कराय।
ताको नाशि लहूँ तुम सम ही, ब्रह्मचर्य सुखदाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा भाव मिटे हे स्वामी, भव-भव में दुखदाय।
सन्तोषामृत पिऊँ निरन्तर, तुम समान जिनराय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान का हुआ उजाला, मिथ्या तिमिर नशाय।
अविरल ज्ञान भावना भाऊँ, केवलि पद प्रगटाय।।
प्रभु पूजों भाव सों, श्री विमलनाथ जिनराय जी पूजों भाव सों।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज तत्त्व का सहज ध्यान हो, कर्म समूह नशाय।
जगत पूज्य निष्कर्म निरंजन, सिद्ध स्वपद प्रगटाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप-पुण्य के फल में प्राणी, भव-भव में भरमाय।
शुद्ध भाव से अहो जिनेश्वर, सहज मोक्ष फल पाय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

विमल अर्घ्य ले प्रभु चरणों में, आऊँ अति हर्षाय।
ज्ञानानन्दमय निज अनर्घ्यपद, पाऊँ हे शिवराय।। प्रभु.।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-सखी)

गर्भागम मंगल गाये, नभ से सु रतन वर्षाये।
कलि जेठ सु दशमी जानो, प्रभु पूजत चित हुलसानो।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णदशम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदि माघ चतुर्थी आई, जन्मे जिन आनन्ददायी।
भयो मेरु न्हवन सुखकारी, पूजत प्रभु पद अविकारी।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदि माघ चतुर्थी प्यारी, मुनिपद की दीक्षा धारी।
इन्द्रादिक उत्सव कीनो, सुनि आनन्द होय नवीनो।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदि माघ छटी दिन आयो, अरहंत परमपद पायो।
कैवल्यलक्ष्मी पाई, हमको शिव राह दिखाई।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लषष्ठ्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि षाढ़ अष्टमी पावन, कर आवागमन निवारण।
निर्वाण महाफल पाया, हम पूजत शीश नवाया।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णअष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- तेरहवें तीर्थेश, विमल विमल पद देत हैं।
परम पूज्य सर्वेश, अनन्त चतुष्टय रूप जिन।।

(तर्ज: पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा...)

गाऊँ जयमाल जिनराज आनन्द सौं,
छूटि हौं दु:खमय कर्म के फन्द सौं।
मोहवश मैं अनादि से भ्रमता रहा,
नाथ कैसे कहूँ जो महादु:ख सहा।।
परम सौभाग्य से नाथ दर्शन हुआ,
जैनवाणी सुनी तत्त्वनिर्णय हुआ।
है त्रिविध कर्ममल शून्य शुद्धात्मा,
ज्ञान-आनन्दमय सहज परमात्मा।।
नित्य निरपेक्ष निर्द्वन्द्व निर्मल अहो,
सहज स्वाधीन निर्लेप ज्ञायक प्रभो।
जानकर नाथ आदेय आनन्द हुआ,
मोहतम मिट गया आत्म अनुभव हुआ।।
जागा बहुमान उर में अहो आपका,
भेद जाना धरम-कर्म पुण्य-पाप का।
आपकी स्तुति देव कैसे करूँ?

गुण अनन्ते विभो! चित्त माहीं धरूँ।।
आप ही लोक में सत्य परमेश्वरं,
वीतरागी सु सर्वज्ञ तीर्थंकरं।
आपको जग से वैराग्य जब था हुआ,
देव लौकान्तिकों ने सुमोदन किया।।
परम उल्लास से नाथ संयम धरा,
घातिया घात कर ज्ञान केवल वरा।
जग को दर्शाय ध्रुव शुद्ध परमात्मा,
हो गये आप निष्कर्म सिद्धात्मा।।
भाव पंचम परम पारिणामिक महा,
करके आराधना आप शिवपद लहा।
धन्य हो! धन्य हो!! परम उपकारी हो,
भावमय वंदना देव! अविकारी हो।।
ध्याऊँ निज देव को पाऊँ जिनदेव पद,
इन्द्र चक्री के पद जिसके सन्मुख अपद।
कामना वासना अन्य कुछ ना रही,
सहज कृत-कृत्य ज्ञायक रहूँगा सही।।

(छन्द-घत्ता)

जय विमल जिनेशं, हरत कलेशं नमत सुरेशं सुखकारी।
जो पूजें ध्यावें, मोह नशावें, पावें पद मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द-अडिल्ल)

जयवन्तो जिनराज, जगत में नित्य ही।
तुम प्रसाद भवि पावें, बोधि समाधि ही।।
वीतराग जिनधर्म सु, मंगलकार है।
भाव सहित जे धरें, लहें भव पार है।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(14) श्री अनन्तनाथ पूजन

(वीरछन्द)

जय अनन्त भगवन्त संत प्रभु, तारण तरण जिहाज हो।
विषय-कषाय इन्द्रियाँ जीतीं, भावरूप जिनराज हो।।
निज प्रभुता अनन्त दरशाई, मोह अंधेरा दूर भगा।
अनन्त चतुष्टय रूप महेश्वर, पूजन का उल्लास जगा।।

(दोहा)

प्रभुवर की पूजा करें, रोम-रोम हुलसाय।
निज प्रभुता पावें प्रभो, यही भाव उमगाय।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(तर्ज : पाँचों मेरु असि जिनधाम)

समता भाव सहज सुखकार, जन्म मरण दुःख नाशनहार।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।।
जय जय अनन्तनाथ भगवन्त, गुण अनन्त अनुपम शोभन्त।। महासुख... ।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित शीतलता का मूल, सहज नशे भव-भव की शूल।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ... ।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के पद क्षत् रूप लखाय, अक्षय पद निज में विलसाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ... ।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जीते काम सुभट जिनराय, धारें ब्रह्मचर्य हुलसाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ... ।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रस में तृप्त रहाय, क्षुधा तृषा सहजहिं विनशाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।।
जय जय अनन्तनाथ भगवन्त, गुण अनन्त अनुपम शोभन्त।। महासुख...।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज स्वभाव उद्योत कराय, सम्यग्ज्ञान प्रकाश लहाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ...।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान की अग्नि जलाय, सर्व विभाव सहज नशि जाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ...।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

साधन शुद्ध उपयोग बनाय, साध्य रूप शिवफल प्रगटाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ...।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु को पाकर हुए सनाथ, पावें निज अनर्घ्यपद नाथ।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय।। जय-जय अनन्तनाथ...।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

कार्तिक कृष्णा एकम् के दिन, गरभ माहिं आये तुम हे जिन।
पन्द्रह मास रत्न थे बरसे, मात-पिता नर नारी हरषे।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सकल सृष्टि अति ही हरषाई, सिंहसेन गृह बजी बधाई।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशि दिन जन्मे, मेरु नह्वन कीनो सुरपति ने।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उल्कापात देखकर स्वामी, धरि वैराग्य हुए शिवगामी।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशि सुखकार, वन में गूँजा जय-जयकार।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक मास धरि प्रतिमा योग, जये कर्म धरि ध्यान मनोज्ञ।
चैत अमावस केवल पाय, भाव सहित हम अर्घ्य चढ़ाय।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायांज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत अमावस लह्यो निर्वाण, जय-जय अनन्तनाथ भगवान।
अचल सिद्धपद वन्दें सार, ध्यावें समयसार अविकार।।

ॐ ह्रीं चैतकृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- अनन्तनाथ भगवान, जयवन्तो मम हृदय में।
करूँ प्रभो! गुण गान, भाव विशुद्धि के लिए।।

(छन्द-पद्धरि)

भव भ्रमण मूल मिथ्यात्व नाश, पाया प्रभुवर आतम प्रकाश।
जग विभव-विभाव असार त्याग, निर्ग्रन्थ मार्ग में चित्त पाग।।
साधा जिनवर शुद्धोपयोग, मुनि मुद्रा मन मोहे मनोग।
प्रभु मौन निजानन्द लीन हुए, निर्द्वन्द्व सहज स्वाधीन हुए।।
बिन काम दाह नहीं अक्ष भोग, नहीं राग द्वेष नहीं रोग शोक।
पर परिणति सों अत्यन्त भिन्न, निज रस में तृप्त रहें अखिन्न।।
धरि ध्यान क्षपक श्रेणी चढ़ाय, प्रभु घाति कर्म सहजहिं नशाय।
तब केवलज्ञान हुआ सुखकर, किया समवशरण धनपति आकर।।
भवि भागन वश खिरी दिव्य-ध्वनि, हरषे सब ज्ञानी और मुनि।
शुद्धात्म तत्त्व ही कहा सार, ध्रुव एक शुद्ध वर्जित विकार।।
हम अनुभव करि कीना प्रमान, पाया प्रभुवर सत्यार्थ ज्ञान।
जीते रागादिक सकल क्लेश, आरम्भ परिग्रह तजि अशेष।।
धारें निर्ग्रन्थ स्वरूप देव, यह भाव भयो स्वामी स्वयमेव।

वृद्धिंगत हो पुरुषार्थ नाथ, पामरता का होवे विनाश।।
जग में तुम ही हो सत्य शरण, प्रभु परम हितैषी मोह हरण।
हो परम धरम आराध्य सार, निज सम करि कारण दुर्निवार।।
प्रभु पद वंदूँ मैं बार-बार, अविकारी आनन्दरूप धार।
तुम चरण प्रसाद लहूँ अनन्त, अपनी अक्षय प्रभुता महन्त।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अहो अनन्त जिनेश को, नित पूजें मनलाय।
इन्द्रादिक से पूज्य हो, निश्चय शिवपद पाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(15) श्री धर्मनाथ पूजन

(गीतिका)

हे प्रभो! शिवमार्ग पाया, भविजनों ने आप से।
आपका दर्शन हुआ, प्रभुवर परम सौभाग्य से।।
भक्ति से पूरित हृदय गुणगान को उद्यत हुआ।
बहुमान से पूजा करूँ, निजनाथ के सन्मुख हुआ।।

(दोहा)

पूजूँ धर्म जिनेश को, भाव विशुद्धि धार।
प्रभु सम प्रभु अन्तर निरख, भक्ति करूँ अविकार।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

सहज शुद्ध आतम नहिं जाना, मोह मलिनता नहिं जानी।
बाह्य मलिनता जल से धोई, धर्म रीति नहिं पहिचानी।।
मोह मलिनता को हरने अब, शुद्ध आत्मा को ध्याऊँ।
धर्मनाथ प्रभु की पूजा कर, परमधर्म निज में पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दनादि से शीतलता की, आशा में भरमाया था।
प्रभु गुण चिन्तन रूपी चंदन, नहीं क्रोधवश पाया था।।
अब भवाताप विनशाने को, भव रहित आत्मा को ध्याऊँ।
धर्मनाथ प्रभु की पूजा कर, परमधर्म निज में पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद नहिं पहिचाना, अक्षय वैभव नहिं पाया था।
अपद्भूत इन्द्रादि पदों में, सुख समझा ललचाया था।।
अक्षय अविकारी सुख पाने, ध्रुव रूप आत्मा को ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम निजानन्द नहिं जाना, भोगों में चित्त लुभाया था।
अनुकूल भोग सामग्री पा, इतराया शील नशाया था।।
अब परम शील सुख पाने को, चिद्रूप आत्मा को ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि बिना, स्वाभाविक तृप्ति न पाई थी।
रे! क्षुधा रोग से पीड़ित हो, जो वस्तु मिली सब खाई थी।।
अविनाशी आनन्द पाने को, परिपूर्ण आत्मा को ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटकाया, भव-भव में स्वामिन् दुखी हुआ।
निज निधि अवलोकन कर न सका, भव-भव में जन्मा और मुआ।।
अब सम्यग्ज्ञान प्रकाश मिला, चैतन्य आत्मा को ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नि में खेय दशांग धूप, जग में जो धुआँ उड़ाते हैं।
नहिं इससे कर्म नष्ट होते, बहुते प्राणी मर जाते हैं।।
अब कर्म नशाऊँ ध्यानानल में, ध्येय आत्मा को ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पुण्य-पाप के फल पाकर, रति अरति करें प्राणी जग के।
पर पुण्य-पाप को सहज त्याग, ज्ञानी साधक हों शिवमग के।।
अविनाशी शिवफल पाने को, निर्मुक्त आत्मा को ध्याऊँ।
धर्मनाथ प्रभु की पूजा कर, परमधर्म निज में पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुबार चढ़ाया द्रव्य अर्घ्य, पर प्रभु स्वरूप से रहा विमुख।
कुछ नहीं मूल्य है द्रव्य अर्घ्य का, निज अनर्घ्य पद के सन्मुख।।
अविचल अनर्घ्य पद पाने को, अब अनुपम शुद्धातम ध्याऊँ।। धर्म. ।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(रोला)

गर्भागम जिनराज आपका मंगलकारी,
पन्द्रह माह रत्नवर्षा होवे सुखकारी।
अष्टमि सित वैशाख गर्भ कल्याण मनाया,
पूजत तुम्हें जिनेश महा आनन्द उपजाया।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाष्टम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुक्ल तेरस के दिन जन्मे अविकारी,
मेरु शिखर अभिषेक और उत्सव सुखकारी।
इन्द्रादिक ने किये, भक्ति कर मैं हर्षाऊँ,
जन्म-मरण की सन्तति नाशे यह वर पाऊँ।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उल्कापात निहार विरागी हुए जिनेश्वर,
हुए माघ सित तेरस को निर्ग्रन्थ मुनीश्वर।
धन्यसेन नृप धन्य प्रथम आहार कराया,
हुए पंच-आश्चर्य हर्ष जन-जन में छाया।।

ॐ ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लगभग एक वर्ष मुनिपद में निजपद भाया,
रत्नपुरी दीक्षावन आकर ध्यान लगाया।
पौष शुक्ल पूनम दिन घाति कर्म नशाये,
समवशरण अरु अतिशय अन्य सहज प्रगटाये।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्मेदशिखर पर कर्म कलंक निवारे,
प्रभो चतुर्थी जेठ सुदी निर्वाण पधारे।
मुक्त स्वरूप विचार आपकी पूज रचाऊँ,
सम्यक् आराधन द्वारा निर्वाण सुपाऊँ।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

जयमाला सुखकार, गाऊँ अति आनन्द सों।
भाव रहे अविकार, भव-भव के बन्धन नशें।।

(तर्ज-अहो जगत गुरु देव.....)

धर्मनाथ जिनराज, परम धरम दर्शाया,
रत्नत्रय अविकार, शिवपुर पंथ दिखाया।
प्रभो! प्रयोजनभूत, सप्त तत्त्व प्रगटाये,
उपादेय निज भाव, हेय अन्य सब गाये।।
निजदृष्टि निज ज्ञान, अहो लीनता निज में,
निज आश्रय से नाथ, सहज बढ़े शिवमग में।
निज अनुभव रस कूप, शिवपद मूल जिनेश्वर,

तुमरे चरण प्रसाद, जाना हे परमेश्वर।।
त्रिभुवन मंगलकार, प्रभुवर धर्म तुम्हारा,
मिला हमें अविकार, जागा भाग्य हमारा।
पंचकल्याणक देव, सुरगण आय मनावें,
तीन लोक के जीव, सहजहिं साता पावें।।
निकट भव्य तो नाथ, लख सम्यक् प्रगटावें,
निर्मोही हो नाथ, शिवमारग में धावें।
दर्शन कर मुनिनाथ, मुक्त स्वरूप दिखावे,
पूजत तुम्हें जिनेश, मुक्ति समीप सु आवे।।
स्व-पर विवेक जगाय, देव ! गुणों का चिन्तन,
चाह दाह विनशाय, होय धर्म आकिंचन।
धूल समान दिखाँय, जग के वैभव सारे,
पर पद आपद रूप, भोग भुजंग से कारे।।
भक्ति कर जिनदेव, यही भावना भाऊँ,
प्रभो ! आप सम होय, अपनी प्रभुता पाऊँ।
तव पद मम उर माहिं, मम उर तुम चरणन में,
तब लौं लीन रहाय, थिरता होवे निज में।।

(छन्त-घत्ता)

श्री धर्म जिनेश्वर हे परमेश्वर, जजत मुनीश्वर सुखकारी।
मैं भी प्रभु ध्याऊँ, कर्म नशाऊँ, शिवपद पाऊँ अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूजत धर्म जिनेश को, सर्व क्लेश विनशाय।
अक्षय निज सम्पत्ति मिले, सिद्ध स्वपद प्रगटाय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(16) श्री शान्तिनाथ पूजन

(गीतिका)

चक्रवर्ती पाँचवें अरू, कामदेव सु बारहवें।
इन्द्रादि से पूजित हुए, तीर्थेश जिनवर सोलहवें।।
तिहुँलोक में कल्याणमय, निर्ग्रन्थ मारग आपका।
बहुमान से पूजन निमित्त, स्वरूप चिन्तें आपका।।

(सोरठा)

चरणों शीश नवाय, भक्तिभाव से पूजते।
प्रासुक द्रव्य सुहाय, उपजे परमानन्द प्रभु।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-बसन्ततिलका)

प्रभु के प्रसाद अपना ध्रुवरूप जाना।
जन्मादि दोष नाशें हो आत्मध्याना।।
श्री शान्तिनाथ प्रभु की पूजा रचाऊँ।
सुख शान्ति सहज स्वामी निज माहिं पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जाना स्वरूप शीतल उद्योतमाना।
भव ताप सर्व नाशे हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय विभव प्रभु सम निज माहिं जाना।
अक्षय स्वपद सु पाऊँ हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम ब्रह्मरूपं निज आत्म जाना।
दुर्दान्त काम नाशे हो आत्मध्याना।।
श्री शान्तिनाथ प्रभु की पूजा रचाऊँ।
सुख शान्ति सहज स्वामी निज माहिं पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परिपूर्ण तृप्त ज्ञाता निजभाव जाना।
नाशें क्षुधादि क्षण में हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मोह ज्ञानमय ज्ञायकरूप जाना।
कैवल्य सहज प्रगटे हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्कर्म निर्विकारी चिद्रूप जाना।
भव-हेतु-कर्म नाशें हो आत्मध्याना।।श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय-अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्बन्ध मुक्त अपना शुद्धात्म जाना।
प्रगटे सु मोक्ष सुखमय हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अविचल अनर्घ्य प्रभुतामय रूप जाना।
विलसे अनर्घ्य आनन्द हो आत्मध्याना।। श्री शान्तिनाथ.।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

दोहा- भादौ कृष्णा सप्तमी, तजि सर्वार्थ विमान।
ऐरा माँ के गर्भ में, आए श्री भगवान।।

ॐ ह्रीं भादवकृष्णासप्तम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय-

अनर्घ्यपदप्राप्तये- अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णा जेठ चतुर्दशी, गजपुर जन्मे ईश।
करि अभिषेक सुमेरु पर, इन्द्र झुकावें शीश।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सारभूत निर्ग्रन्थ पद, जगत असार विचार।
कृष्णा जेठ चतुर्दशी, दीक्षा ली हितकार।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये - अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान में नशि गये, घातिकर्म दुखदान।
पौष शुक्ल दशमी दिना, प्रगटो केवलज्ञान।।

ॐ ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये- अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जेठ कृष्ण चौदशि दिना, भये सिद्ध भगवान।
भाव सहित प्रभु पूजते, होवे सुख अम्लान।।

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये - अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(चौपाई)

जय जय शान्तिनाथ जिनराजा, गाऊँ जयमाला सुखकाजा।
जिनवर धर्म सु मंगलकारी, आनन्दकारी भवदधितारी।।

(छन्द-लावनी)

प्रभु शान्तिनाथ लख शान्त स्वरूप तुम्हारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। टेक।।
हे वीतराग सर्वज्ञ परम उपकारी,

अद्भुत महिमा मैंने प्रत्यक्ष निहारी।
जो द्रव्य और गुण-पर्यय से प्रभु जानें,
वे जानें आत्मस्वरूप मोह को हानें।।
विनशें भव बन्धन हो सुख अपरम्पारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। 1।।
हे देव! क्रोध बिन कर्म शत्रु किम् मारा?
बिन राग भव्य जीवों को कैसे तारा?
निर्ग्रन्थ अकिंचन हो त्रिलोक के स्वामी,
हो निजानन्दरस भोगी योगी नामी।।
अद्भुत, निर्मल है सहज चरित्र तुम्हारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। 2।।
सर्वार्थसिद्धि से आ परमार्थ सु साधा,
हो कामदेव निष्काम तत्त्व आराधा।
तजि चक्र सुदर्शन, धर्मचक्र को पाया,
कल्याणमयी जिनधर्म तीर्थ प्रगटाया।।
अनुपम प्रभुता माहात्म्य विश्व से न्यारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। 3।।
गुणगान करूँ हे नाथ आपका कैसे?
हे ज्ञानमूर्ति! हो आप आप ही जैसे।
हो निर्विकल्प निर्ग्रन्थ निजातम ध्याऊँ,
परभावशून्य शिवरूप परमपद पाऊँ।।
अद्वैत नमन हो प्रभो सहज अविकारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। 4।।
कुछ रहा न भेद विकल्प पूज्य पूजक का,

उपजे न द्वन्द्व दु:खरूप साध्य साधक का।
ज्ञाता हूँ ज्ञातारूप असंग रहूँगा,
पर की न आस निज में ही तृप्त रहूँगा।।
स्व भाव स्वयं को होवे मंगलकारा,
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा।। 5।।

(छन्द-घत्ता)

जय शान्ति जिनेन्द्रं, आनन्दकन्दं, नाथ निरंजन कुमतिहरा।
जो प्रभु गुणगावें, पाप मिटावें, पावें आतमज्ञान वरा।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भक्तिभाव से जो जजें, जिनवर चरण पुनीत।
वे रत्नत्रय प्रगटकर, लहें मुक्ति नवनीत।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(17) श्री कुन्थुनाथ पूजन

(दोहा)

कामदेव होकर प्रभो! किया काम निर्मूल।
चक्रवर्ती पद सम्पदा, समझी तुमने धूल।।
निर्ग्रन्थ पद आराधकर, धर्म तीर्थ प्रगटाय।
हुए मुक्त श्री कुन्थु प्रभु, पूजूँ प्रीति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

अन्तर साम्यभाव धारण कर, जल जिन चरणों में लाऊँ।

जन्म-जरा-मृत दोष नाशने, अविनाशी निज पद ध्याऊँ।।
कुन्थुनाथ की पूजा करते, हृदय हर्षित होता है।
भक्ति भाव से प्रभु गुण गाते, आनन्द विलसित होता है।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज भाव से शान्त भाव से, चन्दन नाथ चढ़ाता हूँ।
क्रोधादिक संताप मेटने, आत्म भावना भाता हूँ।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल अक्षत जिनवर सन्मुख, सविनय आज चढ़ाता हूँ।
क्षत् भावों से उदासीन हो, अक्षय पद को ध्याता हूँ।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम्हें नाथ निष्काम निरखकर, प्रासुक पुष्प चढ़ाता हूँ।
कामभाव को निष्फल करने, ब्रह्म भावना भाता हूँ।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

देव! स्वयं में तृप्त तुम्हें लख, यह नैवेद्य चढ़ाता हूँ।
क्षुधा वेदना हरने को, परिपूर्ण भावना भाता हूँ।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोकालोक प्रकाशक हो प्रभु, फिर भी दीप चढ़ाता हूँ।
मोह अंधेरा दूर भगाने, ज्ञान भावना भाता हूँ।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धन्य प्रभो! निष्कर्म अवस्था, मेरे मन को भाई है।
वैभाविक दुष्कर्म जलाने, ध्यान अग्नि प्रगटाई है।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम जैसा अविनाशी फल, पाने को चित ललचाया है।
प्रासुक फल ले भक्त हृदय प्रभु, चरण शरण में आया है।।कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु अनर्घ्य वैभव लख, मेरा रोम-रोम पुलकाया है।

ऐसा पद प्रगटाने स्वामी, सविनय अर्घ्य चढ़ाया है।। कुन्थु.।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(वीरछन्द)

तजि विमान सवार्थसिद्धि प्रभु, गर्भ विषैं आये सुखकार।
श्रावण कृष्णा दशमी के दिन, पूजूँ जिनवर मंगलकार।।

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णदशम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकम सुदि वैशाख सु पावन, हुई बधाई मंगलकार।
अन्तिम जन्म हुआ हे स्वामी, पूजें हरि करि उत्सव सार।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नगरी की शोभा को लखते, जागा उर वैराग्य महान।
धनि एकम वैशाख सुदी को, पद निर्ग्रन्थ लिया अम्लान।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां तपोमंगलमण्डिताय श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवल पायो चैत सुदी तृतीया को घातिकर्म चकचूर।
अद्भुत समवशरण की शोभा, धर्म प्रभाव हुआ भरपूर।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लतृतीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

टोंक ज्ञानधर से शिव पायो, सुदि एकम वैशाख दिना।
हरि निर्वाण महोत्सव कीनो, पूजूँ मन-वच-काय बिना।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- परम अहिंसा धर्म का, दिया सत्य उपदेश।
निजानन्द में मग्न हो, गाऊँ सुयश जिनेश।।

(तर्ज-दिन रात मेरे स्वामी....)

आया शरण तुम्हारी, हे कुन्थुनाथ जिनवर।
आतम निधि सुपाऊँ, पुरुषार्थ जागे प्रभुवर।। टेक।।
जब से स्वरूप देखा, नहीं और कुछ सुहावे।
ज्यों मीन जल बिना त्यों, मम चित्त छटपटावे।।
निजपद की भावना है, तुम सम ही होऊँ सत्वर।। आतम.।।

प्रभु चक्रवर्ती पद को, तृण के समान छोड़ा।
होकर परम जितेन्द्रिय, विषयों से मुख को मोड़ा।।
भव जाल से विरत हो, हुए सहज दिगम्बर।
आतम निधि सुपाऊँ, पुरुषार्थ जागे प्रभुवर।।
धनि धर्ममित्र श्रावक, आहार प्रथम दीना।
निज आत्म भावना से, मुक्ती का मार्ग लीना।।
सुर हर्ष प्रगट कीना, पंचाश्चर्य प्रगट कर।। आतम..।।
एकाग्र हुए स्वामी, निज भाव थे निहारे।
फिर क्षपक श्रेणि चढ़कर, घाती करम संहारे।।
प्रगटा अनंत चतुष्टय, हुए अरहंत सुखकर।। आतम..।।
दश जन्म के थे अतिशय, कैवल्य के हुए दश।
देवों ने कीने चौदह, थे प्रातिहार्य भी अठ।।
धनपति ने भक्ति कीनी, विभु समवशरण रचकर।। आतम..।।
प्रभु दिव्य ध्वनि के द्वारा, सन्मार्ग था बताया।
तत्त्वों का मार्ग सुनकर, भव्यों ने बोध पाया।।
जिनमार्ग पर चलूँ मैं, निर्भय निःशंक होकर।। आतम..।।
अनुपम है प्रभुता प्रभु की, अद्भुत है महिमा प्रभु की।
वचनों से कैसे गावें? हम स्तुति सु प्रभु की।।
हो ज्ञान में प्रतिष्ठित बस ज्ञान ही जिनेश्वर।। आतम..।।
चिन्मूर्ति हो विराजे, ज्यों मुक्ति में हे स्वामी।
ध्रुव अचल ऋद्धि पाई, विश्वेश त्रिजगनामी।।
सो भावना मैं भाऊँ, चरणों में शीस धरकर।। आतम..।।

(छन्द-घत्ता)

प्रभु के गुण गावें, मुनिजन ध्यावें, शुद्धातम में लीन भये।
रागादि विनाशे, ज्ञान प्रकाशे, कर्म महारिपु सहज जये।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा - पूजा कुन्थु जिनेश की, नित नव मंगलकार।

जग प्रपंच से काढ़िकै, रत्नत्रय दातार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(18) श्री अरनाथ पूजन

(छन्द-लावनी)

अरनाथ जिनेश्वर, दुर्लभ दर्शन पाया।
हे जगत पूज्य! पूजा का भाव जगाया।।
मदनेश्वर, चक्री, तीर्थंकर पद धारी।
मम हृदय पधारो, भाव रहें अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(दोहा)

जन्म-जरा-मृत नाशि के, हुए प्रगट भगवान।
प्रभु समान शुद्धात्मा, अविनाशी पहिचान।।
सहज भक्ति उर धारि के, पूजूँ अर जिनराय।
ध्याऊँ ध्रुव परमात्मा, परमानन्द विलसाय।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवाताप नाशक सुतप, कियो जिनेश्वर देव।
मिटती भक्ति प्रसाद से, चाह दाह स्वयमेव।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत के कारण घातिया, आत्म ध्यान से नाश।
अक्षय गुणमय आत्मा, किया विभो परकाश।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

आर्तध्यान के हेतु हैं, रौद्र ध्यानमय भोग।
उत्तम शील प्रकाशकर, कीनो पूरण योग।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस में संतुष्ट हो, क्षुधा वेदनी टाल।
सो रस निज में ही झरे, पीवत होय निहाल।।
सहज भक्ति उर धारि के, पूजूँ अर जिनराय।
ध्याऊँ ध्रुव परमात्मा, परमानन्द विलसाय।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय आत्मा, भासा तत्त्व महान।
मोहादिक विध्वंस कर, पाया केवलज्ञान।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मेन्धन को भस्म कर, धर्म सुगन्ध सुदेय।
तीन लोक पूजित हुए, दिव्य धूप मैं लेय।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म प्रकृति त्रेसठ तजी, पच्चासी फिर नाशि।
महामोक्षफल प्रभु लहो, गुण अनन्त की राशि।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनर्घ्य प्रभुता अहो! प्रगटाई जिननाथ।
सो प्रभुता अन्तर लखी, अर्घ्य लेय हे नाथ।। सहज.।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(तर्ज : भावना रथ पर चढ़ जाऊँ...)

पंचकल्याणक मनहारी-2, भव्यों के कल्याण निमित्त यह उत्सव सुखकारी।।टेक।।

पन्द्रह मास रतन शुभ वर्षे, आनन्द भयो भारी।
फाल्गुन शुक्ला तीज हुआ, गर्भागम सुखकारी।। पंचकल्याणक.।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लतृतीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

मगसिर सुदी चतुर्दशि गजपुर, जन्मे जगतारी।
मेरु शिखर पर इन्द्रादिक, अभिषेक कियो भारी।। पंचकल्याणक.।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

मगसिर शुक्ला दशमी को, निर्ग्रन्थ दशा धारी।

समता रस की धार बहाई, नित्यानन्दकारी।। पंचकल्याणक. ।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

कार्तिक शुक्ला द्वादशि को लहि, केवल अविकारी।

धर्मतीर्थ का किया प्रवर्तन, सबको हितकारी।। पंचकल्याणक. ।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

कृष्णा चैत अमावस्या को, बन्ध दशा टारी।

नित्य निरंजन शिवपद पायो, अक्षय अविकारी।। पंचकल्याणक. ।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णामावस्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- धर्म शस्य हित मेघ सम, श्री अरनाथ महान।
गाऊँ जयमाला प्रभो, परमानन्द की खान।।

(छन्द-भुजंगप्रयात, तर्ज : मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक....)

प्रभो आपको पूजते हर्ष भारी,
स्वयं की विभूति स्वयं में निहारी।
अहो नाथ! तुमसे तुम्हीं हो दिखाते,
महानन्दमय पद तुम्हीं तो बताते।।
महामोहतम प्रभु तुम्हीं तो नशाते,
सहज ज्ञानमय ज्योति तुम ही जलाते।
सुगम मोक्षमारग तुम्हीं प्रभु दिखाते,
सरस ज्ञान गंगा तुम्हीं हो बहाते।।
विषयों के फन्दे से तुम ही छुड़ाते,
चतुर्गति दुःखों से तुम्हीं तो बचाते।
परम ज्ञान वैराग्य तुम ही जगाते,
निर्ग्रन्थ पथ में तुम्हीं प्रभु बढ़ाते।।

हो निरपेक्ष बान्धव तुम्हीं साँचे जग में,
तुम्हीं मार्गदर्शक अहो मोक्ष मग में।
हुआ मैं निशंकित तुम्हारे वचन से,
परम सौख्य पाया स्वयं अनुभवन से।।
कहाँ तक कहूँ नाथ महिमा तुम्हारी?
न शब्दों में शक्ति प्रभो! इतनी धारी।
चिन्तन तुम्हारा नहीं पार पावे,
अहो स्वानुभव में न आनंद समावे।।
खिला पुण्य मेरा, मिला दर्श तेरा,
यही भावना होय वन माहिं डेरा।
हो निर्ग्रन्थ मुद्रा महासुःखकारी,
सहज ध्यान में कर्म नाशे विकारी।।
नहीं कामना कोई निष्काम वर्तूं,
परम समरसी भाव निर्मान वर्तूं।
नहीं क्षोभ आवे परम शांत वर्तूं,
निर्द्वन्द्व निर्मूढ़ निर्भ्रान्त वर्तूं।।
विशुद्धि जिनेश्वर सु बढ़ती ही जावे,
परम भाव में वृत्ति रमती ही जावे।
प्रभो आप सम ही परम लीनता हो,
परम मुक्तता हो, परम पूर्णता हो।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

निज कल्याण स्वरूप, धर्मचक्र के अर प्रभो।

पूजूँ हे शिवभूप! होवें मंगल नित नये।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(19) श्री मल्लिनाथ पूजन

(छन्द-अडिल्ल)

मल्लिनाथ जिनराज, परम आदर्श हो।
भविजन को सुखदाय, आपका दर्श हो।।
देव आप सम ब्रह्मचर्य वर्ते सदा।
पूजूँ तुम्हें जिनेश, हर्ष उर में महा।।

(दोहा)

परम जितेन्द्रिय जिन हुए, काम सुभट को जीत।
स्वाभाविक आनंद की, जागी सहज प्रतीति।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-अवतार)

जल जाना प्रभु निस्सार, चरणन माहिं तजूँ।
तुमसम ही हे जिनराज, अव्यय भाव सजूँ।।
हे बालयती तीर्थेश, नित प्रति शिर नाऊँ।
हे मल्लिनाथ जिनराज, शाश्वत पद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु चन्दनादि निस्सार, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, शीतल शांत रहूँ।।हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् रूप विभाव असार, चरणन माहिं तजूँ।

तुम सम ही हे जिनराज, अक्षय सौख्य लहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय-अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु काम भोग निस्सार, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, ब्रह्म विलास भजूँ।।
हे बालयती तीर्थेश, नित प्रति शिर नाऊँ।
हे मल्लिनाथ जिनराज, शाश्वत पद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निस्सार बाह्य नैवेद्य, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, तृप्त सदैव रहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीपक प्रभु निस्सार, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, नित निर्मोह रहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखरूप नहीं जड़ धूप, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, नित निष्कर्म रहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लौकिक फल सर्व असार, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, मुक्त सदैव रहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु बाह्य विभव निस्सार, चरणन माहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, विभव अनर्घ्य लहूँ।। हे बालयती.।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

करे जगत कल्याण, गर्भागम भी आपका।

हो भवभय से त्राण, भाव सहित पूजूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लप्रतिपदायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म समय इन्द्रादि, कीना नह्वन सुमेरु पर।
जन्मोत्सव कर याद, आनन्द धरि पूजूँ प्रभो।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लेकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्याह समय वैराग, धारि हृदय दीक्षा लही।
निज स्वरूप में पाग, कर्म नाश उद्यम किया।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवलज्ञान सुपाय, धर्म तीर्थ प्रगटाइयो।
निश्चय शिव-सुखदाय, पूजूँ अति उल्लास सौं।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णद्वितीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्वकर्म मल जारि, अविनाशी शिवपद लह्यो।
मुक्त स्वरूप निहार, प्रभु निश्चय पूजा करूँ।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लपंचम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जयमाला जिनराज की, गाऊँ मंगल रूप।
कर स्मरण चरित्र प्रभु, ध्याऊँ शुद्ध चिद्रूप।।

(चौपाई)

जय जय मल्लिनाथ भगवान, जिनमुद्रा लखकर अम्लान।
आनन्द मेरे उर न समाय, तन का रोम-रोम पुलकाय।।
महिमा प्रभु की कही न जाय, प्रभु भक्ति वाचाल कराय।
परम ब्रह्म परमात्म स्वरूप, तुम गुण तिहुँ जगमाहिं अनूप।।
जम्बूद्वीप विदेह मँझार, नृपति वैश्रवण चित्त उदार।
मुनि सुगुप्ति के दर्शन किए, रत्नत्रय व्रत सहजहिं लिए।।

इक दिन वन विहार के काल, देखा वट का वृक्ष विशाल।
किन्तु लौटते समय विनष्ट, देख हुआ था चित्त विरक्त।।
दीक्षा ले भायीं सुखकार, भावना सोलह कारण सार।
किया प्रकृति तीर्थंकर बंध, कर समाधि हुए अहमिन्द्र।।
मिथिला नगरी राजा कुम्भ, प्रजावती रानी अतिरम्य।
अपराजित विमान तें सार, आये ताके गर्भ मंझार।।
नाना उत्सव देव सु किये, धन्य घड़ी प्रभु जन्मत भये।
हुआ सुमेरु पर अभिषेक, दर्शन से प्रभु जगे विवेक।।
अद्भुत क्रीड़ाएं सुखकार, करते बढ़ते भये कुमार।
शादी को जब चली बरात, लख शोभा प्रभु हुए उदास।।
हुआ जाति स्मरण सु ज्ञान, दीक्षा हेतु किया प्रस्थान।
धिक्-धिक् कह त्यागे जड़भोग, आराधा निजरूप मनोग।।
छह दिन में लहि केवलज्ञान, धर्मतीर्थ प्रगटा अम्लान।
समवशरण में शोभें आप, भविजन के नाशें संताप।।
एक मास पहले जिनराज, सम्बल कूट सु आय विराज।
करके योग निरोध महान, पायो अविचल पद निर्वाण।।
भाव सहित पूजत जिनदेव, तत्त्वज्ञान जागे स्वयमेव।
विचरूँ मैं भी प्रभु के पंथ, पाऊँ दशा परम निर्ग्रन्थ।।

(छन्द-घत्ता)

जय मल्लि जिनेन्द्रं, आनन्द कन्दं, चिदानन्दमय चित्त धरूँ।
तज जग जंजालं, सुगुण विशालं, प्रभु समान ही प्रगट करूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय-अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

प्रभु पूजा सुखकार, हर्षित हो नित प्रति करूँ।

पाऊँ निज पद सार, अन्य न कोई कामना।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(20) श्री मुनिसुव्रतनाथ पूजन

(गीतिका)

मुनिनाथ त्रिभुवननाथ पूजित, मुनिसुव्रत प्रभु को नमूँ।
जिन भक्तिमय धरि भाव निर्मल, मोह मायादिक वमूँ।।
मम हृदय में आओ विराजो, हर्ष से पूजन करूँ।
निर्भेद हो, निरखेद हो, निर्मुक्त प्रभुता विस्तरूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चौपाई)

आत्म तीर्थ जल से अविकारी, भाव सहित पूजूँ त्रिपुरारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप विनाशन हारी, चन्दन से पूजूँ उपकारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय अबाधित पद धारी, अक्षत से पूजें अविकारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्ममय रूप सु ध्याऊँ, काम वासना दूर भगाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजरस आस्वादी हो स्वामी, नाशूँ क्षुधा महादुखदानी।

मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर ज्ञानमय ज्योति जगाऊँ, मोह महातम सहज मिटाऊँ।

मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, उर्ध्वगमन से शिवपुर जाऊँ।

मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सभी पुण्य फल हेय लखाऊँ, निर्वांछक हो शिवफल पाऊँ।

मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य भाव मय अर्घ्य चढ़ाऊँ, पद अनर्घ्य प्रभु सम प्रगटाऊँ।

मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनि व्रत धारूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-अडिल्ल)

श्रावण कृष्णा दूज गर्भ आए प्रभो, सोलह सपने माँ को दिखलाए विभो।
करें देवियाँ सेव मात की चाव सों, हम हूँ पूजें जिनवर भक्ति भाव सों।।

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि वैशाख वदी दशमी अति पावनी, जन्मकल्याणक की थी छटा सुहावनी।
मेरु शिखर पर इन्द्र प्रभु को ले गयो, किया महा-अभिषेक जगत आनन्द भयो।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णदशम्यां जन्ममंगलमण्डितायश्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लख गजराज प्रसंग विरक्ति मन धरी, ली हरिवंश शिरोमणि! दीक्षा शिवकरी।

तिथि वैशाख वदी दशमी सुखकार थी, मुनिसुव्रत की गूँजी जय-जयकार थी।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि वैशाख वदी नवमी चित थिर कियो, क्षपक श्रेणि चढ़ घाति नाशि केवल लियो।
दिव्यध्वनि सुन भव्य अनेक सु तिर गये, पूजत अहो जिनेश भाव सम्यक् भये।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णनवम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्जर टोंक शिखर सम्मेद तें शिव गये, फाल्गुन कृष्णा बारस सिद्धालय ठये।
परम मुक्त शुद्धात्म स्वरूप दिखाइया, हे प्रभु हमहूँ पावें भाव जगाइया।।

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णद्वादशम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जीते अन्तर शत्रु प्रभु, इन्द्रिय विषय-कषाय।
मुनिव्रत धरि शिवपद लह्यो, मुनिसुव्रत जिनराय।।

(वीरछन्द)

पूजा करके भक्ति करते, मुनिसुव्रत भगवान की।
यही भावना प्रभु सम पावें, पदवी हम निर्वाण की।।
देखो प्रभु ने सहज भाव से, दुर्लभ रत्नत्रय धारा।
जगत प्रपंच तजे दुखकारी, मुनि दीक्षा को स्वीकारा।।
सभी जीव दुःखों से छूटें, पावें आतम ज्ञान को।
पाप-पुण्य की बेड़ी टूटें, धारें आतमध्यान को।।
जब ही ऐसे भाव जगे थे, प्रकृति बँधी तीर्थंकर की।
हुए पंचकल्याणक मण्डित, जय हो जगत हितंकर की।।
सोमा-नन्दन कर्म निकन्दन, धर्मतीर्थ जो प्रगटाया।
महाभाग्य हमने भी पाया, महानन्द उर में छाया।।
मोह अंधेरा दूर हुआ है, वस्तु स्वभाव धर्म भासा।
जीव-अजीव भिन्न दिखलावें, दुखकारण आश्रव नाशा।।

संवर पूर्वक होय निर्जरा, कर्म बंध तड़ तड़ टूटें।
धन्य परम निर्मुक्त दशा हो, पर-सम्बन्ध सभी छूटें।।
तृप्त स्वयं में मग्न स्वयं में, काल अनंत रहें अविकार।
यही भावना सहज पूर्ण हो, और चाह नहिं रही लगार।।
करें अनुसरण प्रभो आपका, आराधन निज आतम का।
हुआ सहज विश्वास मुनीश्वर, पद पाऊँ परमातम का।।

(छन्द-घत्ता)

अनुपम गुणधारी हे अविकारी, मुनिसुव्रत जिनशरण लही।
रत्नत्रय पाऊँ मंगल गाऊँ, जाऊँ अष्टम मुक्ति मही।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पूजा श्री जिनराज, महाभाग भविजन करें।
पावें सिद्ध समाज, तीन लोक में पूज्य हों।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(21) श्री नमिनाथ पूजन

(छन्द-पद्धरि)

नमिनाथ जजूँ जिननाथ भजूँ, मिथ्या संकल्प-विकल्प तजूँ।
ये ही शिवसुख का कारण है, निजभाव सजूँ निजभाव भजूँ।।
अति पुण्योदय जागा स्वामिन्, बहुमान आपका आया है।
पूजन करते ज्ञानानन्द सागर, अन्तर में उछलाया है।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-चाल)

सम्यक् जल ले अविकारी, पूजूँ चैतन्य विहारी।

नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, जन्मादिक दोष नशाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वांछक चन्दन पाऊँ, प्रभु चाह दाह विनशाऊँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, धर्मामृत धार बहाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत्-अक्षत भेद विचारूँ, विचिकित्सा दोष विडारूँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, अक्षत से पूज रचाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु प्रासुक पुष्प चढ़ाऊँ, परिणति निज माहिं लगाऊँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, निष्काम भावना भाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म परम-रस स्वादी, नाशो मम क्षुधा कुव्याधी।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, प्रासुक नैवेद्य चढ़ाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार नहिं भावे, ताको अज्ञान नशावे।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, प्रभु सम केवल प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु ध्यान अग्नि प्रजलाई, कर्मों की धूल उड़ाई।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, वात्सल्य भाव प्रगटाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वैभाविक फल विनशाया, प्रभु धर्म प्रभाव बढ़ाया।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, जिन मुक्ति महाफल पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टांग अर्घ्य ले स्वामी, पूजूँ मैं अन्तर्यामी।

नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, अविचल अनर्घ्य पद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(वीरछन्द)

आश्विन कृष्णा द्वितीया के दिन, शुभ गर्भ विषैं प्रभुवर आए।
अभिनन्दन मात-पिता का कर, देवों ने रत्न सु वर्षाये।।

ॐ ह्रीं आश्विनकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

दसवीं अषाढ़ श्यामा के दिन, मंगलमय अन्तिम जन्म लिया।
नरकों में भी साता आई, देवों ने उत्सव आन किया।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णदशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

दो देवों ने आ नमन किया, अपराजित प्रभु वृत्तान्त कहा।
तब जातिस्मरण हुआ सुखमय, कलिषाढ़ दशैं तप आप लहा।।

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शुद्धातम रस में लीन हुए, तब चार घाति चकचूर किए।
मगसिर सित एकादशि स्वामी, केवलज्ञानी अरहंत हुए।।

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लेकादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

है टोंक मित्रधर सुखकारी, सम्मेदशिखर से सिद्ध हुए।
वैशाख कृष्ण चौदश के दिन, प्रभु आवागमन विमुक्त हुए।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- भाव सहित पूजा करी, गाऊँ अब जयमाल।
परिणति अन्तर में ढले, होऊँ सहज निहाल।।

(छन्द-रोला)

जयवन्तो नमिनाथ विश्व के जाननहारे।
जयवन्तो नमिनाथ दोष रागादि निवारे।।

जयवन्तो नमिनाथ मोहतम नाशन हारे।
जयवन्तो नमिनाथ भवोदधि तारण हारे।।
चरण परस से भूमि जगत में तीर्थ कहाई।
भाव विशुद्धि की निमित्त सबको सुखदाई।।
ध्यान-द्वार से मम परिणति में निवसो स्वामी।
रत्नत्रयमय भाव-तीर्थ प्रगटे जगनामी।।
परमानन्दमय नाथ भाग्य से तुमको पाया।
भव-भव का संताप सर्व ही सहज पलाया।।
भेदज्ञान की ज्योति जगी गुण चिन्तत प्रभुजी।
आत्मज्ञान की कला खिली, अन्तर में जिनजी।।
निज प्रभुता में मग्न नाथ जग प्रभुता पाई।
हुई विभूति समवशरण की मंगलदाई।।
दिव्य-ध्वनि से दिव्य-तत्त्व प्रभुवर दर्शाया।
सम्यक् सरल सरस शिवपथ जिनवर दर्शाया।।
निर्मोही हो नाथ आपका मारग पाऊँ।
आप रहो आदर्श मुक्तिमारग में धाऊँ।।
राग-द्वेष मय वैभाविक परिणति मिट जावे।
रहूँ परम निर्मुक्त स्वपद प्रभु सम प्रगटावे।।
वचनातीत स्वरूप वचन में कैसे आवे।
चिन्तन भी प्रभु महिमा का कुछ पार न पावे।।
अहो! स्वानुभवगम्य नाथ को निज में ध्याऊँ।
प्रभु पूजा के निमित्त सहज पुरुषार्थ बढ़ाऊँ।।

(छन्द-घत्ता)

धनि-धनि नमिनाथा, नावें माथा, इन्द्रादिक तव चरणों में।
भव दुःख नशाऊँ, ध्यान बढ़ाऊँ, शिव सुख पाऊँ चरणों में।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करें करावें मोद धर, पूजा श्री जिनराज।

स्वर्गादिक सुख पायके, पावें शिवपद राज।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(22) श्री नेमिनाथ पूजन

(रोला)

नेमिनाथ जिनराज, दर्शकर चित हुलसाया,
ज्ञानानन्दमय देव! सहज निजपद दरशाया।
लख अनुपम वैराग्य आपका त्रिभुवननामी,
जगा सहज बहुमान विराजो हृदय स्वामी।।

(दोहा)

बाल ब्रह्मचारी प्रभो, अद्‌भुत प्रभुतावान।
पूजें हर्ष विभोर हो, भाव सहित भगवान।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

ज्ञानसरोवर का सम्यक् जल, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
जन्म-जरा-मृत नाश करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।।
धन्य-धन्य नेमीश्वर स्वामी, बालयती हो शिवपद पाय।
आतम-निधि दातार जिनेश्वर, भाव यही निजपद प्रगटाय।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दाह निकन्दन शीतल चन्दन, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
सहज भाव शीतल नित वर्ते, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य..।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंडित अनुपम अक्षत, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
निज अक्षय पद प्राप्त करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य..।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म वृक्ष के पुष्प शीलमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।

काम व्यथा निर्मूल करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य.. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस पूरित व्यंजन सुखमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
नाश करन को दोष क्षुधादि, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।।
धन्य-धन्य नेमीश्वर स्वामी, बालयती हो शिवपद पाय।
आतम-निधि दातार जिनेश्वर, भाव यही निजपद प्रगटाय।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्न दीप सुन्दर सुज्ञानमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
मोह तिमिर के नाश करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य.. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो गंध दशधर्ममयी मैं, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
अष्ट कर्म निर्मूल करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य.. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रासुक फल मैं सहज भावमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
महामोक्ष फल प्राप्त करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य.. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य सु अनुपम जिनभक्तिमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
अविनाशी अनर्घ्य पद पाऊँ, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय।। धन्य.. ।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-भुजंगप्रयात) (तर्ज : मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक....)

कार्तिक सुदी षष्ठमि गर्भ माँहि, आए प्रभो सर्व जन सुखपाहीं।
वर्षे रतनराशि महिमा अपारी, करें देवियाँ मातु सेवा सुखारी।।

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण सुदी षष्ठमि सुखकारी, जन्में जिनेश्वर जग दु:खहारी।
इन्द्रादि ने जन्म-अभिषेक कीना, करें भावना जन्म हो ना नवीना।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तजो ब्याह को स्वाँग दीक्षा सु धारी, अभयरूप निर्ग्रन्थ वृत्ति सँभारी।
छटी श्रावणी सित जजों नाथ चरणं, दिखे विश्व में धर्म ही सत्य शरणं।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरो ध्यान जिनवर अचल अविकारी, नशे घातिया कर्म सब दुःखकारी।
आश्विन सुदी प्रतिपदा सुखस्वरूपं, जजूँ नेमि पायो सु अरहंत रूपं।।

ॐ ह्रीं आश्विनशुक्लाप्रतिपदायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित षाढ़ सप्तमि सु निर्वाण पायो, गिरनार पर्वत सु तीरथ कहायो।
अहो हम स्वयं सिद्ध निजपद निहारें, करें अर्चना भाव अपना सुधारें।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- शंख चिन्ह चरणों लसे, शोभे श्याम शरीर।
निरावरण विज्ञानमय, निश्चय से अशरीर।।

(छन्द-रोला, तर्ज-अहो जगत गुरुदेव...)

नेमिनाथ जिनराज, तिहुँ जग मंगलकारी।
अनन्त चतुष्टयरूप, देव परम अविकारी।। टेक।।
प्रभु पंचमभव पूर्व, शुद्धातम पहिचाना,
धरि जिनदीक्षा आप, पायो स्वर्ग विमाना।
फिर तीजे भव माहिं, सोलहकारण भाई,
धर्मतीर्थ कर्तार, प्रकृति पुण्य बंधाई।।

फेर हुए अहमिन्द्र, तहँ तैं आप पधारे,
समुद्रविजय के लाल, तुम ही शरण हमारे।
दीन पशु लख आप, ब्याह तजो दुखकारी,
हो विरक्त शिवहेतु, निर्ग्रन्थ दीक्षा धारी।।
कियो काम चकचूर, निजबल से ही स्वामी,
तिहुँ जग पूज्य ललाम, हुए जितेन्द्रिय नामी।
क्षपक श्रेणि चढ़ देव, परमातम पद पायो,
धनपति ने तब आप, समवशरण सु रचायो।।
झलकें लोकालोक, युगपद् परिणति माहीं,
तदपि विकल्प न लेश, रमें सहज निज माहीं।
नशे अठारह दोष, आत्मीक गुण सोहें,
आयुध अम्बर नाहिं, सौम्य दशा मन मोहे।।
खिरी दिव्य ध्वनि देव, दिव्य तत्त्व दर्शायो,
समयसार अविकार, सारभूत प्रगटायो।
परलक्षी सब भाव, दुःखकारण बतलाये,
रत्नत्रय सुखरूप, सुःखकारण दर्शाये।।
जगत विभव निस्सार, हमको भी प्रभु लागे,
मिटा मोह दुखकार, तुम चरणों के आगे।
त्यागूँ जगत प्रपंच, पुण्य-पाप दुखकारी,
भाव यही जिनराज, पाऊँ पद अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छन्द-घत्ता)

जय नेमि जिनेश्वर, साँचे ईश्वर, शील शिरोमणि जितमारं।

भव – भय – हर्तारं, धर्माधारं, जयवन्तो शिवदातारं।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(23) श्री पार्श्वनाथ पूजन

(छंद–ताटंक)

हे पार्श्वनाथ! हे पार्श्वनाथ, तुमने हमको यह बतलाया।
निज पार्श्वनाथ में थिरता से, निश्चय सुख होता सिखलाया।।
तुमको पाकर मैं तृप्त हुआ, ठुकराऊँ जग की निधि नामी।
हे रवि सम स्व–पर प्रकाशक प्रभु, मम हृदय विराजो हे स्वामी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जड़ जल से प्यास न शान्त हुई, अतएव इसे मैं यहीं तजूँ।
निर्मल जल–सा प्रभु निजस्वभाव, पहिचान उसी में लीन रहूँ।।
तन–मन–धन निज से भिन्न मान, लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ।
तुम जैसा वैभव पाने को, तव निर्मल चरण–कमल अर्चूं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन से शान्ति नहीं होगी, यह अन्तर्दहन जलाता है।
निज अमल भावरूपी चन्दन ही, रागाताप मिटाता है।। तन.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु उज्ज्वल अनुपम निजस्वभाव ही, एकमात्र जग में अक्षत।
जितने संयोग वियोग तथा, संयोगी भाव सभी विक्षत।। तन.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ये पुष्प काम–उत्तेजक हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती।
निज समयसार की सुमन माल ही, कामव्यथा सारी खोती।।तन.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ व्यञ्जन क्षुधा न नाश करें, खाने से बंध अशुभ होता।

अरु उदय में होवे भूख अतः, निज ज्ञान अशन अब मैं करता।। तन. ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीपक से तो दूर रहो, रवि से नहिं आत्म दिखाई दे।
निज सम्यक्ज्ञानमयी दीपक ही, मोहतिमिर को दूर करे।।
तन-मन-धन निज से भिन्न मान, लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ।
तुम जैसा वैभव पाने को, तव निर्मल चरण-कमल अर्चूं।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जब ध्यान-अग्नि प्रज्ज्वलित होय, कर्मों का ईंधन जले सभी।
दशधर्ममयी अतिशय सुगंध, त्रिभुवन में फैलेगी तब ही।। तन. ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो जैसी करनी करता है, वह फल भी वैसा पाता है।
जो हो कर्तृत्व-प्रमाद रहित, वह महा मोक्षफल पाता है।। तन. ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

है निज आतम स्वभाव अनुपम, स्वाभाविक सुख भी अनुपम है।
अनुपम सुखमय शिवपद पाऊँ, अतएव यह अर्घ्य समर्पण है।। तन. ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

दूज कृष्ण वैशाख को, प्राणत स्वर्ग विहाय।
वामा माता उर वसे, पूजूँ शिव सुखदाय।।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, सुतिथि महा सुखकार।
अन्तिम जन्म लियो प्रभु, इन्द्र कियो जयकार।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, बारह भावन भाय।

केशलोंच करके प्रभु, धरो योग शिवदाय।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

शुक्लध्यान में होय थिर, जीत उपसर्ग महान।
चैत्र कृष्ण शुभ चौथ को, पायो केवलज्ञान।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्रावण शुक्ल सु सप्तमी, पायो पद निर्वाण।
सम्मेदाचल विदित है, तव निर्वाण सुथान।।

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्याम् मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

(हरिगीतिका, तर्ज- प्रभु पतित पावन...)

हे पार्श्व प्रभु मैं शरण आयो, दर्शकर अति सुख लियो।
चिन्ता सभी मिट गयी मेरी, कार्य सब पूरण भयो।।
चिन्तामणी चिन्तत मिले, तरु कल्प माँगे देत हैं।
तुम पूजते सब पाप भागैं, सहज सब सुख हेत हैं।।
हे वीतरागी नाथ! तुमको भी सरागी मानकर।
माँगें अज्ञानी भोग वैभव, जगत में सुख जानकर।।
तव भक्त वाँछा और शंका आदि दोषों रहित हैं।
वे पुण्य को भी होम करते, भोग फिर क्यों चहत हैं?।।
जब नाग और नागिन तुम्हारे, वचन उर धर सुर भये।
जो आपकी भक्ति करें, वे दास उनके भी भये।।
वे पुण्यशाली भक्तजन की, सहज बाधा को हरें।
आनन्द से पूजा करें, वाँछा न पूजा की करें।।
हे प्रभो तव नासाग्रदृष्टि, यह बताती है हमें।
सुख आत्मा में प्राप्त कर लें, व्यर्थ बाहर में भ्रमें।।

मैं आप सम निज आत्म लखकर, आत्म में थिरता धरूँ।
अरु आशा-तृष्णा से रहित, अनुपम अतीन्द्रिय सुख भरूँ।।
जब तक नहीं यह दशा होती, आपकी मुद्रा लखूँ।
जिनवचन का चिन्तन करूँ, व्रत शील संयम रस चखूँ।।
सम्यक्त्व को नित दृढ़ करूँ, पापादि को नित परिहरूँ।
शुभराग को भी हेय जानूँ, लक्ष्य उसका नहिं करूँ।।
स्मरण ज्ञायक का सदा, विस्मरण पुद्गल का करूँ।
मैं निराकुल निजपद लहूँ प्रभु! अन्य कुछ भी नहिं चहूँ।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूज्य ज्ञान वैराग्य है, पूजक श्रद्धावान।
पूजा गुण अनुराग अरु, फल है सुख अम्लान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(24) श्री महावीर पूजन

(दोहा)

अद्भुत प्रभुता शोभती, झलके शान्ति अपार।
महावीर भगवान के, गुण गाऊँ अविकार।।
निजबल से जीत्यो प्रभो, महाक्लेशमय काम।
पूजन करते भावना, वर्तूं नित निष्काम।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द-त्रिभंगी)

भव-भव भटकायो, अति दुख पायो, तृष्णाकुल तुम ढिंग आयो।
उत्तम समता जल, शुचि अति शीतल, पायो उर आनन्द छायो।।
इन्द्रादि नमन्ता, ध्यावत संता, सुगुण अनन्ता, अविकारी।

श्री वीर जिनन्दा, पाप निकन्दा, पूजों नित मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ताप निकन्दन, चन्दनसम गुण, हरष-हरष गाऊँ ध्याऊँ।
नाशूँ दुर्मोहं, दुखमय क्षोभं, सहज शान्ति प्रभु सम पाऊँ।।
इन्द्रादि नमन्ता, ध्यावत संता, सुगुण अनन्ता, अविकारी।
श्री वीर जिनन्दा, पाप-निकन्दा, पूजों नित मंगलकारी।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय गुण मण्डित, अमल अखंडित, चिदानन्द पद प्रीति धरूँ।
क्षत् विभव न चाहूँ, तोष बढ़ाऊँ, अक्षत प्रभुता प्राप्त करूँ।।इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु सम आनन्दमय, नित्यानन्दमय, परम ब्रह्मचर्य चाहत हों।
नव बाढ़ लगाऊँ, काम नशाऊँ, सहज ब्रह्मपद ध्यावत हों।।इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दुख क्षुधा नशावन, पायो पावन, नित अनुभव रस नैवेद्यं।
नित तृप्त रहाऊँ, तुष्ट रहाऊँ, निज में ही हूँ निर्भेदं।। इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उद्योतस्वरूपं, शुद्धचिद्रूपं, प्रभु प्रसाद प्रत्यक्ष भयो।
अज्ञान नशायो, सम सुख पायो, जाननहार जनाय रह्यो।।इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

बिच कर्ममहावन, भटक्यो भगवन्, शिवमारग तुम ढिंग पायो।
तप अग्नि जलाऊँ, कर्म नशाऊँ, स्वर्णिम अवसर अब आयो।।इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि विकारं, दुखदातारं, त्याग सहज निजपद ध्याऊँ।
साधूँ हो निर्भय, शुद्धरत्नत्रय, अविनाशी शिवफल पाऊँ।।इन्द्रादि.।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

करि अर्घ अनूपं, हे शिवभूपं, द्रव्य-भावमय भक्ति करूँ।

तज सर्व उपाधि, बोधि–समाधि, पाऊँ निज में केलि करूँ।। इन्द्रादि. ।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द–सरसी)

नगरी सजी रत्न वर्षाये, सोलह सपने देखे मात।
षष्ठमि सुदी आषाढ़ प्रभू का, गर्भ कल्याण हुआ विख्यात।।
भावसहित प्रभु करूँ अर्चना, शुद्धातम कल्याण स्वरूप।
आनन्द सहित आप–सम ध्याऊँ, पाऊँ अविचल बोध अनूप।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नरकों में भी कुछ क्षण को तो, साता का संचार हुआ।
चैत सुदी तेरस को प्रभुवर, जन्म जगत सुखकार हुआ।। भाव.. ।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जीरण तृण–सम विषयभोग तज, बाल ब्रह्मचारी हो नाथ।
दशमी मगसिर कृष्णा के दिन जिनदीक्षा धारी जिननाथ।। भाव.. ।।

ॐ ह्रीं मगसिरकृष्णादशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशमी सुदि बैशाख तिथी को, आत्मलीन हो घाति विनाश।
धन्य–धन्य महावीर प्रभु को, हुआ सु केवलज्ञान प्रकाश।। भाव.. ।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्य–पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तिम शुक्लध्यान प्रगटाया, शेष अघाति विमुक्त हुए।
कार्तिक कृष्ण अमावस के दिन, वीर जिनेश्वर सिद्ध हुए।। भाव.. ।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्य-पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा- वर्द्धमान श्रीवीर, सन्मति अरु महावीर जी।
जयवन्तो अतिवीर, पंचनाम जग में प्रगट।।

(छन्द-जोगीरासा)

चित्स्वरूप प्रगटाया प्रभुवर, चित्स्वरूप प्रगटाया।
स्वयं स्वयंभू होय जिनेश्वर, चित्स्वरूप प्रगटाया।। टेक।।
हो सबसे निरपेक्ष सिंह के, भव में सम्यक् पाया।
स्वाश्रित आत्माराधन का ही, सत्य मार्ग अपनाया।। 1।।
बढ़ती गई सु भाव-विशुद्धि, दशवें भव में स्वामी।
आप हुए अन्तिम तीर्थंकर, भरतक्षेत्र में नामी।। 2।।
इन्द्रादिक से पूजित जिनवर, सम्यक्ज्ञानि विरागी।
इन्द्रिय भोगों की सामग्री, दुख निमित्त लख त्यागी।।3।।
जब विवाह प्रस्ताव आपके, सन्मुख जिनवर आया।
आत्मवंचना लगी हृदय में, दृढ़ वैराग्य समाया।। 4।।
अज्ञानी सम भव में फँसना, क्या इसमें चतुराई?
भव-भव में भोगों में फँसकर, भारी विपदा पाई।। 5।।
उपादेय निज शुद्धातम ही, अब तो भाऊँ ध्याऊँ।
धरूँ सहज मुनिधर्म परम साधक हो शिव पद पाऊँ।।6।।
इस विचार का अनुमोदन कर, लौकान्तिक हर्षाये।
आप हुए निर्ग्रन्थ ध्यान से, घातिकर्म भगाये।। 7।।
हुए सु गौतम गणधर पहले, दिव्यध्वनि सुखकारी।
खिरी श्रावणी वदि एकम को, त्रिभुवन मंगलकारी।।8।।
धर्मतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, आत्मबोध जग पाया।
प्रभो! आपका शासन पाकर, रोम-रोम हुलसाया।। 9।।

वर्ष बहत्तर आयु पूर्ण कर, सिद्धालय तिष्ठाये।
तुम गुण चिन्तन मोह नशावे, भेदज्ञान प्रगटावे।। 10।।
सहज नमन कर पूजन का फल और न कुछ भी चाहूँ।
सहज प्रवर्ते तत्त्वभावना, आवागमन मिटाऊँ।। 11।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(बसन्ततिलका)

सत्तीर्थ वीर प्रभु का जग में प्रवर्ते, निज तत्त्वबोध पाकर सब लोक हर्षे।
दुर्भावना न आवे मन में कदापि, निर्विघ्न निर्विकारी आराधना प्रवर्ते।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

समुच्चय जयमाला

दोहा- मोहादिक रिपु जीतकर, जय पाई अविकार।
जयमाला गाऊँ सुखद, गुण चिन्तन के द्वार।।

(छन्द-त्रोटक)

जय मंगलमय जय लोकोत्तम, जय अनन्य शरण जय पुरुषोत्तम।
जय महावीर जय महाधीर, अवबोध-सिन्धु अति ही गम्भीर।।
जय तेजपुंज जय दिव्य-रूप, हे प्रशममूर्ति अति शान्त-रूप।
जय वचन-अगोचर हे महेश, जय स्वानुभूति गोचर जिनेश।।
जय ज्ञानमात्र परभाव शून्य, जय गुण अनंत से सदा पूर्ण।
जय वीतमोह जय वीतक्रोध, जय वीतमान जय वीतलोभ।।
जय वीत क्षोभ जय वीत काम, निर्दोष परम प्रभुता ललाम।
दृग-ज्ञान-सुःख-वीरज अनंत, जय गुण अनंत महिमा अनंत।।
ध्रुव धर्मतीर्थ पाकर जिनेश, आनंद हुआ उर में विशेष।
प्रभु दूर हुए सब पाप ताप, संतुष्ट आप में हुआ आप।।

देखत प्रभु को निज रूप दिखे, दुर्मोह मिटे दुष्कर्म नशे।
विभु धन्य अलौकिक गुण निधान, करते भक्तों को निज समान।।
जिन आराधन की लगी लगन, मैं द्रव्य-भाव से बनूँ नगन।
भाऊँ-ध्याऊँ ज्ञायक स्वरूप, देहादि दिखें अति भिन्न रूप।।
उपसर्ग परीषह सहज जीत, अपनाऊँ मैं परमार्थ नीति।
ऐसा पुरुषार्थ जगे स्वयमेव, साम्राज्य मुक्ति का लहूँ देव।।
भव-भव का दुखमय भ्रमण नाश, तिष्ठूँ सिद्धालय आप-पास।
सब जीव लहें निज तत्त्वज्ञान, पावें सम्यग्दर्शन महान।।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-भाव, माध्यस्थ धार साधें स्वभाव।
विपरीत विकल्पों को सु त्याग, सब लगें लगावें मुक्तिमार्ग।।
दिन दूना धर्म प्रभाव बढ़े, दुर्व्यसन उपद्रव दूर रहें।
चित्त शान्त रहे सन्तुष्ट रहे, नित आनन्द मंगल सहज बढ़े।।
भक्ति वश निज हित के निमित्त, पूजन विधान कीना पवित्र।
प्रभु भूल-चूक सब क्षमा होय, मम परिणति पूर्ण पवित्र होय।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिस विधि से जिनवर लहा, परमानन्द अम्लान।

जीवन यह अस्थिर है, सुख दुख हैं चलती फिरती छाया।
कौन यहाँ मानव है, ऐसा मनचाहा जिसने पाया?॥
अतः रूप, बल, विद्या, वैभव, वंश और स्वागत सन्मान।
कभी भूल कर भी इन सबका दर्प न करते हैं मतिमान॥

उस विधि से ही हे विभो! होऊँ आप समान।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

भाग-5 : अर्घ्यावलि, शांतिपाठ व विसर्जन पाठ

श्री चौबीस तीर्थंकरों को अर्घ्य

(दोहा)

आदीश्वर भगवान का, लख स्वरूप अविकार।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भक्ति से, नमहुँ त्रियोग संभार।। 1।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महारिपु जीतकर, पायो पद निर्वाण
अर्घ्य चढ़ाऊँ नमनकर, अजितनाथ भगवान।। 2।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनाशी सुख शान्ति पथ, दर्शायो सुखकार।
सम्भवनाथ जिनेश को, पूजों मंगलकार।। 3।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्भवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिनन्दन जिनराज का, दर्शन शिवसुख देय।
भाव सहित पूजूँ अहो, अष्टद्रव्य शुभ लेय।। 4।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमति सुमतिदायक प्रभो, कुमति ध्वान्त हर-भानु।
भाव सहित पूजूँ तुम्हें, पाऊँ ध्रुव कल्याण।। 5।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्म समान अलिप्त श्री, पद्मप्रभ जिनराय।
समवशरण में राजते, पूजत सुख उपजाय।।6।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो सुपार्श्व जिनेन्द्र के, चरणन शीश नवाय।

अर्घ्य चढ़ाऊँ हर्ष से, सर्व क्लेश विनशाय।। 7।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अमृतचन्द्र चिदात्मा, चन्द्रप्रभ भगवान।
दर्शायो आनन्दमय, पूजूँ धर उर ध्यान।। 8।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पदन्त या सुविधिप्रभु, शिवपद सुविधि बताय।
आप बसे शिवलोक में, पूजूँ अति हरषाय।। 9।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल जिन पूजूँ चरण, मोह-ताप-विनशाय।
शीतलता प्रभु आप-सम, सहजरूप विलसाय।। 10।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रेयरूप श्रेयांस जिन, परम श्रेय शुद्धात्म।
दर्शायो पूजूँ चरण, पाऊँ पद परमात्म।। 11।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रथम बालयति हो प्रभो, वासुपूज्य भगवान।
ब्रह्मचर्य का भाव धरि, पूजूँ पद अम्लान।। 12।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजत विमल जिनेश को, समलभाव नशि जाय।
यही भाव धरि पूजहूँ, तीन लोक के राय।। 13।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महिमा अनन्त जिनेश की, शब्दों में नहीं आय।
ज्ञानमाहिं अवलोक कर, पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय।। 14।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम धरम दर्शाइया, धर्मनाथ जिनराज।

आनन्द सों पूजूँ प्रभो, सफल होंय सब काज।। 15।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म-शान्ति का मूल है, निर्मल भेद-विज्ञान।
ज्ञान करायो शान्तिप्रभु, पूजूँ नित धर ध्यान।। 16।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी-मात्र के प्रति प्रभो, दया सिखाई आप।
पूजूँ कुन्थु जिनेश को, जीवन हो निष्पाप।। 17।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजत श्री अरनाथ को, भविजन चित हुलसाय।
जैसे ऊगत भानु के, सहज जलज खिल जाय।। 18।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह-मल्ल को जीतकर, आप हुए शिवनाथ।
मल्लिनाथ पद पूजते, देखूँ चेतन नाथ।। 19।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिव्रत धारूँ चाव सौं, अपने हित के काज।
यही भाव धरि पूजहूँ, मुनिसुव्रत जिनराज।। 20।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सविनय अर्घ्य चढ़ाय के, नमन करूँ नमिनाथ।
दर्शन पाकर आपका, भविजन होंय सनाथ।। 21।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्याह समय दीक्षा धरी, नेमीश्वर महाराज।
परम ब्रह्मपद दृष्टि धरि, पूजूँ शिवपद काज।। 22।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो-अहो श्री पार्श्वप्रभु, किया कमठ मद चूर।

भक्ति सहित प्रभु पूजते, विपद होय सब दूर।। 23।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज बल से जीता प्रभो, महासुभट दुष्काम।
पूजूँ वीर जिनेश को, होऊँ मैं निष्काम।। 24।।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महाऽर्घ्य

पूजूँ मैं श्री पञ्च परम गुरु, उनमें प्रथम श्री अरहन्त।
अविनाशी अविकारी सुखमय, दूजे पूजूँ सिद्ध महन्त।। 1।।
तीजे श्री आचार्य तपस्वी, सर्व साधु नायक सुखधाम।
उपाध्याय अरु सर्व साधु प्रति, करता हूँ मैं कोटि प्रणाम।। 2।।
करूँ अर्चना जिनवाणी की, वीतराग-विज्ञान स्वरूप।
कृत्रिमाकृत्रिम सभी जिनालय, वंदूँ अनुपम जिनका रूप।। 3।।
पंचमेरु नन्दीश्वर वंदूँ, जहाँ मनोहर हैं जिनबिम्ब।
जिसमें झलक रहा है प्रतिपल, निज ज्ञायक का ही प्रतिबिम्ब।।4।।
भूत भविष्यत् वर्तमान की, मैं पूजूँ चौबीसी तीस।
विदेह क्षेत्र के सर्व जिनेन्द्रों के, चरणों में धरता शीश।। 5।।
तीर्थंकर कल्याणक वंदूँ, कल्याणक अरु अतिशय क्षेत्र।
कल्याणक तिथियाँ मैं चाहूँ, और धार्मिक पर्व विशेष।। 6।।
सोलहकारण दशलक्षण अरु, रत्नत्रय वंदूँ धर चाव।
दयामयी जिनधर्म अनूपम, अथवा वीतरागता भाव।। 7।।
परमेष्ठी का वाचक है जो, ओंकार वंदूँ मैं आज।
सहस्रनाम की करूँ अर्चना, जिनके वाच्य मात्र जिनराज।। 8।।

जिसके आश्रय से ही प्रगटें, सभी पूज्यपद दिव्य ललाम।
ऐसे निज ज्ञायक स्वभाव की, करूँ अर्चना मैं अभिराम।।9।।

(दोहा)

भक्तिमयी परिणाम का, अद्भुत अर्घ्य बनाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, ज्ञायक-दृष्टि लाय।।10।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हन्तजी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्वसाधुजी, द्वादशांग जिनवाणी, दशलाक्षणिक धर्म, सोलहकारण भावना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रत्नत्रय, तीनलोक संबंधी कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय, पंचमेरु संबंधी अस्सी जिन चैत्यालय, नन्दीश्वर द्वीप सम्बन्धी बावन जिन चैत्यालय, श्रीसम्मेदशिखर, कैलाशगिरि, गिरनार, चम्पापुर, पावापुर आदि सिद्धक्षेत्र अतिशय क्षेत्र, विद्यमान बीस तीर्थङ्कर, भगवान के एक हजार आठ नाम, श्री वृषभादि महावीरपर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थङ्करेभ्यो जलाऽर्घ्यं महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ

(हरिगीतिका)

हूँ शान्तिमय ध्रुव ज्ञानमय, ऐसी प्रतीति जब जगे।
अनुभूति हो आनन्दमय, सारी विकलता तब भगे।। 1।।
निज भाव ही है एक आश्रय, शान्ति-दाता सुखमयी।
भूल स्व दर-दर भटकते, शान्ति कब किसने लही।। 2।।
निज घर बिना विश्राम नाहीं, आज यह निश्चय हुआ।
मोह की चट्टान टूटी, शान्ति निर्झर बह रहा।। 3।।
यह शान्ति धारा हो अखण्ड, चिरकाल तक बहती रहे।
होवें निमग्न सुभव्यजन, सुख शान्ति सब पाते रहें।। 4।।
पूजोपरान्त प्रभो यही, इक भावना है हो रही।
लीन निज में ही रहूँ, प्रभु और कुछ वाँछा नहीं।। 5।।

दोहा- सहज परम आनन्दमय, निज ज्ञायक अविकार।
स्व में लीन परिणति विषैं, बहती समरस धार।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

(नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हुए कायोत्सर्ग करें)

विसर्जन पाठ

(वीरछन्द)

थी धन्य घड़ी जब निज ज्ञायक की, महिमा मैंने पहिचानी।
हे वीतराग सर्वज्ञ महा-उपकारी, तव पूजन ठानी।। 1।।
सुख हेतु जगत में भ्रमता था, अन्तर में सुख सागर पाया।
प्रभु निजानन्द में लीन देख, मोहि यही भाव अब उमगाया।।2।।
पूजा का भाव विसर्जन कर, तुमसम ही निज में थिर होऊँ।
उपयोग नहीं बाहर जावे, भव क्लेश बीज अब नहीं बोऊँ।।3।।
पूजा का किया विसर्जन प्रभु, और पाप भाव में पहुँच गया।
अब तक की मूरखता भारी, तज नीम हलाहल हाय पिया।।4।।
ये तो भारी कमजोरी है, उपयोग नहीं टिक पाता है।
तत्त्वादिक चिन्तन भक्ति तज ये दूर पाप में जाता है।। 5।।
हे बल अनन्त के धनी विभो! भावों में तब तक बस जाना।
निज से बाहर भटकी परिणति, निज ज्ञायक में ही पहुँचाना।।6।।
पावन पुरुषार्थ प्रकट होवे, बस निजानन्द में मग्न रहूँ।
तुम आवागमन विमुक्त हुए, मैं पास आपके जा तिष्ठूँ।। 7।।

(दोहा)

अक्षर पद मात्रा विधि, हीनाधिक जो कोय।
प्रभु अज्ञान प्रमाद से, हुई क्षमा सो होय।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

आत्मा की आराधना का फल अनंत सुख-मोक्ष है।
आत्मा की विराधना का फल अनंत दुःख-निगोद है॥

सम्यक् भक्ति

श्री जिनवर की सम्यक् भक्ति, हृदय हमारे सदा रहे।
जिनशासन की वैयावृत्ति, में तत्परता सदा रहे।। टेक।।
नहीं छिपावें अपनी शक्ति, कोई नहीं बहाना हो,
स्वार्थ और आलस्य नहीं हो, नहीं हृदय अभिमाना हो।
समझें हम सौभाग्य सहज,उल्लास हृदय में सदा रहे।।1।।
हो सूक्षम उपयोग हमारा, भाव हृदय का ग्रहण करें,
सर्व समर्पण रहे सदा, निश्चिंत और निर्भार रहें।
ध्वजा सम्हालें जिनशासन की, आत्म भावना सदा रहे।।2।।
अरे कल्पना अपनी झूठी, मिथ्या जग व्यवहारा है,
सम्यक् ज्ञानी गुरुओं ने ही, जिनशासन विस्तारा है।
मोह-क्षोभ से रहित परिणति, समतामय ही सदा रहे।।3।।
प्रमाणीक हो ज्ञान हमारा, हो सम्यक् श्रद्धान सदा,
हो निर्दोष आचरण सुखमय, नहीं शिथिलता कहीं कदा।
हो प्रभावना मंगलकारी, यही भावना सदा रहे।। 4।।
स्याद्वाद वाणी में वर्ते, नहीं विवादों में उलझें,
सत्य-अहिंसामय हो जीवन, सर्व समस्याएँ सुलझें।
अनेकान्तमय वस्तु व्यवस्था, हृदय हमारे सदा रहे।।5।।
सम्यक् सोचें सम्यक् बोलें, सम्यक् क्रिया हमारी हो,
अहंकार-ममकार न होवे, ज्ञानकला विस्तारी हो।
शंका-भय तो लेश नहीं हो, निस्पृहता ही सदा रहे।।6।।

★★★

श्री वीर निर्वाण भक्ति

मुक्त हुए हैं वीर जिनेश्वर, आनंद अपरम्पार हो।
सिद्ध हुए हैं वीर जिनेश्वर, मंगल जय जयकार हो।। टेक।।
दर्शन मोह मिटा था जब ही, मुक्तिमार्ग प्रारंभ हुआ।
भाते-भाते तत्त्वभावना, रागादिक भी क्षीण हुआ।।
हुआ शांतिमय अद्भुत जीवन, आनंद अपरम्पार हो।। 1।।
होय विरागी सब परिग्रह तज, निर्ग्रंथ पथ अपनाया था।
उदासीन हो सर्व जगत से, आतम ध्यान लगाया था।।
समतामय जिनरूप सुहाता, आनंद अपरम्पार हो।। 2।।
आत्मलीनता पूर्ण हुई थी, कर्म घातिया नष्ट हुए।
आप हुए अंतिम तीर्थंकर, भव्य जीव प्रतिबुद्ध हुए।।
अद्भुत रचना समवशरण की, आनंद अपरम्पार हो।। 3।।
करके योग निरोध वीर प्रभु, पावापुर में तिष्ठाये।
शेष कर्म भी नष्ट हुए थे, स्वाभाविक गुण प्रगटाये।।
सहज विराजे लोक शिखर पर, आनंद अपरम्पार हो।। 4।।
सिद्ध समान स्वरूप पिछाना, तुम प्रसाद से हे स्वामी।
हो सम्यक् पुरुषार्थ करें, आराधन हम भी हे स्वामी।।
भक्ति भाव से करें अर्चना, आनंद अपरम्पार हो।। 5।।

श्री गौतम गणधर स्तुति

गौतमगणधर केवलज्ञान, पाया आनंदमय अम्लान।
हम सबको है हर्ष महान, करते भक्ति सहित गुणगान।। टेक।।
बाह्य ज्ञान तो था बहुतेरा, अनुयायी शिष्यों का घेरा।
जग प्रसिद्धि बहु पाई थी, लेश न शान्ति मन आई थी।।
आत्मज्ञान बिन इन्द्रियज्ञान, हमने भी समझा अज्ञान।। 1।।
वीर प्रभु ने केवल पाया, समवशरण सुरपति रचवाया।
भव्यजनों की सभा भरी थी, दिव्यध्वनि पर नहीं खिरी थी।।
इन्द्र इन्द्रभूति ढिंग आन, गूढ़ प्रश्न था किया महान।। 2।।
महावीर ढिंग चलो कहा था, काललब्धि का स्वर्णिम क्षण था।
समवशरण में ज्यों ही आये, वीरनाथ के दर्शन पाये।।
प्रगटाज्ञान विराग महान, गणधर पद पाया सुखखान।। 3।।
धर्मतीर्थ जग में वर्ताया, भव्यों ने शिव मारग पाया।
वही तीर्थ हमको भी भाया, पाने को पुरुषार्थ जगाया।।
पावें निश्चय आतमज्ञान, हो निर्ग्रन्थ धरें निज ध्यान।। 4।।
वीरनाथ जब मुक्ति पधारे, जगत आपकी ओर निहारे।
आप आप में लीन हुए थे, घाति कर्म प्रक्षीण हुए थे।।
हुए अनंत चतुष्टयवान, गुरुवर आप स्वयं भगवान।। 5।।
हम भी अन्तर्दीप जलावें, मोह अंधेरा दूर भगावें।
सम्यक् भाव विशुद्धि बढ़ावें, धर्म महोत्सव सहज मनावें।।
फैले घर-घर सम्यग्ज्ञान, मंगलमय जिनधर्म महान।। 6।।

सहयोगी :-

1.स्व.श्री चक्रेश कुमार जैन, आगरा एवं स्व. श्री पं.डॉ. अरविन्द कुमार जी 'ज्ञायक', करहल की स्मृति में 2.ब्र.नीलम बहिन, ब्र.विनिता बहिन, ब्र.अंतिमा बहिन 3. सौरभ जैन पुत्र श्री प्रशान्त जैन, वर्द्धमानकुंज, भोपाल 4.. श्रीमती पूर्णिमा उल्लास जोबालिया, मुम्बई 5.श्री मुलेश शाह, करेली बाग, बड़ोदा 6.. श्री राजेश कुमार बरकुट, फरीदाबाद 7.श्री सुनील कुमार जैन, दिल्ली 8. श्रीमती स्नेह जैन ध.प. श्री रविन्द्र जैन, आर्य जैन, आराध्या जैन, वाशी 9.अपूर्वा अंशुल जैन, टीकमगढ़ 10..श्री सुरेन्द्र जैन (ए.एस.पी.) पुलिस ट्रेनिंग स्कूल, रीवा 11.कृणाल जे. मेहता, भुज, कच्छ, गुजरात 12. श्रीमती सुमनलता जैन, डॉ. शोभालाल जैन, बालक हिल, व्यु कॉलोनी, सागर 13. श्री विमेश कीर्तिलाल शाह, मुम्बई 14.इंजी. सुनील सरोज जैन, छतरपुर 15. श्री सुभाष चन्द्र भारतीय, मैनपुरी 16.श्री शांतिकुमार विमलचन्द्र जैन, इन्दौर 17.श्री अरुण एम. सर्राफ, अहमदाबाद 18.स्व.श्री विमलचंद जैन ध.प. श्रीमती कल्पना जैन, विदिशा 19. श्री आदित्य जैन, मुम्बई 20. अंकित जैन, दमोह 21.नीलेश सुरेश चंकेश्वरा, पंढरपुर 22. अग्रिता जैन पुत्री श्री महेन्द्र जैन, ललितपुर 23.श्रीमती स्नेह जैन पुत्र श्री पीयूष जैन, टूंडला (उ.प्र.) 24.श्री राजेश जैन, रुचि जैन, गाजियाबाद 25. सोनल शाह, मुम्बई 26.श्री अकलेश जैन, जबलपुर 27. श्री सचिन जैन, जबलपुर 28.श्री संदीप जैन, जबलपुर 29. नितिन जैन, जबलपुर 30.श्री चक्रेश जैन, दतिया 31.श्री अजय कुमार जैन, इलाहाबाद 32. स्व.श्रीमती इन्दरा देवी काला की स्मृति में ह. अर्चना दीदी 33. श्री नितिन जैन, सागर 34.अमिता अजमेरा 35.श्री समर्थ जैन, हरदा 36. मंजू जैन, हरदा 37.श्री अभिषेक जैन, फिरोजाबाद 38. श्रीमती सुलोचना जैन, शिवपुरी 39.कु.अग्रिमा जैन सुपुत्री श्री अभय जैन शास्त्री, (खड़ेरी) ग्वालियर 40.श्रीमती सीमा जैन ध.प. श्री प्रसन्न शास्त्री, इन्दौर 41. स्व.श्री महेशचन्द जैन की स्मृति में द्वारा प्रशम जैन (नाती) अमायन 42. श्रीमती पुष्पा पाटोदी, इन्दौर, 43.श्रीमती श्वेता जैन ध.प. श्री रॉविन जैन, इन्दौर 44.श्रीमती ऊषा जैन ध.प. श्री सतीश जैन, इन्दौर 45.ब्र.कल्पना दीदी, सागर 46.ब्र.ममता दीदी, टीकमगढ़ 47.ओजस टोडरका जैन, जयपुर 48.अभिनंदन सिंह जैन, पिड़ावा 49.स्मित वखारिया और हेत बखारिया, मुम्बई, 50.विशाल जैन सुपुत्र श्री चैतन्य शास्त्री, खड़ेरी।

शुद्धि पत्र

	अशुद्ध	शुद्ध
1. पृष्ठ 64, छंद 8 की प्रथम लाइन	महत्तथोग्रं	तथा महोग्रं
2. पृष्ठ 81, छंद चंदन, तृतीय लाइन	हैं भेंट	है भेंट
3. पृष्ठ 137, छंद जल, तृतीय लाइन	बाहुबलि	बाहुबली
4.पृष्ठ 195, पद्य 7, द्वितीय लाइन	पड़त	पढ़त
5. पृष्ठ 434, पद्य 4, प्रथम लाइन	ओर	और

रजि.-2/09-10/B-113(1)

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

अमायन, जिला-भिण्ड (म.प्र.) -४७७२२७

(रजि. AAJTS769D/03/15-16T-268/80G आयकर अधिनियम १९७१ की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट की पात्रता है)

द्वारा संचालित गतिविधियाँ -

१. श्री वर्द्धमान दि. जैन विद्यार्थी गृह

२. श्री वर्द्धमान दि. जैन कन्या विद्यार्थी गृह

३. वर्द्धमान औषधालय- अमायन/मौ/ग्वालियर/खड़ैरी

४. वर्द्धमान पुस्तकालय

५. श्री वर्द्धमान श्रुत प्रभावना केन्द्र, ग्वालियर

६. सत्-साहित्य प्रकाशन

७. मेधावी/निर्धन छात्र एवं छात्राओं को छात्रवृत्ति

८. श्री वर्द्धमान प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान

(आयुर्वेदिक एवं एक्यूप्रेशर)

(NDDY चिकित्सक एवं सहायक चिकित्सक - डिप्लोमा कोर्स)

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.)
द्वारा प्रकाशित, उपलब्ध सत्साहित्य-
(श्री ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' विरचित)

क्र.	नाम	न्यौछावर राशि
1.	अमृत वचन (सजिल्द)	50/-
2.	स्वानुभव पत्रावलि (सजिल्द)	50/-
3.	जीवन पथ दर्शन	30/-
4.	जीवन पथ दर्शन (संक्षिप्त)	20/-
5.	लघु बोध कथाएँ	30/-
6.	जिनवर स्तवन (सजिल्द)	30/-
7.	स्वरूप-स्मरण (सजिल्द)	40/-
8.	जिन-भक्ति सिंधु (सजिल्द)	50/-
9.	वर्द्धमान पूजाञ्जलि	50/-
10.	सहज पाठ संग्रह (सजिल्द)	50/-
11.	वैराग्य पाठ संग्रह (सजिल्द)	40/-
12.	दृष्टांत-सिद्धांत (सजिल्द)	40/
13.	नीति वचन (सजिल्द)	50/-
14.	जिनवर-गुणगान	50/-
15.	श्री सम्मेदशिखर मण्डल विधान	20/-
16.	श्री रत्नत्रय विधान एवं चौंसठ ऋद्धि विधान	20/-
17.	श्री पंच बालयति तीर्थंकर मण्डल विधान	20/
18.	श्री चौबीस तीर्थंकर मण्डल विधान	30/
19.	उन्नति	30/-
20.	प्रेरणा	30/-
	अन्य -	
21.	अनुबंध-श्रीमती रूपवती 'किरण'	30/-
22.	पावन मन-श्रीमती रूपवती 'किरण'	30/
23.	जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (सजिल्द)-श्रीमती रूपवती 'किरण'	50/-
24.	वसंततिलका-श्रीमती रूपवती 'किरण'	25/-
25.	पूर्णिमा-श्री भगवत् जैन	30/-
25.	अमर विश्वास (कहानी संग्रह)	30/-
27.	विराग सरिता-श्रीमद् राजचंद्रजी के वचनामृत	30/-

सम्पर्क सूत्र- प्रवीण भैया, अमायन, मोबा.- 9926316216

नोट :- पी.डी.एफ. फाइल भी उपलब्ध है।